So far appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by the Directors of Public Instruction Punjab, Central Provinces and Berar *but no longer approved by the U. P. Government and should not be purchased by any recognized School of these Provinces.*
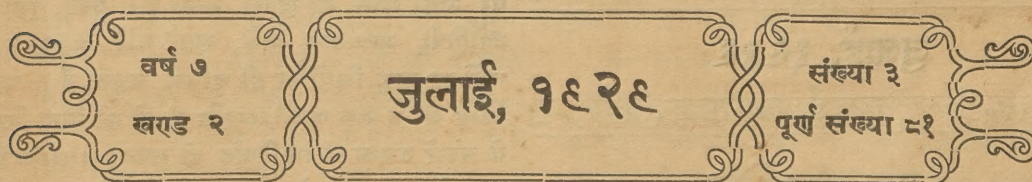
निर्वाण

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा, बी० ए०]

घायल मन लेकर सो जाती,
मेघों में तारों की प्यास!
यह जीवन का ज्वार, शून्य का—
करता है बढ़कर उपहास!

चल चपला के दीप जलाकर
किसे ढूँढ़ता अन्धाकार?
अपने आँसू आज पिला दो—
कहता है बढ़ पारावार!

झुक-झुक झूम-झूम कर लहरें—
भरतीं बूँदों के मोती!
यह मेरे सपने की छाया,
झोंकों में फिरती रोती!

आज किसी के मसले तारों—
की यह दूरागत झङ्कार!
मुझे बुलाती है सहमी-सी
झञ्झा के परदों के पार!

इस असीम तम में मिलकर—
मुझको पल भर सो जाने दो!
बुझ जाने दो, देव आज—
मेरा दीपक बुझ जाने दो!!
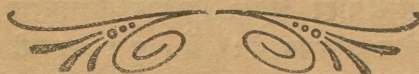
जुलाई, १९२९

एक नया चित्र
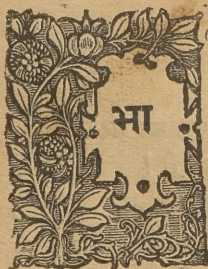
भारतीय स्त्रियों की पराधीनता, असहाय अवस्था, ज्ञानहीनता, निर्बलता कल्पनातीत है। वे ऐसी अपङ्ग और साहसहीन बन गई हैं या बना दी गई हैं कि बिना किसी सहारे के संसार में खड़ी हो नहीं रह सकतीं। उनकी आँखों पर अज्ञान का ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि इस विघ्न-बाधा-पूर्ण संसार में बिना किसी का हाथ पकड़े हुए उनके लिए चल सकना असम्भव है। वे ऐसी सुकुमार, कोमल, सङ्कोचपूर्ण और लजीली हो गई हैं कि उनके लिए घर से बाहर निकल सकना और अपना काम ख़ुद कर लेना असम्भव है। जहाँ उनका सहारा टूटा, जहाँ उनका हाथ छूटा, उनको चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार नज़र आने लगता है; वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाती हैं और इस बात को किसी तरह नहीं समझ पातीं कि हम किस रास्ते पर चलें। उनको ऐसी अज्ञान की दशा में रक्खा गया है कि हर समय उनके ठगे जाने का धोखा रहता है, क़दम-क़दम पर ठोकर खाने का ख़तरा रहता है। पण्डे, पुजारी, ज्योतिषी, मन्त्र-तन्त्र वाले, स्याने-भोंपे आदि सभी धूर्तों का जादू स्त्रियों पर ही अधिक चलता है। अगर किसी स्त्री के पास काफ़ी सम्पत्ति हो तो भी बिना किसी के सहारे उसका जीवन-निर्वाह हो सकना असम्भव है। अनेकों बदमाश, गुण्डे और ठग उनके पीछे पड़ जाते हैं और किसी न किसी प्रकार अपने फन्दे में फाँस कर नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। अगर किसी स्त्री को थोड़ी दूर का सफ़र भी करना हो तो भी वह अकेले जाने का साहस नहीं करती, क्योंकि उसे सदा बहकाए-फुसलाए जाने, रास्ता भूल कर किसी के फन्दे में फँस जाने, बलात्कार और अत्याचार का भय बना रहता है। इस प्रकार यहाँ पर स्त्रियों को गुड़ियों के समान बना रक्खा है, चाहे जहाँ उठा कर रख दो, फेंक दो, तोड़-फोड़ डालो या नष्ट ही कर डालो। वे कभी प्रतिकार का साहस न करेंगी और सब कुछ गूँगे पशु की तरह सहती रहेंगी।

ऐसी दशा में स्त्रियों के अधिकारों की तो चर्चा ही क्या? न पति की सम्पत्ति पर उनका अधिकार होता है, न बाप की जायदाद में उनका कोई हिस्सा माना जाता है। न वे सरकारी नौकरी कर सकती हैं, न व्यवसाय-

वाणिज्य में ही उनका कोई हाथ है। सामाजिक मामलों में दख़ल दे सकने का उनको अख़्तियार नहीं और राजनैतिक क्षेत्र में उनकी कोई पूछ नहीं। पति चाहे जैसा भ्रष्ट, दुराचारी, दूषित हो; स्त्री पर चाहे जैसा अन्याय-अत्याचार करे; एक की जगह चार-चार ब्याह कर ले, पर स्त्री उसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती। इसके विरुद्ध पति जब चाहे स्त्री को निकाल सकता है, रास्ते की भिखारिनी बना सकता है, वेश्यावृत्ति करने या आत्म-हत्या करने पर मजबूर कर सकता है। और तो क्या, स्त्री को अपने शरीर पर भी कुछ अधिकार नहीं होता और प्राचीन ख़्याल की स्त्रियाँ तो अपनी आत्मा—अपने परलोक को भी पति के अधीन समझती हैं।

हम नहीं समझते कि ऐसी स्त्रियों को अगर हम एक ऐसा चित्र दिखलाएँ जिसमें स्त्रियाँ मर्दों के ठीक बराबर बैठी हों; जिसमें उनको सब बातों में मर्दों के बराबर ही अधिकार हों; जिसमें वे मर्दों के समान ही स्वाधीन, स्वावलम्बी, शिक्षित और साहसी हों; जिसमें उनका घर की सम्पत्ति पर मर्दों के समान ही पूर्ण अधिकार हो; जिसमें विवाह करने और विवाह-सम्बन्ध को तोड़ देने में मर्दों के समान ही उनको पूरी आज़ादी हो; जिसमें सरकारी नौकरी और व्यवसाय-वाणिज्य ही नहीं, वरन् सेना और राज्य के बड़े-बड़े पदों पर भी काम करने का उनको मर्दों के बराबर अधिकार हो—तो ऐसे चित्र को देख कर यहाँ की स्त्रियाँ क्या सोचेंगी? अब तक उन्होंने केवल इङ्गलैण्ड और अमेरिका आदि की स्त्रियों का कुछ हाल सुना है। यह जान कर ही कि वहाँ की स्त्रियाँ पार्लिमेण्ट की मेम्बर बनती हैं, वकील-डॉक्टर का पेशा करती हैं, कारख़ाने और दुकानों में क्लर्की का काम करती हैं और पति का दोष सिद्ध कर देने पर उसे छोड़ भी सकती हैं, उनको बड़ा ताज्जुब होता है और वे उनको बहुत आगे बढ़ी हुई समझती हैं। पर आज हम उनको एक ऐसा चित्र दिखलाते हैं जिससे वे जान सकेंगी कि स्त्रियों की स्वाधीनता का वास्तव में क्या अर्थ है, स्त्रियाँ कहाँ तक आगे बढ़ सकती हैं, और उनके अधिकार वास्तव में कहाँ तक विस्तृत हैं?

* * *

अब से बारह वर्ष पहले रूस की स्त्रियों की दशा भारतीय स्त्रियों से बहुत-कुछ मिलती हुई थी। वहाँ ज़ार का एक-तन्त्र शासन था, जो उन्नति का—परिवर्तन का बड़ा विरोधी था। और जहाँ तक सम्भव था, प्राचीन प्रथाओं को क़ायम रखने की कोशिश की जाती थी। भारत के समान रूस के अधिकांश निवासी भी किसान थे और वे घोर अज्ञानता, निर्धनता में फँसे थे। वहाँ पर राज-वंश वालों और ज़मींदारों की एक भिन्न श्रेणी थी, और ये लोग इन किसानों को हर तरह से दबा हुआ रखते थे और उन पर तरह-तरह के अन्याय-अत्याचार करते रहते थे। ये किसान घोर दरिद्र थे और भारतीय लोगों की अपेक्षा भी मैले, गन्दे और बुरी हालत में रहते थे। इन लोगों की स्त्रियाँ भी बिलकुल अशिक्षित और पुराने ढङ्ग की थीं। मज़दूरों की दशा भी किसानों से कुछ ही बेहतर थी। बड़े लोगों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार अवश्य था और वे लोग कितने ही अंशों में दूसरे यूरोपियन लोगों के समान रहते थे, पर उनकी स्त्रियों को सामाजिक अधिकार बहुत कम थे और कुछ शिक्षित होने पर भी उनका स्थान घर के भीतर ही समझा जाता था। राजनैतिक अधिकार पुरुषों को ही न थे, स्त्रियों की तो बात ही क्या?

पर जब से रूस में राज्य-क्रान्ति होकर ज़ार की बादशाही का अन्त हुआ है, तब से वहाँ की कायापलट हो गई। जो लोग घोर मूढ़, कुसंस्कारपूर्ण, गिरे हुए समझे जाते थे, वे संसार में सबसे अधिक सभ्य, सुधरे हुए और शिक्षित बनते चले जा रहे हैं। इस तमाम परिवर्तन में स्त्रियों का परिवर्तन आश्चर्यजनक और एक निगाह से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि उस देश वालों ने अच्छी तरह समझ लिया है कि जब तक स्त्री-समाज की उन्नति न होगी, स्त्रियाँ वास्तव में योग्य, शक्तिशाली और कार्य-दक्ष न बनेंगी तब तक देश की उन्नति स्थायी और सम्पूर्ण नहीं समझी जा सकती। मूर्ख और निर्बल स्त्रियों की सन्तान कभी सुयोग्य और संसार के अन्य उन्नतिशील लोगों का मुक़ाबला करने वाली नहीं हो सकती। इसलिए वहाँ के नए शासकों ने स्त्रियों को सब प्रकार के अधिकार और सुभीते प्रदान किए हैं जोकि पुरुषों को प्राप्त हैं। वे समझते हैं कि चाहे लाखों बहाने बनाए जायँ, तर्क किए जायँ, प्रमाण दिए जायँ, प्राचीनता की दुहाई दी जाय, पर पराधीनता में रह कर कोई प्राणी सच्ची उन्नति नहीं कर

सकता। क्योंकि स्वाधीनता के बिना प्राणी में स्वावलम्बन का भाव पैदा नहीं होता और इसके बिना उन्नति के मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

विवाह

रूस में विवाह करना बहुत सहज काम है। वहाँ पर विवाह एक प्रकार का समझौता (Contract) है, जिसे दोनों पक्ष अपनी राज़ी से बिना किसी प्रकार के दबाव के करते हैं, और जिसके पालन करने को दोनों समान रूप से बाध्य होते हैं। विवाह के इच्छुक युवक तथा युवती अथवा स्त्री और पुरुष किसी जस्टिस ऑफ़ पीस के--जोकि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के समान होता है—सामने जाकर उसके रजिस्टर में दस्तख़त कर देते हैं। बस शादी हो गई। अगर कोई आदमी गिर्जाघर में जाकर धार्मिक विधि से शादी कराना चाहे तो उसके लिए भी कोई रोक नहीं है, पर उस शादी को क़ानून के अनुसार जायज़ नहीं समझा जाता। यहाँ पर हम उस देश के विवाह-सम्बन्धी क़ानून की एक दफ़ा उद्धृत करते हैं, जिससे पाठक उसकी वास्तविकता को समझ सकेंगे :—

"दफ़ा २—सिर्फ़ वे ही शादियाँ क़ानूनी मानी जायँगी जो कि 'Bureau for Record of Personal Status' में जाकर रजिस्टर्ड कराई जायँ। धार्मिक विधि से की गई शादी क़ानूनी तौर पर जायज़ नहीं मानी जायगी। पर जो शादियाँ २० दिसम्बर १९१७ से पहले धार्मिक विधि द्वारा की गई हैं, उनको जायज़ मान लिया जायगा। शादी की रस्म प्रकट रूप में होनी चाहिए और 'Record of Personal Slatus' के रजिस्ट्रार या 'Notari Public' (एक अफ़सर) द्वारा अदा की जानी चाहिए। जो शादियाँ नामञ्ज़ूर की जायँगी उनको प्रकट करने की ज़रूरत नहीं है। रजिस्टर में दर्ज होते ही शादी जायज़ मान ली जायगी। अठारह वर्ष की उम्र का कोई भी पुरुष और सोलह वर्ष की उम्र की कोई भी स्त्री शादी कर सकती है। बहु-विवाह करना ग़ैर-क़ानूनी है। एक ही ख़ून के व्यक्तियों की शादी नहीं की जा सकती, जैसे भाई-बहिन और चाचा की लड़की या चाचा का लड़का। जिन लोगों का दिमाग़ दुरुस्त नहीं है उनकी भी शादी नहीं हो सकती। नाबालिग़ों की शादी नाजायज़ क़रार दी जायगी।"

तलाक़

रूस में शादी करना जितना आसान है उतना ही आसान तलाक़ देना भी है। किसी भी समय—चाहे शादी के दस-बीस दिन बाद ही—स्त्री-पुरुष दोनों में से अगर कोई भी तलाक़ देना चाहे तो उसे एक दूसरे सरकारी अफ़सर के सामने जाकर अपनी इच्छा प्रकट करनी पड़ती है, और उसी समय तलाक़ मञ्ज़ूर हो जाता है। वह अफ़सर दो-चार सवाल पूछता है। क्या कोई बच्चा है? स्त्री विवाहित अवस्था का नाम क़ायम रखना चाहती है या अपना पुराना नाम? ये सब बातें दर्ज कर ली जाती हैं और उसी समय तलाक़ का हुक्मनामा उसके हवाले कर दिया जाता है। अगर कोई सन्तान न हो तो सारा मामला हमेशा के लिए ख़त्म हो जाता है। राज्य-क्रान्ति के आरम्भ में जो क़ानून बना था उसके अनुसार पुरुष और स्त्री दोनों का रज़ामन्द होना आवश्यक था, पर अब नए क़ानून के मुताबिक़ तलाक़ की एक भी अर्ज़ी नामञ्ज़ूर नहीं की जाती, चाहे वह सिर्फ़ स्त्री द्वारा दी जाय, चाहे पुरुष द्वारा।

पर यदि स्त्री को बच्चा हो तो दूसरे ही उपाय का अवलम्बन किया जाता है। तलाक़ मञ्ज़ूर होने से पहले माँ-बाप दोनों में से एक को बच्चे को अपने पास रखना स्वीकार करना पड़ता है, और जैसा कि सर्वत्र मनुष्य का स्वभाव है, इस काम की ज़िम्मेदारी अक्सर माता ही अपने सर पर लेती है। तब पिता को, अगर एक बच्चा हो तो, अपनी आमदनी का कम से कम एक तिहाई हिस्सा देना पड़ता है, अगर बच्चे एक से ज़्यादा हों तो आधा हिस्सा देना पड़ता है, पर इससे ज़्यादा किसी दशा में नहीं देना पड़ता, चाहे कितने भी बच्चे और कितनी भी तलाक़ दी हुई स्त्रियाँ क्यों न हों। जब तक लड़का अठारह वर्ष का न हो जाय तब तक पिता को उसका ख़र्च देना होता है।

इस नए क़ानून के कारण कितने ही पुरुष बहुत असन्तुष्ट हैं। कुछ समय पहले एक कैनेडियन स्त्री-यात्री ने एक रूसी से इस सम्बन्ध में बातें की थीं। वह रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी का उत्साही मेम्बर भी था। उसने कहा :—

"अगर मैं अपनी स्त्री से प्रसन्न न हूँ तो मैं उसे सहज में बिदा कर सकता हूँ। यह नियम तो ठीक है।

पर अगर उसके बच्चा हो तो मुझे बराबर उसे ख़र्च देना पड़ेगा, जब तक कि लड़का अठारह वर्ष का न हो जाय। क्या यह कोई न्याय की बात है? मैं इस क़ानून को बहुत ख़राब समझता हूँ।"

"क्या तुम भाग कर इससे नहीं बच सकते?"

"ऐसा ख़याल करना भी फ़िज़ूल है। मैं कहीं भी चला जाऊँ, वे मेरा पता लगा लेंगे और अगर मैं राज़ी से ख़र्च नहीं दूँगा तो वह मेरी तनख़ाह में से काट लिया जायगा।"

"क्या यह सम्भव नहीं है कि तुम अपनी असली आमदनी को छुपा सको?"

"ऐसी कोशिश करना ख़तरे की बात है। क्योंकि अगर स्त्री को सन्देह हो जाय, तो वह अदालत में शिकायत कर सकती है। अगर अदालत में उसकी बात साबित हो जाय तो मुझे छै महीने के लिए जेल जाना पड़े और पाँच सौ रूबल (साढ़े सात सौ रुपया) जुर्माना देना पड़े।

रूस की अधिकांश स्त्रियाँ तलाक़ के इस क़ानून से सन्तुष्ट हैं। कुछ यूरोपियन लोगों को इस क़ानून में व्यभिचार या दुराचार की बू आती है। क्योंकि वे कहते हैं कि यदि स्त्री और पुरुष चाहे जब शादी कर लें और चाहे जब तलाक़ दे दें तो इसमें और व्यभिचार में फ़र्क़ ही क्या रहा? इसी क़ानून के आधार पर संसार के मालदार-पक्ष के अख़बारों ने रूसी लोगों की चरित्र-हीनता की बातें उड़ा रक्खी हैं। जब उपरोक्त कैनेडियन रमणी ने इस सम्बन्ध में एक रूसी कम्यूनिस्ट स्त्री से बातचीत की तो उसने छूटते ही कहा :—

"तुम्हारे और मेरे देश में सब से बड़ा फ़र्क़ यह है कि आप लोग ढोंग करते हैं और हम उसे पसन्द नहीं करते। आप अच्छी तरह जानती हैं कि आप लोगों के यहाँ अगर कोई आदमी अपनी स्त्री से असन्तुष्ट होता है तो वह किसी तरह अपने लिए दूसरी स्त्री प्राप्त कर लेता है, पर इस सम्बन्ध में कुछ प्रकट नहीं करता। हमारे यहाँ के क़ानून में अगर कोई विशेषता है तो यही कि यहाँ हम इस मामले में ईमानदारी से काम ले सकते हैं।"

इसी प्रकार एक दूसरी स्त्री ने जवाब देते हुए कहा—

"रूस में स्त्रियों की स्थिति उस तरह की दिखावटी नहीं है जैसी कि पूँजीवादी देशों में है।"

चरित्र

जो लोग रूस-निवासियों के चरित्र पर आक्षेप करते हैं, उनको ज़रा अपने घर की हालत देखना चाहिए। ज़ाहिर में सच्चरित्रता, पवित्रता, पतिव्रत आदि का ढोल पीटा जाता है, पर भीतर ही भीतर न मालूम कितना व्यभिचार, दुराचार और उसके छुपाने के लिए कितनी असत्य रचनाएँ, छल और कपटपूर्ण योजनाएँ हुआ करती हैं। गुप्त व्यभिचार की बात छोड़ भी दें तो केवल एक यही बात कि हमने अपनी काम-वासना को तृप्त करने के लिए बेशुमार स्त्रियों को वेश्या बना रक्खा है, व्यभिचार द्वारा पेट भरने को मजबूर कर रक्खा है, हमारी सच्चरित्रता की पोल अच्छी तरह खोल देती है। जहाँ अभी हमारे एक-एक शहर में चालीस-चालीस हज़ार तक वेश्याएँ मौजूद हैं, रूस के उनसे बड़े शहरों में प्रकट में एक भी वेश्या नज़र नहीं आती और ढूँढ़ने पर भी शायद दस-बीस से अधिक न मिल सकें। जब कि हमारे यहाँ अभी तक ज़्यादा से ज़्यादा यह हुआ है कि कुछ शहरों के मुख्य हिस्सों से वेश्याओं को हटा दिया गया है, रूस में वेश्यावृत्ति ही ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे दी गई है। पर इस अपराध के लिए दण्ड पुरुषों को ही दिया जाता है। अगर यह मालूम हो जाय कि किसी पुरुष ने एक ऐसी स्त्री को, जो नियमित रूप से उसके पास नहीं रहती, केवल सम्भोग के लिए रुपया दिया है, तो उसे फ़ौजदारी सुपुर्द किया जाता है और सज़ा मिलती है। यह क़ानून वर्तमान साम्यवादी सरकार ने बनाया है। इसके पहले वहाँ की ज़ारशाही सरकार ख़ुद वेश्या-गृहों का सञ्चालन करती थी, जहाँ कि एक नियत फ़ीस देने पर लड़कियाँ किराए पर मिल सकती थीं। इन वेश्यागृहों के उद्घाटन की रस्म पुलिस के अफ़सरों के हाथों से अदा की जाती थी और रूस के सनातनी-धर्माचार्य उनको आशीर्वाद देते थे। अब भी कुछ लोगों ने गुप्त रीति से क़ानून के ख़िलाफ़ इस तरह के गृह खोल रक्खे हैं, पर पुलिस उनकी जाँच करती रहती है और इस तरह चरित्र-हीनता का व्यापार करने वालों को बहुत कड़ी सज़ा दी जाती है।

सामाजिक और आर्थिक अधिकार

रूस की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पूर्ण स्वाधीन हैं और उनको अपने भरण-पोषण के लिए पति के सहारे रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनको बचपन से पुरुषों के समान ही सब तरह की शिक्षा दी जाती है और वे जिस उद्योग, धन्धे, नौकरी आदि को पसन्द करें, उसका ज्ञान प्राप्त करने का उन्हें पूरा सुभीता दिया जाता है। इतना ही नहीं, 'सोवीट-यूनियन' (रूस के साम्यवादी राज्य) के क़ायदे के मुताबिक़ आर्थिक दृष्टि से स्त्री का व्यक्तित्व पुरुष से स्वतन्त्र माना जाता है और उसे अलग वृत्ति—जीवन-निर्वाह की सामग्री मिलती है। जिस प्रकार ५५ वर्ष की उम्र के पश्चात् पुरुष को काम करने की आवश्यकता नहीं रहती और वह निजी ख़र्च जुटाने की तमाम ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार ५० वर्ष की अवस्था के उपरान्त स्त्री को भी कोई काम नहीं करना पड़ता, चाहे वह पति और बाल-बच्चों के साथ रहे और चाहे अलग। उसके भरण-पोषण का भार समाज के ज़िम्मे रहता है।

विवाह के पश्चात् स्त्री की सम्पत्ति पति की सम्पत्ति से बिलकुल अलग रहती है। अगर किसी विवाह-सम्बन्ध के फल से पत्नी की सम्पत्ति पर हानिकारक प्रभाव पड़ता हो तो उसे ग़ैर-क़ानूनी माना जाता है। विवाह के पश्चात् यूरोपियन देशों में और अब भारत के शिक्षित समाज में भी, पत्नी को पति के नाम से सम्बोधन किया जाता है। पर रूस में पत्नी अगर चाहे तभी पति के नाम को ग्रहण करती है, नहीं तो अपने पहले नाम को ही क़ायम रखती है। कुछ स्त्रियाँ पति के और अपने दोनों नामों को मिला लेती हैं। अगर पति को नौकरी या दूसरे कार्यवश स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता पड़े तो पत्नी उसके साथ जाने को बाध्य नहीं होती। रूस में विवाह का अर्थ, रुपए-पैसे के मामले में, यही माना जाता है कि पति-पत्नी आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करें। यह ज़िम्मेवारी दोनों पर समान रूप से है। अगर किसी कारण पति असहाय अवस्था को प्राप्त हो जाय तो पत्नी का कर्तव्य है कि उसका भरण-पोषण करे, और यदि पत्नी की ऐसी दशा हो जाय तो पति को उसका भार ग्रहण करना आवश्यक है। १०-७-२४

कारख़ानों में काम करने वाली स्त्रियों की दशा बहुत सन्तोषजनक है। स्त्री होने के कारण उनके वेतन में किसी प्रकार की भी कमी नहीं की जाती और जिस काम का जितना वेतन पुरुषों को मिलता है उतना ही स्त्रियों को दिया जाता है। हमारे यहाँ इससे उलटा हाल देखने में आता है। स्त्री चाहे जितना कठिन और थकाने वाला काम करे, पर उसको सदा पुरुष से कम वेतन दिया जाता है और ज़्यादातर लोग इस कम वेतन के ख़्याल से ही स्त्रियों को नौकर रखते हैं। रूसी कारख़ानों में वेतन के सिवाय काम करने के समय स्त्री-मज़दूरों के बच्चों की देख-भाल का बड़ा अच्छा इन्तज़ाम है। बच्चों को नहलाया जाता है, नए कपड़े पहिनाए जाते हैं, खिलाया-पिलाया जाता है, खेलने और खेल द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाता है। छोटे बच्चों की ख़बरदारी बड़े ध्यान के साथ की जाती है और उनको नियत समय पर नहलाया-धुलाया और खाने को दिया जाता है। इन तमाम कामों के बदले माताओं को एक पैसा भी नहीं देना पड़ता, तमाम ख़र्च कारख़ाने की तरफ़ से किया जाता है। जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होता है तो दो महीने पहले और दो महीने बाद में उसे कुछ भी काम नहीं करना पड़ता, पर वेतन पूरा मिलता है। बच्चा पैदा होने से आठ महीने तक कारख़ाने की तरफ़ से उसे नौ रूबल (१३॥ रुपया) प्रति मास अधिक दिया जाता है जिससे वह ज़्यादा दूध ख़रीद सके। इस तमाम समय में उसको हर तीसरे घण्टे कुछ देर की छुट्टी दी जाती है, जिससे शिशु-गृह में जाकर बच्चे को दूध पिला सके।

राजनैतिक अधिकार

रूस में हर एक अठारह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, वोट (मत) देने का अधिकार है, और स्त्रियाँ किसी भी पद के लिए उम्मेदवार हो सकती हैं। यूरोप के दूसरे कितने ही देशों में भी स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त है, और कहने के लिए हमारे भारत में भी स्त्रियाँ यह अधिकार हासिल कर चुकी हैं, पर इनमें दिखावट ज़्यादा है, तत्व बहुत कम। हमारे देश में तो कुटुम्ब के बन्धनों और घोर आर्थिक पराधीनता के कारण अधिकांश स्त्रियाँ न वोट का अर्थ समझती हैं न इस अधिकार का उपयोग करने की इच्छा रखती हैं। इङ्गलैण्ड आदि दूसरे देशों में भी स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से अधिकांश में

पुरुषों के आश्रित रहती हैं और उनका वैवाहिक बन्धन भी पराधीनता-युक्त होता है । इसलिए वे वोट का अधिकार पाकर भी उसका पूरा उपयोग नहीं कर सकतीं, न उससे अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न कर सकती हैं । इस बार इङ्गलैण्ड के पार्लामेण्टरी-चुनाव में स्त्री-वोटरों की संख्या पुरुषों से अधिक थी, और वे चाहतीं तो उस देश में स्त्रियों का आधिपत्य स्थापित कर सकती थीं, पर इसके विरुद्ध अधिकांश मेम्बर पुरुष ही चुने गए हैं, स्त्री-मेम्बरों की संख्या उँगलियों पर गिनने लायक़ है । पर रूस की दशा भिन्न है और वहाँ के शासन-विधान में स्त्रियों को प्रत्येक दृष्टि से पुरुषों के समान अधिकार मिले हैं । कारख़ानों और अन्य स्थानों में नौकरी करने वाली स्त्रियों को श्रमजीवी-समिति (Worker's Council) में अपने मेम्बर भेजने का अधिकार है । इन मेम्बरों की संख्या स्त्रियों की संख्या का दशमांश होती है । ये श्रमजीवी-समितियाँ ही रूस के शासन का आधार हैं । इन्हीं समितियों द्वारा ज़िला और प्रान्तीय शासन-समितियों या पञ्चायतों के लिए मेम्बर चुने जाते हैं, और फिर इनके द्वारा रूस की सर्व-प्रधान शासन-सभा 'यूनियन कॉङ्ग्रेस ऑफ़ सोवीट' के मेम्बरों का चुनाव होता है । इस प्रकार स्त्रियों के लिए ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त करने का मार्ग खुला हुआ है और कितनी ही स्त्रियाँ शासन-विभाग के बड़े-बड़े पदों पर काम भी कर रही हैं । तो भी अभी स्त्रियों की उन्नति का आरम्भ-काल होने और शिक्षा की आरम्भिक दशा के कारण इस विषय में उन्नति की बड़ी गुञ्जायश है । पर यदि इसी क्रम से उन्नति होती रही तो दस-पन्द्रह वर्ष में रूस के शासन में स्त्रियों की प्रधानता हो जाना असम्भव नहीं ।

शिक्षा

रूस में आजकल शिक्षा की तरफ़ बहुत ध्यान दिया जा रहा है, क्योंकि वे अच्छी तरह समझ चुके हैं कि उन्नति का असली साधन यही है । ज़ार के शासन के समय पढ़े-लिखे लोगों की संख्या लगभग बीस सैकड़ा थी । राज्य-क्रान्ति के सफल होते ही बॉलशेविकों ने ज़ोरों के साथ शिक्षा का प्रचार आरम्भ किया और ऐसा कार्यक्रम बनाया कि दस वर्ष के भीतर अर्थात् सन् १९२७ तक अठारह साल से लेकर पैंतीस साल तक की उम्र के सब व्यक्ति शिक्षित हो जायँ । यह कार्यक्रम बहुत अंशों में सफल हो चुका है और उस देश के शिक्षितों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है । सन् १९२६ में बारह साल से कम उम्र के लड़के-लड़कियों में से देहातों में ६० प्रति सैकड़ा और शहरों में १०० प्रति सैकड़ा स्कूलों में पढ़ने को जाते थे ।

जैसा लिखा जा चुका है, रूस में लड़कों और लड़कियों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं । दोनों को एक ही स्कूलों में साथ-साथ शिक्षा दी जाती है और दोनों के लिए पढ़ना अनिवार्य है । वैसे स्त्रियाँ स्वयं भी इस तरफ़ बहुत ध्यान दे रही हैं । क्रान्ति होते ही स्त्रियों ने अपना सङ्गठन किया और भिन्न-भिन्न समितियाँ बना कर शिक्षा ग्रहण करने लगीं । आरम्भ में पढ़े-लिखे और विद्वान् लोगों ने इस काम में कम्यूनिस्टों की बिलकुल सहायता नहीं की । पर कुछ समय बाद वे अपनी भूल को समझ गए और अब कई वर्षों से वे बड़े उत्साह के साथ इस काम को कर रहे हैं और लिख कर तथा व्याख्यानों द्वारा स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं । देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्त्रियों के चार पत्र निकलते हैं, इनसे शिक्षा-प्रचार में सब से अधिक सहायता मिली है । इन पत्रों का काग़ज़, छपाई आदि मामूली होती है, पर उनमें काफ़ी चित्र रहते हैं और देखने में भी वे चित्ताकर्षक मालूम होते हैं । पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इन चारों पत्रों की बिक्री इतनी अधिक है कि उससे उनका ख़र्च ही नहीं निकल जाता, वरन् वे अपनी आमदनी में से पार्टी के कोष में काफ़ी सहायता देते रहते हैं । इस विषय में स्त्रियों में कितना उत्साह है, यह इसी एक बात से मालूम हो सकता है कि कितने ही देहातों में स्त्रियों ने कुछ ज़मीन अलग करके उसमें शाक, भाजी और फलों की खेती की हुई है और इसकी आमदनी से वे पत्रों को ख़रीदती हैं और जो स्त्रियाँ ख़रीदने की सामर्थ्य नहीं रखतीं उनके लिए मँगवा देती हैं ।

बच्चों की रक्षा और शिक्षा

बच्चों की रक्षा और शिक्षा का जितना ख़याल रूस में रक्खा जाता है, उतना संसार के किसी देश में नहीं रक्खा जाता । कहने को तो सभी इस कहावत का उपयोग करते हैं—'आज के बच्चे कल के नागरिक ।' अर्थात् आज जो बच्चे हैं, बीस-तीस साल बाद वे ही देश के नागरिक, कार्यकर्त्ता, व्यवस्थापक हो जायँगे ।

इसलिए हम बच्चों को जैसा बनाएँगे, जैसी शिक्षा देंगे, उसका अर्थ यह है कि हम अपने देश या जाति को वैसा ही बनाना चाहते हैं। अगर हम अपने बच्चों को झूठ बोलने, चोरी करने से बाज़ नहीं रखते तो इसका मतलब यह है कि हम अपनी जाति को झूठों और चोरों की जाति बनाना चाहते हैं। यह एक ऐसी सीधी बात है कि सब कोई इसकी सचाई को समझते हैं। पर आश्चर्य यह है कि इसके अनुसार आचरण बहुत थोड़े लोग करते हैं। क्या इस कथन को कोई झूठ साबित कर सकता है कि हमारे देश में चाहे बच्चों का ऊपरी लाड़-प्यार कितना भी क्यों न किया जाय, उनके चरित्र-गठन की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता और हमारे बच्चे उसी प्रकार बढ़ते हैं जैसे घास-फूस या जङ्गली झाड़ियाँ। न उनका कोई क्रम होता है न उद्देश्य। संयोग या परिस्थिति उनको जैसा बना देते हैं वे वैसे ही बन जाते हैं।

पर रूस वालों ने उपरोक्त कहावत को दिल के भीतर जमा लिया है और वे उस पर अपनी पूरी ताक़त से अमल कर रहे हैं। वहाँ की सरकार का लक्ष्य तो यह है कि सब बच्चों को दो-तीन वर्ष की अवस्था से ही एक सार्वजनिक संस्था में रक्खा जाय और वहाँ सरकारी ख़र्च से उनका पालन-पोषण तथा शिक्षण ऐसे अच्छे से अच्छे ढङ्ग से किया जाय कि बड़े होकर वे राष्ट्र या जाति की अधिक से अधिक सेवा—हित कर सकें। इस सम्बन्ध में एक विदेशी यात्री के प्रश्न करने पर एक रूसी कम्यूनिस्ट ने कहा था—"अपने पुत्र के सम्बन्ध में मेरा सबसे पहला कर्तव्य यह है कि मैं उसे कम्यूनिस्ट-राज्य का एक श्रेष्ठ नागरिक बना दूँ। इसके बाद अगर उसे इतना सुभीता हो कि वह मेरा बेटा भी बन सके, तो मैं बहुत ख़ुश हूँगा।"

पर अभी तक सरकार के पास इतना रुपया नहीं कि इस स्कीम को अमल में ला सके और सब बच्चों को इस प्रकार अपने ख़र्च से वास्तविक शिक्षा दे सके। तो भी जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, तमाम नौकरी करने वाली स्त्रियों के बच्चों के लिए, उनके कारख़ानों और ऑफ़िसों में शिशु-गृह बने हुए हैं, जहाँ पर बच्चों की देख-रेख बड़े ध्यान और परिश्रम के साथ की जाती है। क्लब और दूसरी संस्थाओं में, जहाँ स्त्रियाँ अध्ययन के लिए जाती हैं, वे अपने बच्चों को होशियार दाइयों (नर्स) के सुपुर्द कर जाती हैं, जो उनको बड़ी सफ़ाई और आराम से रखती हैं। रूस की राजधानी मास्को में ऐसे शिशु-गृहों की संख्या सैकड़ों है। जो बच्चे कुछ बड़े होते हैं उनको किंडरगार्टन स्कूलों में रक्खा जाता है और उनको खेल के साथ शिक्षा देने का समुचित प्रबन्ध रहता है। इन लड़कों को गर्मी के मौसम में देहातों में ले जाकर ख़ूब सैर कराई जाती है, जिससे उनका व्यावहारिक ज्ञान बहुत बढ़ता है और वे केवल किताबी कीड़े ही नहीं बने रहते।

अन्य बातें

इन सब सुधारों के कारण रूस की स्त्रियाँ उस महान् भार और आर्थिक पराधीनता से मुक्त हो गई हैं, जिसके नीचे हमारे देश और दूसरे कितने ही देशों की स्त्रियाँ दबी हुई हैं, जिसके द्वारा उनका शरीर और आत्मा कुचला जा रहा है, और वे सिर नहीं उठा सकतीं। अब उनमें सच्ची स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन का भाव आ गया है और किसी पुरुष की ताक़त नहीं कि स्त्री पर ज़रा भी अन्याय या अत्याचार कर सके। उनको ग़ुलाम बना कर रखना, उनको पैरों की जूती समझना, उनको पशुओं की भाँति बेचना, उनके साथ जड़ पदार्थ के समान व्यवहार करना तो बहुत दूर की बातें हैं। उनका स्वाभिमान का भाव यहाँ तक बढ़ गया है कि आजकल पुरुष स्त्रियों के प्रति जिस प्रकार दिखावटी शिष्टाचार की बातें किया करते हैं उसे भी वे बिलकुल नापसन्द करती हैं। जैसे अगर कोई पुरुष रेल या ट्राम में जगह न होने पर उनको बैठाने के लिए ख़ुद खड़ा हो जाय तो वे इसे पसन्द नहीं करतीं। इसी प्रकार अगर कोई पुरुष उनके लिए दर्वाज़ा खोल दे, उनको पहले रास्ता देने के लिए अलग हट जाय तो इसे भी वे अपमान की बात समझती हैं। रूस के ऊँची श्रेणी वालों में पहले स्त्रियों के सामने ज़रा झुक जाने या उनका हाथ चूमने की प्रथा थी, अब स्त्रियों ने उसे बन्द कर दिया। दरअसल ये स्त्रियाँ ठीक मर्दों के बराबर अधिकार चाहती हैं, न कि दिखावटी शिष्टाचार और श्रेष्ठता का भाव, जिसके बदले में उनके वास्तविक अधिकारों पर कुठाराघात होता है।

स्त्रियों के उद्धार का सच्चा-मार्ग !

[लेखक—मिस्टर कैनिङ्ग आरनॉल्ड]

[इस लेख के लेखक इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध लेखक और कवि सर मैथ्यू आरनॉल्ड के सुपुत्र हैं। ये स्वयम् भी बड़े अच्छे लेखक और अध्ययनशील हैं। भारतीय सामाजिक विषयों में आपको विशेष दिलचस्पी है। आप बहुत समय तक देहात में किसानों के साथ मिलकर उन्हीं की तरह एक कच्चे मकान में रहे हैं और वहाँ की दशा का आपने बड़े ध्यान के साथ निरीक्षण किया है। आपके विचार इस विषय में कैसे गहन हैं, यह पाठकों को इसी लेख से मालूम हो जायगा। साथ ही यह भी प्रकट हो जायगा कि आप दूसरे बहुत से अङ्गरेज़ों के समान इन बातों को आक्षेप की नीयत से नहीं लिखते, वरन् आप सचमुच इस देश को हृदय से प्रेम करते हैं, इसे अपनी दूसरी मातृभूमि समझते हैं, और उसी प्रेम के वशीभूत होकर भारत की हितकांक्षा से आपने ये उद्गार प्रकट किए हैं।
—सम्पादक]

स्त्रियों का उद्धार संसार के लिए एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण सामाजिक समस्या है। इसका महत्व भारत के लिए पृथ्वी के दूसरे तमाम देशों की बनिस्बत ज़्यादा है। पूर्वीय देशों की परम्परागत प्रथा के अनुसार स्त्री-सम्बन्धी विषय बहुत समय से हौवा या निषिद्ध-वस्तु बना दिया गया है। मुझे याद आता है कि बीस वर्ष पहले जब मैं हिन्दुस्थान में आया था, तो मुझे आगाह किया गया कि मैं कभी किसी ऊँची जाति के हिन्दुस्थानी दोस्त के पत्नी के बारे में पूछ-ताछ न करूँ, क्योंकि यह एक बड़ी समाज-सम्बन्धी अज्ञानता प्रकट करने वाली बात है। यह प्रथा जोकि अङ्गरेज़ी-समाज में साधारण समझी जाती है, इस देश में बड़े दोष की निगाह से देखी जाती है। अगर मैं किसी जान-पहिचान वाले के घर की स्त्रियों का कुशल-समाचार पूछना चाहूँ तो मुझे घुमा-फिरा कर बात करनी चाहिए; जैसे 'आशा है आपके घर में सब लोग प्रसन्न होंगे'; या 'आपके बाल-बच्चे किस तरह हैं ?' चाहे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि मेरे दोस्त का विवाह अभी हुआ है और उसके कोई सन्तान नहीं है।

इस हौवे का ज़ोर अब कम होता जाता है, पर बहुत धीरे-धीरे। एक दिन इसका दूर होना सुनिश्चित है और भारत के कल्याण के लिए भी यह परमावश्यक है। कोई मुल्क सुरक्षित और सार-युक्त नहीं बन सकता; कोई मुल्क तरक़्क़ी नहीं कर सकता; कोई मुल्क दुनिया के दूसरे राष्ट्रों के बीच में अपना न्यायोचित और सम्मानित दर्जा हासिल नहीं कर सकता, जब तक कि उसकी स्त्रियाँ अज्ञानावस्था में क़ैदी बनी हुई हैं, मूर्खता-पूर्ण अन्धविश्वासों की शिकार बनी हुई हैं, और अकेली हज़ारों-लाखों वर्ष पुरानी दशा में पड़ी हुई हैं। बहुत वर्ष पहिले मेरे एक योग्य और सुधरे विचारों के हिन्दू-दोस्त ने भारत के भविष्य के सम्बन्ध में बातें करते हुए कहा था कि 'हिन्दुस्थान की सबसे बड़ी शत्रु (पितामही) है।' बेशक इससे बढ़कर सच बात और नहीं कही जा सकती। हिन्दुस्थान की अधिकांश दादियाँ भूतकाल की प्रतिनिधि होती हैं, और इस प्रतिनिधित्व से वे प्रसन्न रहती हैं। हिन्दुस्थानी घरों में उनकी ताक़त बहुत ज़्यादा होती है, और वह ताक़त प्राचीन और गले-सड़े विचारों की रक्षा में ख़र्च की जाती है। वे हठपूर्वक इस बात को स्वीकार करने से इनकार करती हैं कि सब से बड़ा विजेता और घोर अत्याचार-प्रिय निरङ्कुश सत्ताधारी भी प्रचलित रीति-रिवाजों में परिवर्तन कर सकता है। सब प्रकार का जीवन, चाहे वह राष्ट्रीय हो या व्यक्तिगत, विकासमय है। प्राणी-जगत और आत्मा के विषय में विकास ही ईश्वरीय नियम है। पश्चिम के लोग इस सचाई को बहुत अच्छी तरह से समझ गए हैं कि अब सिर्फ़ वे ही मज़हब, जोकि समय की गति

के अनुसार अपने में बदलाव कर सकते हैं, क़ायम रह सकते हैं और मनुष्य-जाति का कल्याण कर सकते हैं।

पर स्त्रियों के सुधार-आन्दोलन में जो प्रश्न गर्भित हैं वे सचमुच ऐसे निजी और अपने घर से ताल्लुक़ रखने वाले हैं कि एक परदेशी, चाहे वह कैसा भी सहानुभूति और सम्मान का भाव क्यों न रखता हो, इस मामले में हस्तक्षेप करने से हिचकता है। इसलिए मैं इस लेख में जो कुछ भी राय ज़ाहिर करूँगा, उसके लिए यह कह कर क्षमा-याचना किए लेता हूँ कि मैं भारत को अपनी दूसरी मातृभूमि के समान प्रेम करता हूँ; और मैं जो कुछ लिख रहा हूँ उसका कारण इस देश और यहाँ के निवासियों के प्रति सच्ची हितचिन्तकता, दृढ़ सम्मान और प्रेम का भाव ही है। इसलिए मैं निस्सङ्कोच होकर कहना चाहता हूँ कि स्त्रियों के उद्धार का आन्दोलन, जो कि सौभाग्यवश आजकल शक्ति और गति प्राप्त कर रहा है, मौजूदा आन्दोलनों में सब से ज़्यादा ज़रूरी और महत्वपूर्ण है। यह विषय इतना आवश्यकीय है, इतना गम्भीर है और सब प्रकार की सारयुक्त और स्थायी उन्नति के लिए ऐसा मुख्य है कि तमाम सच्चे देश-भक्तों के हृदय में इसे सब से प्रथम स्थान मिलना चाहिए।

हर एक जाति की एक विशेष प्रतिभा होती है, एक विशेष जातीय चरित्र होता है, और किसी जाति के लिए इससे बढ़ कर दूसरा दुर्भाग्य नहीं हो सकता कि वह उस प्रतिभा और चरित्र को त्याग दे। भारतीय श्रोताओं और विशेष कर विद्यार्थियों की संस्थाओं के सामने मैंने बार-बार अपने व्याख्यानों में यह प्रार्थना की है कि वे बिना सोचे-समझे अपने देश में पश्चिमी देशों की नक़ल करने की घातक भूल से सावधान रहें। हर एक देश के पास, अगर वह जाति बिल्कुल ही पिछड़ी हुई और जङ्गली न हो, जैसे कि दक्षिणी पैसफ़िक सागर के कुछ टापुओं के लोग हैं—कुछ न कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनसे दूसरे देश वाले शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। किसी भी देश के रीति-रिवाज और आचार न तो बिल्कुल भले ही होते हैं न बिल्कुल बुरे ही। इसलिए भारतवासियों को जाँच-पड़ताल करके निश्चय करना चाहिए। उनको हर एक परिवर्तन के गुण और दोषों पर अपनी बुद्धि से विचार और निर्णय करना चाहिए। उनको अपने हृदय में पूछना चाहिए कि यह हमारे देश के लिए कल्याणकारी होगा या हानिकारक। साथ ही यह कहना भी कि "हम सदा से जो करते आए हैं वही सर्व-श्रेष्ठ है—क्योंकि वह सदा से हमारा रहा है, इसलिए वह अवश्य ही सर्वोत्तम है" भारतवासियों के लिए बड़ा घातक होगा। यद्यपि भारतवर्ष की शानदार प्राचीन बौद्धिक उन्नति को देखते हुए यह कथन स्वाभाविक है, पर साथ ही यह अज्ञानता-मूलक घमण्ड को प्रकट करता है।

भारतवर्ष की स्त्रियों का पूर्ण रूप से उद्धार होना चाहिए और अवश्य होगा। पर यह 'पूर्ण' शब्द आपेक्षिक है। भारतीय स्त्रियों की स्वतन्त्रता निश्चय ही भारतवर्ष की आवश्यकताओं और विशेष परिस्थिति के पूर्णतः अनुकूल होनी चाहिए। वह इस अपेक्षा से तो 'पूर्ण' होनी चाहिए कि स्त्रियाँ अपनी जाति और मातृ-भूमि की सेवा और कार्य करने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र हों। पर अगर भारतीय सुधारक इस देश में पश्चिमी स्त्रियों के आन्दोलन की जैसी की तैसी नक़ल करने लगे तो यह सिवाय दुर्भाग्य के और कुछ न होगा। मेरा और दूसरे अनेक अङ्गरेज़ों का मत है कि पश्चिमी स्त्रियाँ उचित से बहुत अधिक बढ़ रही हैं और यदि लोग शीघ्र ही चैतन्य न हुए, तो इस ढङ्ग से इङ्गलैण्ड और दूसरे पश्चिमी देशों को बहुत हानि उठानी पड़ेगी। स्त्री-पुरुषों के आपेक्षिक कार्यों के सम्बन्ध में ईश्वरीय नियम बिल्कुल स्पष्ट हैं। सब से मुख्य बात यह है कि स्त्री, स्त्री ही बनी रहे। कुछ समय पहले डॉ० टेम्पिल कैण्टरबरी के आर्क बिशप थे, जो कि इङ्गलैण्ड में प्रधान धर्माचार्य समझे जाते हैं। उनसे बढ़ कर दयालु-हृदय मनुष्य शायद ही दूसरा हो, पर वे उन विषयों की जिनसे दूसरे लोग हिचकिचाते और डरते हैं, बड़ी कठोरता और स्पष्टता के साथ आलोचना करते थे और उनका सामना करते थे। मेरी एक चचेरी बहिन की शादी एक पादरी के साथ हुई थी जो कैण्टरबरी के अधीन था। वह एक छोटे से देहाती गिरजाघर में काम करता था। शादी के कुछ ही दिनों बाद मेरी बहिन को कैण्टरबरी में एक सहभोज में शामिल होना पड़ा। वह डॉ० टेम्पिल की बग़ल में बड़े सङ्कोच के साथ दबी हुई बैठी थी। एक बार आर्क बिशप ने उससे पूछा—"तुमको अपना

नया घर पसन्द आया?" मेरी बहिन ने झिझकते हुए जवाब दिया—"वह बहुत सुन्दर है, पर वहाँ कोई काम करने के लिए नहीं है। वह बड़े निर्जन प्रान्त में है, और सिवाय अपना काम करते रहने के और कोई उपाय नहीं है।" डॉ० टेम्पिल ने रूखेपन के साथ ज़ोर से कहा—"तुम्हारा काम अपना रसोई-घर (गृहस्थी) को सँभालना है और तुम्हारे पति का लोगों के धार्मिक कृत्य कराना।"

इसमें सन्देह नहीं कि एक सङ्कोचशील नई दुलहिन के लिए इस प्रकार का जवाब बड़ी उद्दण्डता का परिचायक था। पर इस तरह आर्क बिशप ने सख़्ती के साथ ठीक उस बात को प्रकट कर दिया जो कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का मूल-मन्त्र है। पुरुषों और स्त्रियों के उचित कार्य-क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न हैं, और जो जाति इस सचाई को भूल जाती है उसे सामाजिक अव्यवस्था और अन्य बुराइयों का सामना करना पड़ता है। हर एक स्त्री का स्थान रसोई-घर के भीतर ही नहीं है, पर अगर स्त्रियों के उद्धार का यह मतलब हो कि सभी स्त्रियाँ अपने जीवन के सच्चे कर्तव्यों को त्याग दें, तो निश्चय ही वह उद्धार या स्वतन्त्रता एक अभिशाप है न कि आशीर्वाद। प्रसन्नता की बात है कि भारतीय स्त्रियों से इस प्रकार ग़लती होने की आशा बहुत कम है। स्त्रियों के उद्धार के प्रश्नों के हर एक पहलू पर बुद्धि द्वारा और विचार-पूर्वक उसके गुण-दोषों का निर्णय करना चाहिए। इस विषय में हमारा लक्ष्य सदा यह रहना चाहिए कि परिवर्तन के फल से शिक्षा का प्रचार होकर देश का कल्याण हो और अन्धकार का नाश हो; स्वास्थ्य-सम्बन्धी और स्वच्छता के ज्ञान की उन्नति हो; वर्तमान समय में प्रचलित आत्मा को निर्बल करने वाले तथा जाति का नाश करने वाले अन्ध-विश्वासों का नाश हो; जिनकी सबसे बड़ी पुजारी और रक्षक भारतीय दादियाँ हैं।

स्वभावतः वह मोरचा या कुप्रथा, जिस पर हमको सबसे पहले आक्रमण करना चाहिए 'पर्दा' है। पर्दे के विरुद्ध में बहुत सी कठोर बातें कही जा चुकी हैं और उनमें से कितनी बिल्कुल उपयुक्त हैं। कितने ही बड़े भारतीय नगरों में जैसा कठोर पर्दा अभी तक देखने में आता है, वह मनुष्य-समाज के उन घोर निर्दय अत्याचारों में से एक है, जो कि पृथ्वी पर किसी भी स्थान में किए जाते हैं। मिसाल के लिए कलकत्ते की हैरिसन रोड पर बारकों की तरह बनी हुई चालों के दम घोटने वाले, छोटे-छोटे कमरों में जो लड़कियाँ, युवती स्त्रियाँ क़ैद रहती हैं उनकी दशा देखनी चाहिए। न उनको हवा मिलती है, न नए दृश्य देखने में आते हैं, न कुछ व्यायाम होता है। इन बातों के फल से उस शहर की स्त्रियाँ जिस भयङ्कर संख्या में क्षय की बीमारी का शिकार होती हैं, वह इस बात का प्रमाण है कि इन ग़रीब, रोगी, कष्ट-पीड़ित प्राणियों को जन्म भर क़ैद रखने का क्या फल होता है। ये पर्दे की प्रथा की सबसे निकृष्ट और स्वार्थ-युक्त बुराइयाँ हैं। पर पहले भारत में पर्दे का एक ख़ास उद्देश्य था, और अब भी उसको पूरी तरह से एकदम नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से गम्भीर सामाजिक बुराइयाँ पैदा हो जाने का भय है। कुछ वर्ष पहले एक वृद्ध और बहुत ऊँचे दर्जे की भारतीय महिला के साथ इस विषय पर बातचीत करने का संयोग मुझे मिला था। मैं पर्दे के विरुद्ध बोल रहा था, इस प्रथा को मर्दों का निर्दय और स्वार्थयुक्त कार्य बतला रहा था। मेरे मत से यह एक जातीय-मूर्खता थी जिसके कारण देश की उन्नति रुकी हुई है; स्त्रियाँ अज्ञानी बनी रहती हैं जिससे वे बच्चों का पालन-पोषण बुद्धिमत्ता के साथ कर सकने में असमर्थ होती हैं। मैंने यह भी दिखलाया कि जहाँ तक मुझे मालूम है कि न तो हिन्दू धर्म-शास्त्रों में और न क़ुरान-शरीफ़ में ऐसी कोई आज्ञा है जिससे इस प्रथा का समर्थन होता हो। शास्त्रों के प्रमाणों से तो यही विदित होता है कि द्रौपदी और सीता बिना पर्दे के रहती थीं। और मेरे ख़्याल से ज़्यादातर मुसलमानों का मत भी यही है कि पैग़म्बर साहब ने कहीं पर पर्दे की आज्ञा नहीं दी है। उनकी प्यारी बीबी आयेशा ऊँट पर चढ़ कर उनके साथ लड़ाई के मैदान में गई थीं। मुहम्मद साहब ने स्त्रियों को केवल मसजिदों में जाने की इजाज़त ही नहीं दी है, वरन् इमाम का कार्य करने और प्रार्थना पढ़ कर सुनाने के लिए भी इनकार नहीं किया है। मेरी बात सुन कर उस महिला ने जवाब दिया—"आपने जो बातें कहीं वे सच हैं। अफ़सोस की बात है कि अज्ञानी लोग, जिनकी संख्या भारतवर्ष में बहुत ज़्यादा है, ख़्याल

करते हैं कि पर्दा धार्मिक आज्ञा के कारण प्रचलित है। पर ऐसी कोई आज्ञा नहीं है। तो भी, साहब, यह एक आवश्यक चीज़ है। कितनी ही पीढ़ियों से हमारे यहाँ के मनुष्यों का जिस प्रकार पालन हुआ है वह आप लोगों की अपेक्षा बहुत भिन्न है। उनको सिर्फ़ एक ही निगाह से स्त्री को देखने की शिक्षा मिली है, अर्थात् बुरी निगाह से। पर यह उनका दोष नहीं है, वरन् इसे उनका अभाग्य समझा जा सकता है। वे न कभी औरतों को देखते हैं, न उनसे मिलते हैं न उनके साथ शामिल होते हैं, और इन कारणों से उनके विचार भ्रष्ट हो जाते हैं। आपके देश में लड़कों का पालन दूसरी तरह से होता है। छोटेपन से ही उनको अपनी बहिन की सहेलियों के साथ मिल कर बैठने की आदत पड़ जाती है। वे उनके साथ बातें करते हैं, सैर करते हैं, खेल खेलते हैं, और इसलिए उनका भाव भिन्न प्रकार का होता है। उनके लिए किसी लड़की के साथ अकेला रहना कोई रहस्यपूर्ण या अस्वाभाविक बात नहीं है और इसलिए वे जानते हैं कि स्त्रियों का सम्मान किस तरह क़ायम रक्खा जाता है, किस तरह उनके साथ मित्रवत् व्यवहार किया जा सकता है, और किस तरह विषय-वासना सम्बन्धी प्रश्नों से दूर रहा जा सकता है। पर मुझे शोक के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अभी औसत दर्जे के भारतीय लोगों पर स्त्रियों के सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता। आगे चल कर उनका सुधार हो जायगा, पर जब तक ऐसा समय आवे, तब तक हमारी लड़कियों और स्त्रियों की रक्षा के लिए पर्दा ज़रूरी है।"

इसमें सन्देह नहीं कि इस बुद्धिमती वृद्धा महिला के शब्दों में बहुत-कुछ सचाई है। पर्दे का स्त्री-पुरुष सम्बन्धी प्रश्न पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसके कारण ऐसा भाव पैदा हो जाता है कि स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध केवल विषय-वासना की पूर्ति के लिए ही है और यही उसका एकमात्र उद्देश्य है। जैसा उस वृद्धा रमणी ने कहा, इसमें भारतीय लड़कों और मर्दों का ज़्यादा दोष नहीं है, वरन् यह उनके अभाग्य का सूचक है। इस बात पर कि पश्चिम के लोग जिस निगाह से स्त्रियों को देखते हैं, पूर्व के लोग उनको उससे बिल्कुल भिन्न निगाह से देखते हैं; यह नतीजा निकालना कि पश्चिमी देशों के सब लोग महात्मा हैं और पूर्व के देशों में सब पापी भरे हुए हैं, बिलकुल निरर्थक है। भारत की अपेक्षा अधिक सुखी, पवित्र, भक्तिमय, सच्चा और पारस्परिक प्रेमपूर्ण गृह-जीवन संसार के किसी भी देश में नहीं मिल सकता। यह प्राचीन प्रथा और परम्परा के नियमों का फल है, जिन्होंने सैकड़ों वर्षों तक पूर्वीय मनुष्यों पर प्रभाव डाल कर उनके स्वभाव को इस विषय में अनुचित रूप से बदल दिया है और ग़लत रास्ता दिखलाया है। कितने ही शिक्षित भारतीय माता-पिता अपनी लड़कियों को हम-उम्र लड़कों के साथ मिलने-जुलने, और कॉलेज जाकर नवयुवकों के साथ बैठ कर अध्ययन करने की अनुमति देते हैं; पर उनका अब तक का तजुर्बा हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। गतवर्ष बनारस में एक ब्राह्मण-महिला ने, जिसकी तीन सुन्दर लड़कियाँ कॉलेज में अध्ययन करती थीं, मुझसे कहा था—"मेरा विश्वास है कि लड़कियों को घर के भीतर बन्द रखने से उनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धी ऐसे विचारों को उत्तेजना मिलती है और उनके भीतर ऐसे ख़यालात पैदा होने लगते हैं जो कि अच्छी लड़कियों में, जिनकी माताओं द्वारा सावधानी के साथ परवरिश की गई हो, कभी नहीं पाए जाते।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे तजुर्बे सदा सफल नहीं हुआ करते। भारतीय नवयुवक और नवयुवतियों के ऊपर इस हानिकारक और भ्रष्ट-प्रथा का जो भारी बोझा रक्खा हुआ है उसको आहिस्ता-आहिस्ता और होशियारी के साथ हटाना होगा। स्त्री का व्यक्तित्व एक परम सुन्दर और हितकारी रत्न के समान है और उसकी सृष्टि मनुष्य का सच्चा-सहायक, सच्चा-मित्र बनने के लिए हुई है। स्त्री-पुरुष दोनों का कर्तव्य अलग-अलग है। हर एक की ज़िम्मेवारी अलग-अलग है, हर एक के जीवन का कार्य अलग-अलग है। अगर स्त्री-पुरुष अपने इन कार्यों को सचाई के साथ पूरा न करेंगे तो समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। पर भारतीय स्त्रियाँ एक निष्ठुर और नाशक बन्धन में बँधी हुई हैं, और वे अपने कर्तव्य को कुछ अंशों में ही पूरा कर सकती हैं। उनका परम आवश्यक कार्य बच्चों के चरित्र और बुद्धि का निर्माण करना है, जो कि राष्ट्र की रक्षा का मुख्य आधार है। पर इस कार्य के लिए भी उनके पर्दे को एकदम दूर नहीं हटाया जा सकता। क्योंकि वह आदमी, जो बहुत काल से अन्ध-

कार में रहा हो, एकाएक तेज़ रोशनी को बरदाश्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार मनुष्य की मूर्खता और अहङ्कार के शिकार इन अगणित प्राणियों को वर्तमान सामाजिक संसार के प्रकाश का, जिसका उनको कुछ भी ज्ञान नहीं, आहिस्ता-आहिस्ता आदी बनना होगा। भारत की करोड़ों स्त्रियों में से केवल बहुत थोड़ी ऐसी निकलेंगी जो अपने ख़ुशक़िस्मत और समझदार कुटुम्ब या व्यक्तिगत चरित्र की शक्ति के कारण एकाएक वर्तमान सामाजिक संसार में बिना किसी प्रकार की हानि उठाए सम्मिलित हो सकें।

पर्दे की प्रथा के समान ही, जिसके फल से भारतीय मनुष्य असंख्य पीढ़ियों से स्त्रियों को अनुचित और अशुद्ध दृष्टि से देखते आए हैं, बाल-विवाह और विधवा-विवाह-निषेध के प्रश्न भी बड़े महत्व के हैं। ये दोनों प्रथाएँ भारतीय समाज के रक्त को चूसने वाली हैं और भारतीय समाज पर बड़ा प्रभाव डाल रही हैं। मुसलमानों में से अधिकांश लोग बाल-विवाह को पसन्द नहीं करते, और उनकी जाति में विधवाओं को पुनर्विवाह की भी आज्ञा है, और युवती विधवाएँ प्रायः विवाह कर भी लेती हैं। पर पुराने ख़याल के हिन्दुओं की प्रथा इस सम्बन्ध में ऐसी निर्दयता-पूर्ण और भयङ्कर है, और ख़ास कर सात-आठ वर्ष की बच्चियों को, जिनके बाल-पतियों की मृत्यु हो जाती है, जीवन भर के लिए कष्ट में डाल देने की बात ऐसी घोर दुष्टतापूर्ण है कि कोई सामान्य अङ्गरेज़ इस विषय पर शान्ति के साथ विचार नहीं कर सकता, न कुछ लिख सकता है। मैं समझता हूँ कि इस विषय में मैं भी अपने ऊपर अधिक विश्वास नहीं कर सकता। इसलिए मैं इससे परित्राण पाने के लिए भारतवर्ष की परम-प्रेमी श्रीमती बेसेण्ट के एक व्याख्यान का कुछ अंश उद्धृत करना चाहता हूँ। हिन्दू-समाज के इस भयङ्कर दुराचार के सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व मद्रास में भाषण देते हुए उन्होंने बड़े प्रभावशाली शब्दों में भारतीय पिताओं से कहा था—

"जिस प्रकार परमात्मा हम लोगों का पवित्र-पिता है, उसी प्रकार का भाव हमको भी अपने पुत्रों के प्रति रखना चाहिए। अगर पिता अपने कर्तव्य को वास्तव में जानते हों; तो पुत्र हर एक मुशकिल के वक्त तुम्हारे पास आएगा; हर एक मुसीबत में तुम्हारी तरफ़ दौड़ेगा, और तुमसे सदा दूर रहने की कोशिश करने के बजाय—जैसा कि आजकल के पुत्र प्रायः करते हैं, क्योंकि वे पिता को उतना प्यार नहीं करते जितना उससे डरते हैं—वह समझेगा कि पिता से बढ़ कर दूसरा कोई मित्र नहीं हो सकता; संसार में ऐसी कोई बात नहीं है जिसको पिता से गुप्त रक्खा जाय; पुत्र की कोई बात ऐसी नहीं हो सकती जिसे ऐसा पिता, जोकि परम पिता का भाव रखता है, क्षमा न कर दे।"

इस प्रकार पुत्रों के प्रति पिता के कर्तव्य का वर्णन करके पुत्रियों के प्रति कर्तव्य के सम्बन्ध में वे कहती हैं—"अब मैं पुत्रियों के सम्बन्ध में विचार करती हूँ। अगर तुम सचमुच परम-पिता का भाव रखते हो, तो विचार करो कि क्या पुत्रियाँ अपने अधिकारों से अधिकांश में वञ्चित नहीं हैं? उन सात-आठ या नौ वर्ष की छोटी बच्चियों को देखो, जिनको तुम विवाह के अटल बन्धन में बाँध देते हो, जब कि उनको इस सम्बन्ध में किसी बात का पता भी नहीं होता; उन बाल-विधवाओं को देखो, जिनका जीवन एक ऐसे मृत-पति की छाया से अन्धकारपूर्ण हो गया है, जिसके साथ वे कभी नहीं रहीं; और तब तुम इस बात पर विचार करो कि क्या तुमने अपने पवित्र कर्तव्य का ध्यान रक्खा है? किसी सच्चे पिता को इस बात का क्या अधिकार है कि वह एक बच्ची को, जिसने गोद में सन्तान की बजाय अभी तक गुड़िया ले रक्खी है, मातृत्व का घोर कष्ट सहने के लिए भेज दे? अभी तक वह ख़ुद ही बच्चा होती है और उसे दूसरों से रक्षा और रखवाली कराने की आवश्यकता रहती है। जो भारतीय मनुष्य आध्यात्मिक भावनाओं से पूर्ण हैं उनको इस परिवर्तन के लिए पूर्ण उद्योग करना चाहिए, जिससे तुम्हारे पुत्र और पुत्रियों की पूर्ण उन्नति और वृद्धि हो सके और वे एक स्वराज्य तथा स्वतन्त्रता के योग्य देश के निवासी बन सकें। बाल-पति और बाल-पत्नियाँ ऐसे देश के लिए उपयुक्त निवासी नहीं हो सकते जहाँ कि स्वाधीनता का राज्य हो। वे ऐसे अकालपक्व बालक हैं जो अधिक भार पड़ने से कमज़ोर बन गए हैं और कभी उस दबाव से मुक्त नहीं हो सकते।"

पर्दे का प्रश्न और बाल-विवाह की बुराइयाँ—ये दो ऐसी मुख्य समस्याएँ हैं, जिनका हल करना स्त्रियों के

उद्धार के आन्दोलन का लक्ष्य है। पर अभी यह कार्य आरम्भिक दशा में ही है। जब स्त्रियाँ स्वतन्त्र और उचित रीति से शिक्षित हो जायँगी, जब लड़कियों का विवाह बचपन में न होगा और उनको छोटी अवस्था में माता बनने को लाचार न होना पड़ेगा, तो भारत के सभी मुख्य और महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न बहुत जल्दी हल हो जायँगे। मिसाल के लिए इस समय एक सब से अधिक महत्व का काम छोटे बच्चों की मृत्यु रोकने का है, जिसे अच्छी तरह से स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। सरकार भी अपने स्त्रियों के अस्पतालों और शिशु-गृहों में इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ काम कर रही है। पर उसके कार्य की सराहना करते हुए भी, जो लोग भारतवर्ष की सच्ची दशा को जानते हैं उनको पता है कि जङ्गलों और गाँवों में रहने वाली करोड़ों कष्ट-पीड़ित तथा मरती हुई माताओं और बच्चों को इनसे कितना कम फ़ायदा पहुँचता है? यह एक ऐसा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें शिक्षिता, सुधरी हुई स्त्रियाँ मनुष्य-जाति का बहुत-कुछ परोपकार कर सकती हैं।

शिक्षा! शिक्षा! शिक्षा! यही एक मधुर-तान है, जोकि स्त्रियों के उद्धार के लिए आवश्यक है। लड़कियों की शिक्षा में हमने जो घातक प्रमाद दिखलाया है, वह अपना बदला चुका रहा है। तर्क की भाषा में कहा जाय तो इस विषय में भारत 'एक दुष्ट वृत्त (घेरा) के भीतर बैठा हुआ है।' लड़कियों की शिक्षा की माँग बढ़ती जाती है, पर स्त्रियों में योग्य शिक्षिकाएँ न मिलने से वह पूरी नहीं हो सकती। तर्क-शास्त्र के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—"भारतीय कन्याओं को शिक्षा नहीं दी जाती; इसलिए भारतीय स्त्री-शिक्षिकाएँ नहीं मिलतीं; इसलिए भारतीय लड़कियों को शिक्षा नहीं दी जा सकती।" स्त्रियों की शिक्षा से इतने लाभ हो सकते हैं, जिनकी कल्पना भी भारत के वे अधीर देशभक्त नहीं कर सकते, जोकि स्वराज्य के लिए शोर मचा रहे हैं। इससे गन्दगी दूर होगी, स्वास्थ्य-सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार होगा, ग़रीब लोगों के गृह-जीवन में शिष्टता और नीतिमत्ता का प्रवेश होगा, साधारण जनता का उत्थान होगा, अच्छा भोजन, अच्छा मकान, और सबसे अधिक रसोई-घर का सुप्रबन्ध प्राप्त हो सकेगा। इन सब बातों से जनता की उन्नति होगी, छूत वाले रोग रुक जायँगे, लाखों प्राणियों की रक्षा हो सकेगी, भारतवर्ष की शक्ति का सञ्चय होगा (क्योंकि स्त्रियों की अज्ञानता और कुप्रथाओं के कारण भारतवर्ष की शक्ति धीरे-धीरे, पर निश्चयात्मक रूप से निकलती जाती है)—ये सब ऐसी शुभ बातें हैं जिनसे भारतीय स्त्रियों के स्वतन्त्र होने पर इस देश का बड़ा कल्याण हो सकेगा।

नारी-जीवन

[रचयिता—श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

पत्र-संख्या—५

[वृद्ध-पत्नी की ओर से बाल-विधवा को]

बहिन!

जान कर हाल तुम्हारा,
बढ़ता ही जाता है क्षोभ!
किन्तु साथ ही बढ़ता उसको,
अधिक जानने का भी लोभ।

बहुत न सोचो उन बातों को,
जो हैं तुम पर बीत चुकीं!
भूलो उन दुखकर रातों को,
जो हैं तुम पर बीत चुकीं!

दुख पा करके उसे भूलने—
में ही दुखिया को आनन्द!
सुख पा उसे स्मरण करने में,
ज्यों है सुखिया को आनन्द।

बहुत अधिक क्या समझाऊँ मैं,
स्वयं समझती होगी अब!
होंगी दुख को ही सुख कहती,
होकर नित-दुख-भोगी अब!

हाँ, मन अब भी जल जाता है,
करके उस सन्ध्या की याद!
जो आई थी लेकर मेरे—
लिए जगत् का सर्व विषाद!

बहिन, नहीं मेरा मुख खुलता,
है अतीव लज्जा की बात !
पर दे दिया वचन है मैंने,
कहने को मन के आघात !

मेरे मन में घोर निराशा—
की विभीषिका व्याप्त हुई !
चञ्चल मन की चञ्चलता में,
आकर कटुता प्राप्त हुई !

रह न गईं वे सुखद उमङ्गें,
जो युवती का मन सुकुमार,
भर देती हैं अनुपम सुख से,
लातीं उसमें चित्र विकार।

जिस प्रकार आती है बलि की,
मृत्यु-घड़ी जल्दी-जल्दी !
हा ! मेरी आई सुहाग की—
रात बड़ी जल्दी-जल्दी !

मेरे पति थे धनी, सजा था—
कक्ष और सुख का सामान !
बहुत अधिक था, किन्तु न मेरा,
जाता था उस पर कुछ ध्यान !

मख़मल मानों कण्टकमय था,
अन्धकार था स्निग्ध प्रकाश !
अशन-वस्तु विष-सम थी, सारी
और इन्द्रियाँ परम हताश !

बलि-वेदी पर मुझे चढ़ाने—
के पहले का आदर था !
मानों जकड़ा हुआ बेड़ियों—
से मेरा युग-पद-कर था ?

मन होता था, पर लग जावें,
उड़ जाऊँ अनन्त आकाश !
अपने शून्य भवन में मुझको,
दान करेगा निर्जन वास !

भगने की इच्छा होती थी,
किन्तु कहाँ जाती कैसे ?
परदे में रहती आती थी,
बाहर चल पाती कैसे ?

अबल विवश करने का करके,
पहले से ही सर्व विधान !
करते भारत के नर हमको,
निज लोलुपता पर बलिदान !

कहाँ यहाँ पत्नीत्व धरा है,
कहाँ युग्म जीवन का मेल !
यहाँ देख पड़ता है मुझको,
बस वीभत्स काम का खेल !

कितनी भी छोटी होवें हम,
कितने भी हों पुरुष बड़े !
हो जाता सम्बन्ध हाय है,
सभी देखते खड़े-खड़े !

चाहे बाला की इस विधि से,
मृत्यु क्यों न हो जाय कराल !
चिन्ता नहीं तनिक समाज को,
चलता है वह अपनी चाल !

इच्छा होती प्रबल यही थी,
पा जाऊँ मैं एक कटार !
उससे कर डालूँ बस अपने,
गर्हित जीवन का संहार ?

आए जब पतिदेव कक्ष में,
छिपकर देखा उनका वेश !
मुख पोपला और हिलता शिर,
रँगे हुए ख़िज़ाब से केश !

मुँह पर, हाथों पर झुर्री थीं,
दाँत नहीं थे उनके एक !
चलना भी दूभर उनको था,
मुख पर गर्हित भाव अनेक !

मैं संज्ञा-विहीन सी होकर—
रही बदन लज्जा से ढाँक !
करने लगे प्रेम प्रकटित वे,
कहने लगे असभ्य कुवाक !

* * *

पत्र-संख्या—६

[बाल-विधवा की ओर से वृद्ध-पत्नी को]

बहिन !

हृदय थर्रा जाता है,
जान तुम्हारे मन के भाव !
किस प्रकार मैं लिखूँ कि होता,
उनका मुझ पर कौन प्रभाव ?

सच है यह संसार कठिन है,
इसकी प्रगति परम दुर्वार !
हम तिनके हैं—उड़ते-बहते,
फिरते हैं इसमें दिन चार !

किसे पूछता कौन यहाँ है,
साध रहे हैं स्वार्थ सभी !
अबला, अबला हैं उनको क्यों,
सबला कोई करे कभी ?

सब होता है अपने बल से,
पर-बल पर आश्रित रहना—
बड़ा बुरा है, अर्थ उसी का,
है जीवन भर दुख सहना !

देखें कब होता है अपना,
इस अबलापन से उद्धार !
तुम्हें बताऊँगी अब अपने,
जीवन की बातें दो-चार !

थी मैं घर पर भार और फिर,
प्रत्युत्तर देती थी मैं !
मानों यों विपदा जगती की,
अपने शिर लेती थी मैं !

कहा बाप-माँ ने, भाई ने,
हमको इससे क्या सम्बन्ध !
इसके घर वाले ही इसके,
पोषण का अब करें प्रबन्ध !

कहला भेजा पति के घर में,
देवर आ ले गया मुझे !
मिला एक संसार वहाँ पर,
अब तो बिलकुल नया मुझे !

कहा सास ने, आई डायन,
जिसने खाया मेरा लाल !
सुन करके यह बात चुप रही,
किन्तु हो गया कुञ्चित भाल !

जिसका ब्याह नहीं करना था,
जो था रोगी और अशक्त !
उसको कर परिणीत, दिखाना,
अब अबला को लोचन रक्त ?

सह सकती थी नहीं बात मैं,
थी भीतर-भीतर जलती !
मुँह खुलता था नहीं, प्रथम था,
अवसर, थी मैं कर मलती !

दिया गया दूसरे दिवस से,
ही सब कार्य-भार मुझको !
पर इसका अभ्यास मुझे था,
होती न थी हार मुझको ?

कटु वचनों की किन्तु असह थी,
वह हर समय मार मुझको !
समझ न पड़ता था सब गुप-चुप,
सहने का सुसार मुझको !

सीमा होती है सहने की,
प्रति दिन अत्याचार महा !
मुझसे तो, प्रिय बहिन, किसी भी,
भाँति नहीं जा सका सहा !

इसका यह फल हुआ लगाने—
लगी दोष नित मुझ पर सास !
मुझ पर से वह लगी हटाने,
नित्य ससुर जी का विश्वास !

जला एक दिन दी रोटी फिर,
मुझको दोषी बतलाया !
मेरा हाथ जलाया, बिगड़ी,
मैं, क्या उसका कर पाया ?

कस कर लोहे की ज़ञ्जीरों,
से रखता है हमें समाज !
मुख खोलना हमारा तो है,
पाप, छोड़ देना है लाज !

काँटों पर हमको चलना है,
किन्तु मौन रहना सब काल !
बहिन लिखूँगी अन्य पत्र में,
मैं इसके आगे का हाल !

लालसा

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा कौशिक]

सूर्यास्त हो चुका है। ग्रीष्म ऋतु की सन्ध्याकालीन शीतल समीर मन्द-मन्द बह रही है। विक्टोरिया पार्क में घास के हरे लॉन पर पाँच व्यक्ति बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। एक व्यक्ति कह रहा है—कुछ भी हो, परन्तु एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना बुरा ही है।

एक दूसरा व्यक्ति बोला—परन्तु प्रत्येक दशा में बुरा नहीं हो सकता।

तीसरे व्यक्ति ने कहा—जो बात बुरी है वह प्रत्येक दशा में बुरी ही रहेगी—भली नहीं हो सकती।

चौथा बोला—अरे भाई, परिस्थिति सब कुछ करा लेती है। मनुष्य स्वयम् कुछ नहीं करता परिस्थिति जैसा चाहती है, वैसा नाच नचाती है।

पहला व्यक्ति बोला—परिस्थिति—वरस्थिति सब कहने-सुनने की बात है। मनुष्य में आत्मबल होना चाहिए, जिसमें आत्मबल होता है उसके सामने परिस्थिति की एक नहीं चलती।

पाँचवा व्यक्ति, जो अभी तक मौन बैठा था, बड़ी गम्भीरता से सिर हिलाकर बोला—आत्मबल होना कोई खेल नहीं है।

"यह कौन कहता है कि खेल है?"—पहले व्यक्ति ने किञ्चित मुस्करा कर कहा।

"यदि खेल हो तो सभी आत्मबली हो जायँ।"

"अच्छा सच बताओ, यदि तुम्हें दूसरा विवाह करना पड़े तो करो?" चौथे व्यक्ति ने पूछा।

"कौन, मैं? अजी राम का नाम लो। मैं और दूसरा विवाह करूँ। ईश्वर न करे यदि मेरी पत्नी का देहान्त हो जाय तब तो मैं कदाचित् कर भी लूँ। परन्तु पत्नी के रहते तो विवाह होना एक अनहोनी बात है।"

"तब तो तुम आत्मबली हो।"—तीसरे ने मुस्करा कर कहा।

"हाँ, इस सम्बन्ध में तो मुझे विश्वास है कि मैं यथेष्ट आत्मबल रखता हूँ।"

"भई शारदाचरण यह तो तुम गप हाँकते हो, मैं इसे नहीं मानता। यदि अभी कोई सुन्दरी युवती मिले तुम विवाह करने के लिए तुरन्त उद्यत हो जाओ।"

"प्रत्येक आदमी अपने हृदय से दूसरों की जाँच करता है। जैसे तुम हो वैसा संसार को समझते हो।"—शारदा चरण ने किञ्चित आवेश के साथ कहा।

"निस्सन्देह, मैं तो तुरन्त तैयार हो जाऊँ।"

"और अपनी पत्नी को क्या उत्तर दो?"

"अजी पत्नी के सामने उत्तरदाता आप जैसे पत्नी-दास हुआ करते हैं। हम लोग पत्नी को इतना सिर नहीं चढ़ाते कि वह हमारे मामले में कुछ हस्तक्षेप कर सके।"

"जब आप पत्नी की इतनी हैसियत समझते हैं तब यदि आप दूसरा विवाह करने को तैयार हो जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है।"

"अजी मैं क्या, बड़-बड़े तैयार हो जाते हैं। देखिए रघुवीरप्रसाद ही, जो विवाह करने गए हैं—क्या उनके पत्नी नहीं है?"

"तो कौन बड़ा उत्तम कार्य करने गए हैं?"

"उनके लिए तो उत्तम ही है।"

"ज़रा उनकी वर्तमान पत्नी के हृदय से पूछिए।"

"यह सब भावुकता है।"

"जी हाँ, यह भावुकता होगई। यदि यह भावुकता है तो संसार में जितनी अच्छी बातें हैं सब भावुकता हैं। ग़रीबों और दुखियों पर दया करना भी भावुकता है, चोरी न करना भी भावुकता सत्य बोलना भी भावुकता है।"

"बके जाओ।"—तीसरे व्यक्ति ने शरारत के साथ मुस्करा कर कहा।

इस पर शारदाचरण के अतिरिक्त और सब हँस पड़े।

शारदाचरण उसी प्रकार गम्भीर भाव से कहते

गए—आपको मालूम है कि ईसाइयों में एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करना जुर्म समझा जाता है।

"तो यार मालूम होता है तुम पूर्व जन्म के ईसाई हो।"—दूसरा व्यक्ति हँसता हुआ बोला।

"तो क्या हर्ज है, ईसाई होना कुछ पाप नहीं है। बहुत सी बातों में ईसाई हमारी आपकी अपेक्षा कहीं अच्छे हैं।"

"विवाह के सम्बन्ध में तो मैं मुसलमानों का मत सर्वोत्तम समझता हूँ।" तीसरा व्यक्ति गम्भीर होकर बोला—"मुसलमानों में एक पुरुष को चार विवाह तक करने की खुली आज्ञा है। ऐसा क्यों है जानते हो, पुरुष जितने अधिक विवाह करेगा उतने ही अधिक बाल-बच्चे होंगे और जितने अधिक बाल-बच्चे होंगे, उतनी ही सृष्टि में वृद्धि होगी।"

"क्या दलील पेश की है—वाह भई वाह!"

"आप इसका खण्डन कीजिए। एक पत्नी से एक वर्ष में एक ही सन्तान हो सकती है, परन्तु चार पत्नियों से चार सन्तानें हो सकती हैं।"

"और इस प्रकार दस-पन्द्रह वर्षों में एक फ़ौज तैयार हो सकती है, क्यों न?"

"मुहम्मद साहब बुद्धिमान् आदमी थे। उन्होंने जब देखा कि इसलाम धर्म के अनुयायी बहुत कम हैं तो चार विवाह की आज्ञा दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में मुसलमानों की संख्या में यथेष्ट वृद्धि होगई।"

"बात तो पते की है।"—चौथे व्यक्ति ने सिर हिलाते हुए कहा।

इसी समय एक अन्य सज्जन आगए। उन्हें देखते ही सब चिल्ला उठे—आइए-आइए आप इस समय ख़ूब आए।

वह महाशय बैठते हुए बोले—क्या बातचीत हो रही है?

शारदाचरण बोले—भई राधाकान्त, यहाँ एक बहस छिड़ी हुई है।

"कैसी बहस?"—राधाकान्त ने पूछा।

"बहस यह है कि एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करना उचित है या अनुचित?"

राधाकान्त कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना तो अनुचित ही है।

शारदाचरण का मुख खिल उठा। उन्होंने अन्य मित्रों की ओर देख कर कहा—"अब कहिए?"

"यह भी आपके भाई-बन्धु हैं, इनकी गवाही मान्य नहीं हो सकती।"—तीसरा व्यक्ति बोला।

राधाकान्त ने कहा—"परन्तु साथ ही यह बात भी है कि कभी-कभी दूसरा विवाह करना उचित भी होता है। जैसी परिस्थिति हो उसके अनुसार होता है।

चौथा व्यक्ति बोला—देखा, वही बात आई न। मैं पहले ही कह चुका कि परिस्थिति सब कुछ करा लेती है।

शारदाचरण ने कहा—अच्छा भई, आप जीते मैं हारा बस—अब कुछ और बातचीत करो।

२

बाबू शारदाचरण जाति के कायस्थ हैं। आप यथेष्ट धनवान् हैं। आपके परिवार में केवल तीन प्राणी हैं—एक तो स्वयम्, दूसरी पत्नी तथा तीसरी माता। शारदाचरण निस्सन्तान हैं। यद्यपि उनका विवाह हुए दस वर्ष के लगभग हो गए, पर अभी तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई। इसका कारण यह है कि शारदाचरण की पत्नी वन्ध्या है। शारदाचरण ने स्वयम् पत्नी की डॉक्टरी परीक्षा कराई थी और डॉक्टरों ने उसे वन्ध्या घोषित किया था। जिस दिन से शारदाचरण की माता को पुत्र-वधू के वन्ध्या होने की बात मालूम हुई उसी दिन से उन्होंने पुत्र को दूसरा विवाह करने के लिए प्रेरित करना आरम्भ किया; परन्तु शारदाचरण सदैव इन्कार करते रहे।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् एक दिन शारदाचरण की माता ने अपनी पुत्र-वधू से कहा—बेटी, तेरे तो कोई सन्तान होगी नहीं। अभी तक मैं यह सोच कर सबर किए बैठी रही कि डॉक्टर लोग कुछ ईश्वर तो हैं नहीं, ईश्वर की लीला ईश्वर को छोड़ कर और कोई नहीं जानता। यह हो सकता है कि उन्होंने भूल की हो; परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया कि उन्होंने भूल नहीं की। इस कारण अब मेरा खाया-पिया नहीं पचता। तू जानती है कि सन्तान ही बुढ़ापे का सहारा होती है। जो सन्तान न हुई तो कुछ नहीं। हमारे पास भगवान् के दिए चार पैसे हैं जो सन्तान न हुई तो वे किस काम आवेंगे।

पुत्र-वधू ने उत्तर दिया—तो मैं क्या करूँ माता जी, यह मेरे बस की बात तो है नहीं।

"यह मैं जानती हूँ बेटी। मेरा मतलब यह है कि जो तू चाहे तो शारदा दूसरा विवाह करने को राज़ी हो जावे।"

"तो मैंने उन्हें मना कब किया?"

"तू ने मना न किया होगा; पर इतने ही से काम न चलेगा। जब तक तू भी शारदा के पीछे न पड़ेगी तब तक वह विवाह न करेगा।"

"मैं पीछे पड़ूँ!" पुत्र-वधू ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, तू पीछे पड़, तू उन्हें विवाह करने पर राज़ी कर। मेरा तो कहना वह सुनता नहीं, सायत तेरा ही कहना मान ले।"

"जब तुम्हारा ही कहना नहीं मानते तो मेरा कहना भला क्यों मानने लगे।"

"नहीं बेटी, मेरा कहना चाहे न माने पर तेरा कहना ज़रूर मानेगा। तेरे ही कारण तो वह राज़ी नहीं होता। वह सोचता है कि दूसरा विवाह करने से तुझे दुख होगा, इससे वह राज़ी नहीं होता। परन्तु जब तू कहेगी तो वह तेरी बात सुनेगा।"

"मुझे तो आशा नहीं है माता जी।"

"एक बेर कह कर तो देख।"

"अच्छी बात है, तुम कहती हो तो मैं उनसे कहूँगी।"

अपने वचन के अनुसार शारदाचरण की पत्नी ने रात में एकान्त होने पर पति से कहा—आज मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ।

शारदाचरण ने कहा—कहो।

"मानोगे?"

"मानने योग्य होगी तो अवश्य मानूँगा।"

"मानने योग्य है।"

"तो मान लूँगा।"

"वचन दो।"

"पहले बात तो बताओ।"

"पहले वचन दे दो।"

"जब कह दिया कि मानने योग्य होगी तो मान लूँगा—फिर रह क्या गया।"

"तुम अपना दूसरा विवाह कर लो।"

शारदाचरण पर वज्रपात-सा हुआ। वह कुछ क्षणों तक हत-बुद्धि से बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—तुम ऐसा कहती हो।

"हाँ, मैं ऐसा कहती हूँ और ख़ुशी से कहती हूँ।"

"परन्तु मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं।"

"वचन दे चुके हो।"

"हाँ, वचन दे चुका हूँ, परन्तु साथ ही यह भी कहा है कि मानने योग्य होगी तो मानूँगा।"

"तो क्या यह बात मानने योग्य नहीं है?"

"कदापि नहीं। एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करूँ तो संसार मुझे क्या कहेगा।"

"परन्तु जब विवाह करने का कारण है तब संसार क्या कह सकता है। सन्तान के लिए मनुष्य सब कुछ करता है। तुम्हें भी सब उपाय करना चाहिए।"

"मुझे सन्तान नहीं चाहिए।"

"क्या हृदय से कहते हो?"

शारदाचरण का मुख मलिन हो गया। पत्नी ने कहा—चुप क्यों हो गए। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे मन में सन्तान की इच्छा है, परन्तु मेरे कारण तुम दूसरा विवाह नहीं करते। परन्तु मैं आज भगवान् को साक्षी करके कहती हूँ कि मुझे इससे ज़रा भी दुख न होगा।"

शारदाचरण विकल होकर बोले—तुम यह क्या कह रही हो—तुम्हारे होते हुए दूसरा विवाह करूँ, तुम्हारी छाती पर तुम्हारी सौत लाकर बिठाऊँ, यह मुझसे कभी न होगा। हाँ, कोई अन्य उपाय हो तो मैं करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

"परन्तु सौत का भय तो मुझे होना चाहिए। मुझे कोई भय नहीं तो तुम क्यों सौत की बात सोचते हो।"

"इसलिए कि मैं तुमसे हार्दिक स्नेह रखता हूँ।"

"तब तो मुझे और भी ख़ुशी है।"

"यह कैसे?"

"ऐसे कि जब तुम्हें मेरे साथ पूरा प्रेम है तो सौत के आने पर भी मेरी कोई हानि न होगी।"

"यह तुम्हारा भ्रम है।"

"भ्रम क्यों है? क्या तुम समझते हो कि सौत के आने से मेरी कोई न कोई हानि अवश्य होगी? यदि तुम यह सोचते हो तो यह मेरा भ्रम नहीं, तुम्हारा

भ्रम है। मेरी हानि केवल एक प्रकार से हो सकती है और वह इस तरह कि सौत के आने से मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम कम हो जाय। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब कि तुम्हारे हृदय में प्रेम की मात्रा उतनी हो जितनी कि तुम मुख से कहते हो।"

शारदाचरण पत्नी के इस तर्क के सामने निरुत्तर होकर बोले—यह सब ठीक है, परन्तु मैं विवाह तो कदापि न करूँगा।

"तो इसके अर्थ यह हैं कि तुम्हें अपने और अपने प्रेम पर विश्वास नहीं है।"

शारदाचरण विषादयुक्त मन्द मुस्कान के साथ बोले—यह तो मैं कभी नहीं मान सकता।

"यह नहीं मानते तो वह मानो, दो में से एक बात तो मानो।"

"मेरे लिए दोनों बातें निरर्थक हैं।"

"तो इसके अर्थ यह हुए कि उधर माता जी तो दुखी रहती हैं इधर इस प्रकार मुझे भी सुख न रहेगा।"

"क्यों?"

"जब माता जी दुखी रहेंगी, उधर घर में सन्तान का अभाव रहेगा और जब मुझे यह विश्वास है कि सन्तान न होने से तुम भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो तो ऐसी दशा में मैं अकेली सुखी कैसे रह सकती हूँ।"

"परन्तु मैं तो सन्तान के लिए दुखी नहीं हूँ।"

"यह बात नहीं है। तुम अपने दुख को मानते नहीं, उसे प्रकट नहीं करते, अन्यथा ऐसा कौन है जो सन्तान के लिए दुखी न हो।"

"यह सब ढकोसला है। परन्तु मुझे आश्चर्य है कि तुम मुझसे विवाह करने के लिए अनुरोध कर रही हो। स्त्रियाँ तो सौत का नाम तक नहीं सुनना चाहतीं—कहावत भी हैं कि 'सौत बुरी चून की'।

"यह ठीक है, पर जब घर में सुख-शान्ति नहीं है तब क्या किया जाय।"

"सुख-शान्ति क्यों नहीं है। सच पूछो तो आज कल सन्तान होने से दुख ही अधिक मिलता है।"

"यह बात मैं नहीं मानती।"

"मैं तो चारों ओर यही देख रहा हूँ। सन्तान वालों के पीछे एक न एक व्याधि लगी ही रहती है। आज किसी को बुख़ार है, कल किसी को खाँसी है—यही लगा रहता है।"

"जहाँ चार आदमी होते हैं वहीं यह लगा रहता है। जहाँ आदमी ही न होंगे वहाँ क्या होगा।"

"इसीलिए तो जितने कम आदमी हों उतना ही अच्छा है।"

"बिलकुल अकेला हो तो और भी अच्छा, क्यों न?"—पत्नी ने व्यङ्ग से मुस्करा कर कहा।

"नहीं अकेला होना भी ठीक नहीं—कभी बीमार-बीमार हो तो पानी कौन दे।"

"तो इसी कारण आदमी की आवश्यकता है और आदमी का इतना ही उपयोग है, अन्यथा अकेला रहे तो बड़ा अच्छा।"

"उँह! तुम तो न जाने कहाँ का झगड़ा ले बैठीं।"

"तो तुम विवाह नहीं करोगे?"

"हाँ, विचार तो ऐसा ही है।"

"परन्तु मैं आज कहती हूँ कि तुम्हें विवाह करना पड़ेगा।"

"कोई ज़बरदस्ती है।"

"हाँ, ज़बरदस्ती है।"

"अच्छी बात है—देखा जायगा।"

३

उपर्युक्त वार्तालाप के तीन मास पश्चात् शारदाचरण की पत्नी अपने मायके आई। मायके में उसके छोटे भाई का विवाह था, उसी में सम्मिलित होने के लिए वह आई थी।

विवाह में उसके चचा और उनके बाल-बच्चे भी आए हुए थे। उसके चाचा की एक षोड़शी कन्या थी। इस कन्या का अभी विवाह नहीं हुआ था। भाई के विवाह के पश्चात् एक दिन शारदाचरण की पत्नी ने अपने चाचा से पूछा—चाचा जी, राजरानी का विवाह अभी नहीं किया?

"अभी कहीं बातचीत ही नहीं लगी—लड़के की खोज कर रहा हूँ।"

"अभी तक कोई लड़का नहीं मिला?"

"नहीं, अभी तो कोई नहीं मिला।"

"तो चाचा जी, राजरानी मुझे दे दो।"

चाचा ने विस्मित होकर पूछा—तुझे दे दूँ, इसका क्या अर्थ ?"

"इसका यह अर्थ है कि मैं इसका विवाह अपनी इच्छानुसार जिससे चाहूँ उससे करूँ।"

"यह बात है।"

"हाँ, मेरी इतनी बात मानो। मैंने आपसे कभी कुछ नहीं माँगा। आज पहली बार राजरानी को आपसे माँगती हूँ।"

"दुर पगली—जब वह तेरी छोटी बहिन है तो तेरी तो हुई है। तू जिससे उचित समझ, विवाह कर दे। यह तो मेरे लिए अच्छा ही है—मैं लड़के की तलाश करने से बचा।"

"अच्छी बात है—तो अब कहीं इसके विवाह की बात तय न करना, यह मेरी हो चुकी।"

"हाँ तेरी हो चुकी। परन्तु बेटी, मुझे इसके विवाह की ज़रा जल्दी है; क्योंकि काफ़ी सयानी हो गई है।"

"यह मैं जानती हूँ। मैं इसका विवाह जल्दी ही करूँगी। भगवान् चाहे तो दो-तीन महीने के अन्दर विवाह हो जावेगा।"

"तो जान पड़ता है, कोई लड़का तेरी निगाह में है उसी के लिए तू यह सब कर रही है।"

"अब इससे आपको क्या मतलब।" शारदाचरण की पत्नी ने मुस्करा कर कहा।

"मतलब केवल इतना है कि अच्छे घर जाय, लड़का अच्छा हो—बस।"

"ऐसा ही होगा, आप निश्चिन्त रहिए।"

"यदि कोई लड़का तू ने निश्चित कर रक्खा है तो मुझे बता दे।"

"आपको चाची जी से सब मालूम हो जायगा, उन्हीं को सब बता दूँगी।"

"अच्छी बात है।"

रात में चाची ने शारदाचरण की पत्नी से पूछा—मैंने सुना है कि आज तू ने राजरानी को अपने चाचा से माँग लिया है।"

"हाँ, चाची माँग तो लिया है।"

"तो किस के लिए माँगा है?"

"सच बता दूँ।" शारदाचरण की पत्नी ने मुस्करा कर कहा।

"तो क्या इसमें भी कुछ झूठ बोलने की इच्छा है?"

"नहीं, झूठ बोल कर रहूँगी कहाँ। राजरानी को मैंने अपने लिए माँगा है।"

"अपने लिए? मैं तेरा मतलब नहीं समझी।"

"इसका मतलब यह है कि मैं राजरानी को अपनी सौत बनाऊँगी।"

यदि चाची पर काला सर्प गिरता तो कदाचित् वह इतना न चौंकतीं, जितना वह इस बात से चौंकीं। उन्होंने आँखें तथा मुख फाड़ कर कहा—ऐं क्या कहा, सौत बनायगी?

शारदाचरण की पत्नी ने शान्ति तथा गम्भीरता से उत्तर दिया—हाँ, सौत बनाऊँगी।

"तू बकती क्या है, मुझसे हँसी करती है, मैं तेरी बड़ी हूँ, मेरे साथ।"

चाची की बात काट कर शारदाचरण की पत्नी ने कहा—मैं हँसी नहीं करती चाची, सच्ची बात कहती हूँ।

इतना कह कर शारदाचरण की पत्नी ने सम्पूर्ण वृत्तान्त अपनी चाची को बताया और अन्त में नेत्रों में आँसू भर कर बोली—चाची, राजरानी मेरी छोटी बहिन है, इस कारण मेरी इसकी निभ जायगी। विवाह तो उनका दूसरा होगा ही। दूसरी कोई आवे तो न जाने कैसी आवे, मेरी उसकी पटे या न पटे। राजरानी की ओर से मैं निश्चित हूँ। मेरा उसका स्नेह है इस लिए हम दोनों की ख़ूब पटेगी—बस केवल इस कारण से मैंने चाचा जी से यह भिक्षा माँगी और चाची तुमसे भी माँगती हूँ। तुम दया कर दोगी तो मेरा बेड़ा पार लग जावेगा, अन्यथा जो भाग्य में बदा होगा वह होगा।

यह बात सुन कर चाची चिन्ता में पड़ गईं। चाची को मौन देख कर शारदाचरण की पत्नी पुनः बोली—यह समझ लो चाची कि राजरानी का विवाह करने के साथ ही साथ तुम मेरा भी उद्धार करोगी। तुम्हें एक साथ ही दो पुण्य प्राप्त होंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मैं राजरानी को अपनी आँखों की पुतली बना कर रक्खूँगी।

चाची ने कहा—यह तो सब ठीक है बेटी, पर क्या कहूँ बड़ी टेढ़ी बात है।

"तुम चाहोगी तो सीधी हो जायगी। इसमें कोई हानि तो है नहीं।"

"बेटी मुझे तो कोई इन्कार है नहीं। यदि राजरानी से तेरा कुछ भला होता हो तो तू ले जा। वह तेरी छोटी बहिन है, परन्तु तेरे चाचा इस बात पर राज़ी होंगे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती।"

"चाचा जी तो मुझे दे ही चुके।"

"पर उन्हें यह बात तो नहीं मालूम थी। जब यह बात मालूम होगी तब वह क्या करेंगे, यह मैं नहीं कह सकती।"

"तुम समझा दोगी तो वह मान लेंगे। चाची तुम स्त्री हो, स्त्री की बात समझ सकती हो। इसीलिए मैंने उनसे यह बात नहीं बताई। अब मैंने तुमसे सब कचा चिट्ठा बता दिया है, तुम उन्हें समझा देना, तुम्हारे समझाए से वह समझ जायँगे।"

"अच्छी बात है, जाती हूँ और अभी उनसे सब हाल कहती हूँ।"

इतना कह कर चाची अपने पति के पास पहुँची। पति ने उन्हें देखते ही पूछा—क्यों, कुछ मालूम हुआ—चन्दो से बातचीत हुई?

"हाँ, अभी उसी के पास से तो आ रही हूँ।"

"हाँ, उसने क्या बताया?"—पति ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

राजरानी की माता ने सब वृत्तान्त उनसे कह दिया। सब सुन कर राजरानी के पिता ने कहा—यह तो मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता।

"फिर बिना सोचे-समझे उसे वचन क्यों दे दिया?"

"तो मैं क्या जानता था वह ऐसी वाहियात बात कहेगी।"

"नहीं जानते थे तो अब जो कहा है उसे निभाओ।"

"ज़बरदस्ती निभाऊँ—यह अच्छी रही।"

"तो इसमें हर्ज क्या है। चन्दो भी अपनी बेटी ही है। उसका सङ्कट दूर करना ही चाहिए।"

"इस तरह?"

"हाँ, जब इसी तरह दूर हो सकता है तो इसी तरह दूर करना चाहिए।"

"मेरी समझ में यह बात नहीं आती।"

"मेरी समझ में तो आती है। तुम पुरुष हो, तुम इस बात की गहराई को नहीं समझ सकते—मैं समझती हूँ।"

"क्या समझती हो?"

"यही कि चन्दो का सङ्कट इसी तरह टल सकता है। राजरानी उसकी बहिन है—दोनों में स्नेह है। इस कारण दोनों, सौत होते हुए भी हिलमिल कर रहेंगी। यदि कोई दूसरी आई तो चन्दो की दुर्दशा हो जायगी।"

"परन्तु शारदाचरण की उम्र अधिक है।"

"कौन अधिक है, अभी छब्बीस-सत्ताइस बरस का तो हुई है।"

"नौ-दस बरस का अन्तर है!"

"कोई अधिक नहीं है। इतनी उमर में क्या किसी का विवाह नहीं होता।"

"होता क्यों नहीं। परन्तु × × ×"

"अब इस झञ्झट में न पड़ो—अब चन्दो के मन की होने दो। वह बेचारी कितनी दुखिया है। यदि हमारे इस कार्य से उसका दुख दूर हो जाय तो इससे अधिक हमारे लिए और कौन सी बात है। दूसरे तुम वचन भी दे चुके हो।"

"वह तो बिना समझे-बूझे दे दिया था।"

"चाहे जैसे दिया हो—वचन-वचन ही है, उसका पालन करना चाहिए।"

"तुम्हें स्वीकार है, पहले यह बताओ।"

"मुझे स्वीकार न होता तो मैं तुमसे इतना ज़ोर देकर कहती ही क्यों?"

"ऊँच-नीच सब सोच लिया है?"

"हाँ, सब सोच लिया है।"

"अच्छी बात है तो मुझे भी स्वीकार है।"

४

चन्दो अपनी ससुराल लौट आई। ससुराल आकर पहले उसने अपनी सास से सब वृत्तान्त कहा। सास ने उसके कार्य पर उसे साधुवाद देते हुए कहा—परन्तु बेटी, यह तो जो हुआ सब ठीक ही हुआ; पर शारदा विवाह करने पर राज़ी होगा?"

"उन्हें राज़ी तो करना ही पड़ेगा।"—चन्दो ने उत्तर दिया।

"कैसे?"

"जैसे बनेगा!"

"मेरी समझ में तो वह राज़ी न होगा।"

"उन्हें राज़ी होना पड़ेगा।"

"देखो, तेरे कहने से हो जाय तो हो जाय।"

"हो जायँगे—मुझे विश्वास है।"

"विश्वास है तो ठीक है।"

उसी दिन चन्दो ने शारदाचरण से कहा—मैंने तुम्हारे विवाह के लिए एक लड़की ठीक की है।

शारदाचरण ने भृकुटी चढ़ा कर पूछा—"कैसी लड़की!"

पति के मुख का भाव देखकर चन्दो का साहस छूटने लगा, परन्तु उसने सँभल कर कहा—विवाह के लिए!

शारदाचरण ने पत्नी को एक बेर सिर से पैर तक देखा, तत्पश्चात् कहा—मुझसे इस प्रकार की हँसी करना अच्छा नहीं—समझीं, मुझे ये बातें नापसन्द हैं।

चन्दो अप्रतिभ होकर चुप हो गई। उसने सोचा जिस समय प्रसन्नचित्त होंगे उस समय कहना ठीक होगा।

दो दिन पश्चात् चन्दो ने रात में पुनः वही चर्चा छेड़ी। उसने कहा—उस दिन मैंने तुमसे जो बात कही थी वह याद है?

"कौन सी बात?"

"कुछ कहा था—याद करो। तुम नाराज़ होने लगे तो मैं चुप हो गई।"

"न जाने क्या वाही तबाही बक रही थीं।"

"मैंने यही कहा था कि तुम्हारे लिए एक लड़की ढूँढ़ी है।"

"हाँ हाँ, कुछ ऐसी ही बात थी—तो फिर?"

"फिर क्या—लड़की ढूँढ़ी है।"

"बड़ी दया की।"—शारदाचरण ने व्यङ्गपूर्वक मुस्करा कर कहा।

चन्दो ने पति के व्यङ्ग को समझ कर कहा—मेरी यह दया अभी नहीं—आगे चल कर मालूम होगी।

"क्या बात है, तुम्हारी यह दया चिरस्मरणीय रहेगी।"—शारदाचरण ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा।

"हँसी नहीं, मैं सच कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे लिए अपने चाचा से अपनी चचेरी बहिन को माँग लिया है। बस, तुम्हारे स्वीकार करने भर की देर है।"

"ओफ़ ओह! तब तो बड़ा पुण्य कमाया।"

"मैं उनसे कह आई हूँ कि विवाह शीघ्र ही हो जायगा।"

"अच्छा, चट मेरी मँगनी और पट मेरा ब्याह!"

"बिलकुल ऐसी ही बात है। लड़की भी बड़ी सुन्दर है।"

"तुमसे अधिक?"

"मैं बेचारी काहे में हूँ, उसे देखोगे तो कहोगे कि हाँ कुछ है।"

"तुम्हारे सामने तो मुझे कोई जँचेगी नहीं।"

"वह तो ऐसी जँचेगी कि मुझे भी भूल जाओगे।"

"तब तो विवाह होना और भी कठिन है। मैं तुम्हें भूलना नहीं चाहता।"

"अच्छा, अब यह चुहल छोड़ दो—सच-सच बताओ कि विवाह करोगे?"

"कदापि नहीं।"

"तुम्हें करना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"मैं अपने चचा जी को वचन दे आई हूँ।"

"तुम्हारे वचन से मुझे क्या मतलब।"

"मेरे वचन की रक्षा न करोगे?"

"मैं ऐसे वचन का कोई मूल्य ही नहीं समझता।"

"यदि तुम्हें मुझसे सच्ची मुहब्बत है तो तुम्हें मेरे वचन की रक्षा करनी चाहिए। भगवान् भी अपने भक्तों की बात रखते हैं।"

"पर मैं भगवान् नहीं हूँ—एक साधारण मनुष्य हूँ।"

"प्रेम का सम्बन्ध तो सब के लिए एक सा है—चाहे भगवान् हो चाहे मनुष्य।"

"समरथ को नहिं दोष" भगवान् सर्व-शक्तिमान् हैं वह सब कुछ कर सकते हैं। मनुष्य उनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

"यह कोई ऐसी बात तो है नहीं जो तुम्हारी शक्ति के बाहर हो।"

"जो कार्य करने योग्य न हो वह शक्ति के बाहर ही समझा जाता है।"

"यह तुम्हारी बहानेबाज़ी है।"

"अच्छा बहानेबाज़ी ही सही।"

"तो तुम विवाह नहीं करोगे?"

"हाँ, अभी तो ऐसी ही इच्छा है—आगे भगवान् जाने।"

"अच्छी बात है जैसी तुम्हारी इच्छा।" इतना कह कर चन्दो उदास हो गई।

दूसरे दिन जब शारदाचरण की माता ने चन्दो से यह सुना कि शारदाचरण ने साफ़ जवाब दे दिया तो वह बहुत दुखी हुईं। उन्होंने पुत्र को बहुत समझाया, उसके सामने बहुत रोई-पीटीं; पर शारदाचरण टस से मस न हुए। अन्त में वह भी हार मान कर चुप हो रहीं। परन्तु उसी दिन से शारदाचरण का घर श्मशान तुल्य हो गया। माता भी उदास रहने लगी और पत्नी भी। आवश्यक बातों के अतिरिक्त उनसे कोई अधिक वार्त्तालाप नहीं करती थीं। कुछ दिन तो इस प्रकार व्यतीत हुए अन्त में शारदाचरण को यह असह्य हो उठा। उन्होंने एक दिन क्रोध में भर कर कहा—तुम लोग यह क्या रोनी सूरत बनाए रहती हो।

माता ने कहा—क्या करें, जब मन ही प्रसन्न नहीं तो हँसती सूरत कैसे रह सकती है।

"तो तुम लोग चाहती हो कि मैं विवाह करके दुनिया में अपनी हँसी कराऊँ, ज़लील बनूँ।"

"न बेटा, हँसी मत कराओ, तुम अपना मुँह उजला, रक्खो, हमारे ऊपर जो दुख है वह हम झेल लेंगी।"

"तुम पर ऐसा कौन दुख का पहाड़ फट पड़ा है।"

"इसे तुम क्या जानोगे—जिस पर पड़ती है वही जान सकता है।"

"तो इस प्रकार तो मैं नहीं रह सकता। जब देखो तब मुँह लटका हुआ है।"

"यह अपने बस की बात नहीं है।"

शारदाचरण कुछ क्षणों तक विचार करके कुण्ठित स्वर में बोले—"अच्छी बात है—यदि तुमको मुझे ज़लील करने से ही सन्तोष होगा तो जो तुम्हारी इच्छा हो, करो।"

"हमारी इच्छा जब तुम्हारे मारे पूरी होने पावे।"

"कह तो रहा हूँ कि जो इच्छा हो करो, मैं तुम्हारी बात मानने के लिए तैयार हूँ।"

* * *

शारदाचरण का विवाह ठीक हो गया और विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। विवाह होने के दो मास पूर्व अकस्मात् शारदाचरण की पत्नी को हैज़ा हो गया। शारदाचरण ने बहुत दौड़-धूप की, परन्तु कोई फल न हुआ—चन्दो का अन्त समय आ पहुँचा। मृत्यु के आध घण्टा पूर्व चन्दो ने पति से कहा—तुम एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करना अपने लिए अपमानजनक समझते थे सो भगवान् ने मुझे अपने पास बुला कर तुम्हारा मान रख लिया और मैंने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विवाह अवश्य करूँगी सो भगवान् ने मेरी बात भी रख ली—ईश्वर बड़ा दयालु है—सबका मान रखता है।

शारदाचरण व्याकुल होकर बोले—ईश्वर तुम्हें चङ्गा कर दे—मैं तुम्हारे कहने से एक क्या, दस विवाह करने को तैयार हूँ।

चन्दो क्षीण मुस्कान के साथ बोली—दस विवाह की आवश्यकता नहीं इसलिए मैं चङ्गी नहीं हो सकती।

शारदाचरण पत्नी के वक्षस्थल पर अपना सिर रख कर सिसकियाँ लेते हुए बोले—ऐसा न कहो, मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

चन्दो ने पति के सिर पर हाथ रख कर कहा—इस प्रकार मरने में कितना सुख है, कितना आनन्द है। मेरा मनोरथ पूरा हो गया—मेरा काम समाप्त हो चुका। अब जी कर करना ही क्या है। भगवान् तुम्हें और मेरी प्यारी बहिन राजरानी को चिरञ्जीव रक्खे—तुम दोनों फूलो-फलो। सन्तान का सुख देखो—इससे अधिक और मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे इस बात का बड़ा सन्तोष है कि मैंने अपनी प्यारी बहिन तुम्हें समर्पित की और अपनी बहिन को अपना प्यारा समर्पित किया—आह! भगवान् ने मरते समय मुझसे कितना अच्छा कार्य कराया परन्तु—परन्तु एक लालसा हृदय में रह गई!

शारदाचरण ने सिर उठाकर अश्रुप्लावित नेत्रों से पत्नी की ओर देख कर कहा—वह क्या? बताओ, शीघ्र बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा। मैं नहीं चाहता कि तुम कोई लालसा लेकर इस संसार से जाओ।

"वह—लालसा—अब इस जीवन में—पूरी नहीं हो सकती। वह लालसा तुम्हारी सन्तान खिलाने की थी—चाहे उसका जन्म मुझसे होता या मेरी सौत से। मैं केवल तुम्हारे बालक का—मुख चूमना—चाहती थी...! चन्दो इससे आगे कुछ न कह सकी!

शारदाचरण 'हाय राम' कह कर भूमि पर लोटने लगे।

'चाँद'-परिवार की सुपरिचिता श्रीमती महादेवी जी वर्मा, बी० ए०

[इस साल आपने स्थानीय क्रॉस्थवेट कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा पास की है ! आपकी मधुर कविताओं का संग्रह हमारे यहाँ से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है]

हमारी वैवाहिक ख़राबियाँ

[ले० श्री० पं० जनार्दन भट्ट जी, एम० ए०]

विवाह इस दुनिया की चीज़ है, दूसरी दुनिया या परलोक की नहीं। इसका सीधा सम्बन्ध इस लोक से है, परलोक, परमात्मा, धर्म या मज़हब से नहीं। इसका ख़ास मक़सद या उद्देश्य समाज की भलाई के ख़्याल से और उसकी हस्ती क़ायम रखने की ग़रज़ से ऐसी सन्तान पैदा करना है, जो हर बात में तेज़ हो, तन्दुरुस्त हो, शरीर से हृष्ट-पुष्ट हो, बुद्धि की तीव्र हो, और हृदय की बलवान् और निर्भय हो, और जो समाज तथा देश के ऊपर भार न होकर, स्वयं उसे आगे बढ़ाने वाली हो। इसके साथ ही विवाह का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की मदद से संसार के सब ज़रूरी सुखों को भोगते हुए आराम के साथ अपनी ज़िन्दगी बसर करें। मतलब यह कि विवाह अच्छी सन्तान पैदा करने और संसार के यथोचित सुखों को भोगने के लिए किया जाता है। अगर विवाह से यह उद्देश्य सफल न हुआ तो वह विवाह निस्सार और निष्फल है। दुनिया में जितनी जीती-जागती, तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ौमें हैं, सबों में विवाह का उद्देश्य यही माना जाता है। उन सबों में स्त्री और पुरुष विवाह उत्तम सन्तान पैदा करने और ज़िन्दगी को आराम के साथ काटने के लिए करते हैं। पर हिन्दुस्तानी क़ौम सबों से निराली क़ौम है। इसकी सभी बातें निराली हैं। पर सब से निराली ख़ासियत इसकी धर्म की ग़ुलामी है। धर्म की ग़ुलामी में पड़े हुए इसे सदियाँ गुज़र गईं, पर यह ज्यों की त्यों उसी तरह ग़ुलामी की ज़ञ्जीर में जकड़ी हुई है। इसकी कोई ऐसी बात नहीं जो धर्म के ढकोसलों से ख़ाली हो। इसके जीवन का हर एक विभाग, इसकी ज़िन्दगी का हर एक पहलू मज़हब के रङ्ग में रँगा हुआ है। पग-पग पर धार्मिक रीति-रिवाज इसके रास्ते में चट्टान की तरह खड़े हैं, जिनका पार करना अगर नामुमकिन नहीं, तो दुश्वार ज़रूर है।

हमारी ज़िन्दगी के जितने काम हैं, सब धर्मशास्त्र के नियमों से जकड़े हुए हैं। हम किसी बात में भी इस धर्म की बेड़ी से आज़ाद नहीं हैं। हम धर्म के डर से आज़ादी के साथ खा नहीं सकते, पी नहीं सकते, आज़ादी के साथ जहाँ चाहें जा नहीं सकते, आज़ादी के साथ जैसा चाहें वैसा पेशा अख़्तियार नहीं कर सकते। सब में धर्म के जाने या धर्मशास्त्र के नियमों के टूटने का डर मौत के समान हमारे सर पर सवार रहता है। इसी नियम के अनुसार हमारे विवाह की रस्म भी धार्मिक बन्धनों से आज़ाद नहीं है। हमारे यहाँ विवाह का उद्देश्य अच्छी सन्तान पैदा कर, उसके द्वारा समाज की भलाई करना और पति-पत्नी के जीवन को विवाह के द्वारा सुखी बनाना नहीं है, बल्कि विवाह का उद्देश्य प्रचलित धर्म या रीति-रिवाज के अनुसार लड़कों और लड़कियों का सिर्फ़ गठजोड़ा करा देना है। जो क़ौमें तरक़्क़ी की दौड़ में आगे बढ़ी हुई हैं, वहाँ नौजवान औरत और मर्द तभी विवाह के बन्धन में पड़ते हैं, जब दोनों यह देख लेते हैं कि विवाह के उद्देश्य को अच्छी तरह से पूरा करने के लायक़ वे हैं या नहीं। वे ख़ुद एक दूसरे को चुनते हैं और एक दूसरे के साथ जिस तरह से चाहें, विवाह कर सकते हैं। गिर्जाघर में जाना या पादरी साहब से विवाह की रस्म अदा कराना भी उनके लिए ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ एक बात ज़रूरी है, और वह यह कि विवाह के ज़रिये जो ज़िम्मेदारी उनके सिर पर पड़ने वाली है, उसको वह पूरा कर सकते हैं या नहीं, अर्थात् भविष्य में जो सन्तान उनके पैदा होने वाली है उसके भरण-पोषण के योग्य वे हैं या नहीं! बस, इसके अलावा कोई धार्मिक बन्धन, कोई धर्मशास्त्र की रुकावट, कोई रिवाज की चलन उनके रास्ते में रोड़े नहीं अटका सकती—उनकी आज़ादी में ख़लल नहीं डाल सकती। वे जब चाहें शादी कर सकते हैं कोई रुकावट नहीं, जैसे चाहें शादी कर सकते हैं कोई मनाही नहीं, जिसके साथ चाहें शादी कर

सकते हैं कोई बन्धन नहीं; सिर्फ़ शर्त एक है कि विवाह की ज़िम्मेदारियों को वे अच्छी तरह पूरी कर सकें। लेकिन हमारे यहाँ एक ख़ास उम्र के पहले शादी हो जानी चाहिए, नहीं तो धर्म हमेशा के लिए हिन्दुस्तान से कूच कर देगा; एक ख़ास मुहूर्त पर शादी होनी चाहिए, नहीं तो ग्रह और नक्षत्र-देवता रूठ कर मालूम नहीं क्या उत्पात मचा देंगे; एक ख़ास हालत के पहले शादी हो जानी चाहिए, नहीं तो पुरखे हमेशा के लिए नरक में गिर कर अपनी सन्तान को कोसते रहेंगे; एक ख़ास ज़ात-बिरादरी या ख़ान्दान में शादी होनी चाहिए, नहीं तो धर्म रसातल को चला जायगा ! कहाँ तक कहें, इन धार्मिक बन्धनों और धर्मशास्त्र के ढकोसलों के कारण हमारे यहाँ से विवाह का उद्देश्य उसी तरह से ग़ायब हो गया, जिस तरह अङ्गरेज़ी राज्य में हिन्दुस्तान से ख़ुशहाली या जिस तरह अत्याचारी के हृदय से न्याय, क़साइयों के हृदय से दया और कमीनों के हृदय से हया ग़ायब हो जाती है। अस्तु, इस लेख में सिर्फ़ उन वैवाहिक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया जायगा, जो धर्म के आधार पर हमारी वैवाहिक प्रथा को सारहीन बना कर देश तथा समाज को पतन के गहरे गड्ढे में गिरा रही हैं। साथ ही इस लेख के अन्त में यह भी बताया जायगा कि किन-किन परिवर्तनों के द्वारा हम अपनी इन वैवाहिक ख़राबियों को दूर कर दुनिया की बढ़ी-चढ़ी क़ौमों के बीच बैठने के लायक़ बन सकते हैं।

बाल-विवाह

आइए, सबसे पहले बाल-विवाह को ही लीजिए, जो हमारे समाज के शरीर में राज-रोग के समान लगा हुआ उसे दिन पर दिन क्षीण और मौत की ओर ले जा रहा है। कोई ऐसी कुरीति या रोग नहीं, जो समाज को जर्जरित कर देने में ऐसा कारगर हो, जैसा कि यह है। इस भयङ्कर कुरीति ने इस देश में ऐसी मज़बूती के साथ जड़ जमा ली है कि पचास वर्ष से स्वामी दयानन्द, राममोहन राय से लेकर आज तक के बड़े-बड़े सुधारक गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते रह गए, पर कोई बड़ा सुधार इस बात में नहीं हुआ। इस बाल-विवाह की बदौलत हमारी जाति का जैसा ह्रास और पतन हुआ है, उसे साक्षात् व्यास, वाल्मीकि और कालिदास जैसे कवियों की ज़ोरदार लेखनी भी वर्णन करना चाहे तो नहीं कर सकती। जब तक यह बाल-विवाह मौजूद है, तब तक इस बात की आशा करना कि हम साहसी, बली, तेजस्वी, वीर्य के पुष्ट, स्वावलम्बी तथा मर्दानगी और हिम्मत का काम करने वाले बन जायँगे, सिर्फ़ सपना देखना है। अगर किसी जाति को आप बर्बाद कर देना चाहते हों, अगर आप चाहते हों कि उसकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक तमाम शक्तियाँ नष्ट हो जायँ तो आप उस जाति के अन्दर इस बाल-विवाह की प्रथा का बीज बो दीजिए, तब देखिए कि वह जाति किस तरह दिन पर दिन अधःपतन की ओर जाती हुई दुनिया के पर्दे से एकदम ग़ायब हो जायगी। फिर हिन्दू-जाति तो सौ दो सौ वर्षों से नहीं, हज़ारों वर्षों से इस ख़राबी की शिकार हो रही है। इस प्रथा के रहते हुए कोई अगर सुधार की आशा रखता है तो वह असम्भव को सम्भव बनाना चाहता है। हम आज़ादी हासिल करना चाहते हैं, हम अपने देश में स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं, लेकिन स्वराज्य के लिए लड़ने वालों की भुजा में बल चाहिए, हृदय में साहस चाहिए, आत्मा में शक्ति चाहिए। बाल-विवाह से पैदा होने वाली कायर और निर्बल सन्तान आज़ादी हासिल नहीं कर सकती और न स्वराज्य के लिए तकलीफ़ उठा सकती है। "वह तिफ़्ल क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले" इसी बात को नज़र के सामने रखते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार टालबॉयस व्हीलर (Talbois Wheeler) ने बहुत ठीक कहा है :—

"So long as the people of India continue to marry small boys with even smaller girls, imprisioned within the four walls of the house, their progeny will never be better than pigmies. They will rather grow weaker under the stress of the toils involved in the political struggle. No kind of education will befit them to enjoy any political right. With the help of education they may prate like grown-up people, but their thoughts and deeds will always be childish."

अर्थात्—"जब तक हिन्दुस्तानी लोग गुड़िया और गुड्डों के समान छोटे-छोटे लड़कों और लड़कियों की शादी करते रहेंगे और अपनी लड़कियों तथा स्त्रियों को घर की चहारदीवारी के अन्दर क़ैद किए रहेंगे, तब तक उनकी सन्तान कायर, डरपोक, पस्त-हिम्मत, परावलम्बी, परा-

धीन के सिवा और कुछ न होगी। वे राजनीतिक आन्दोलन में अपनी कितनी ही शक्ति क्यों न लगा दें, पर जब तक बाल-विवाह उनमें प्रचलित है, तब तक उनका उद्योग सफल नहीं हो सकता। उलटा राजनीतिक आन्दोलन में पड़ने से जो परिश्रम उन पर पड़ेगा उससे वे दिन पर दिन और भी निर्बल और क्षीण होते जायँगे। उन्हें किसी प्रकार की भी शिक्षा क्यों न दी जाय, पर उससे वे राजनीतिक अधिकारों के भोगने के योग्य कदापि नहीं बन सकते। शिक्षा पाकर वे लम्बी-चौड़ी बातें भले ही हाँक लें, पर विचारों और कार्यों में वे सदा कायर ही बने रहेंगे।"

बाल-विवाह से होने वाले तमाम नुक़सानों का ज़िक्र इस छोटे से लेख में करना नामुमकिन है, तब भी कुछ ख़ास-ख़ास नुक़सान, जो इससे होते हैं, उनका परिचय यहाँ पर कराया जायगा। अस्तु—

सब से बड़ी हानि इससे यह हो रही है कि इसकी बदौलत हमारी जाति की शारीरिक शक्ति दिन पर दिन क्षीण होती जा रही है। इससे, न सिर्फ़ हमारी शारीरिक क्षीणता ही बढ़ रही है, बल्कि हमारी हिम्मत, वीरता, मर्दानगी, पौरुष और अध्यवसाय भी ग़ायब हो रहा है। बहुत से लोग पूछते हैं, हिन्दुस्तानी इतनी जल्दी क्यों मर जाते हैं? क्या कारण है कि जब इङ्गलैण्ड वालों की औसत उम्र ५२ साल, अमेरिका वालों की ५५ साल, फ़्रान्स वालों की ४८ साल, जर्मनी वालों की ४७ साल, और जापान वालों की ४४ साल है, उस समय यहाँ के लोगों की औसत उम्र केवल २४ साल ही क्यों है? क्या कारण है कि यहाँ के लोग औसत के हिसाब से २४ साल की उम्र में ही दुनिया से कूच कर देते हैं? एक कारण भयङ्कर दरिद्रता भी है, पर ख़ाली दरिद्रता ही इसका कारण नहीं है, बहुत बड़ा कारण इसका बाल-विवाह भी है! जिस समय आठ-आठ, दश-दश वर्ष के कच्चे-बच्चे विवाह की बेड़ी में जकड़े जायँ और उनसे औलाद पैदा हो; जब वे अपनी शक्ति और वीर्य बिना रोक-थाम के कच्ची उम्र में ही बहाना शुरू कर दें, उस समय क्या इस बात की खोज करने की ज़रूरत है कि यहाँ के लोग जल्दी क्यों मरते हैं, और उनके शरीर इतने निस्तेज, निर्बल और जर्जरित क्यों रहते हैं?

बाल-विवाह की बदौलत एक तो स्वयं उनका शरीर क्षीण हो जाता है और दूसरे जल्द ही उनके बाल-बच्चे पैदा हो जाते हैं, जिससे उनके पालन-पोषण की चिन्ता उनकी रही-सही शक्तियों को और भी कुचल डालती है। जिसे नई उम्र में ही नोन-तेल-लकड़ी की फ़िक्र हो गई हो, जो १८-२० साल के अन्दर ही दो-एक बच्चों का बाप बन बैठा हो, वह आगे चल कर साहस और मर्दानगी का क्या काम कर सकता है और स्वराज्य की लड़ाई में क्या भाग ले सकता है? उसके सामने आज़ादी की बात करना, स्वाधीनता की चर्चा चलाना, आज़ादी का भी मख़ौल उड़ाना है। ऐसे लोगों की क़ौम दुनिया में कोई बड़ा काम नहीं कर सकती। उसके सामने तो सिर्फ़ एक ही ध्येय है कि वह दिन पर दिन क्षीण होती हुई अन्त में मौत के कराल गाल में समा जाय!

कम उम्र में ही गृहस्थी की चिन्ता सिर पर पड़ जाने से इस देश के लोगों का स्वास्थ्य जल्द ख़राब हो जाता है। इसीलिए जितनी अधिक संख्या में लोग यहाँ मरते हैं उतने और देशों में नहीं मरते। साथ ही यहाँ के लोग पैदा भी और देश वालों की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में होते हैं। इङ्गलैण्ड में अगर एक हज़ार की आबादी में २७ आदमी पैदा होते हैं तो १५ मरते हैं; जर्मनी में ३८ आदमी पैदा होते हैं तो १८ मरते हैं, इटली में ३२ पैदा होते हैं तो २१ मरते हैं; जापान में ३८ पैदा होते हैं तो २० मरते हैं। पर हिन्दुस्तान में ३८ पैदा होते हैं और ३३ मर जाते हैं! बाल-विवाह की बदौलत यहाँ सब से ज़्यादा आदमी पैदा होते हैं और सबसे ज़्यादा मरते भी हैं! जिस तरह कीड़े-मकोड़ों के समान यहाँ लोग पैदा होते हैं, उसी तरह कीड़े-मकोड़ों के समान ही मर भी जाते हैं!

एक दूसरी हानि, जो इस बाल-विवाह से हो रही है, वह यह है कि इसकी बदौलत छोटी-छोटी लड़कियाँ समय से पहले ही माताएँ बन बैठती हैं। जिस उम्र में और देशों की लड़कियाँ स्कूलों में जाती हैं, खेलती हैं, कूदती हैं, उस उम्र में यहाँ की लड़कियाँ एक-दो बच्चों की माताएँ बन जाती हैं। और तुर्रा यह कि अगर विवाह के एक-दो साल बाद या १४-१५ साल की उम्र होते ही अगर उस विवाहिता लड़की के सन्तान पैदा न हो गई, तो वह बाँझ और अभागिनी समझी जाने लगता है। ऐसी हालत में हर एक पत्नी की, चाहे वह कितनी

ही छोटी क्यों न हो, यही ख़्वाहिश और फ़िक्र रहती है कि वह जहाँ तक हो सके, जल्दी एक बच्चे की माँ हो जाय। छोटी उम्र का गर्भ माता और सन्तान दोनों के लिए हानिकर होता है। छोटी उम्र की गर्भवती स्त्रियों को बच्चा जनने के समय भयानक कष्ट होता है और अक्सर वे मौत का शिकार हो जाती हैं; और अगर वे किसी कारण से उस कष्ट को सह कर भी ज़िन्दा बच रहती हैं तो जीवन-पर्यन्त प्रसूत या क्षय रोग का शिकार बन बैठती हैं। ऐसी हालत में कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतवर्ष में हर तीस वर्ष के अन्दर लगभग ३२ लाख माताएँ बच्चा पैदा होने की पीड़ा से मर जाती हैं! पिछले महायुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य, फ़्रान्स, बेल्जियम, इटली और अमेरिका के मिल कर भी इतने आदमी नहीं मरे थे!!

बाल-विवाह का एक दूसरा भयङ्कर परिणाम बच्चों की बेहद मौत है। छोटी उम्र का गर्भ अक्सर गिर जाता है या ठहरता भी है तो बच्चा मरा पैदा होता है या पैदा होने के बाद मर जाता है। इतने पर भी अगर कोई बेहया जीने वाला बच्चा ज़िन्दा रहता है तो मरण-पर्यन्त रोगों का शिकार बना रहता है। प्रतिवर्ष जितने बच्चे इस देश में पैदा होते हैं, उनमें से लगभग बीस लाख बच्चे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं! सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट जिल्द १, भाग १, पृष्ठ १३२ पर लिखा है कि जितने बच्चे प्रतिवर्ष मरते हैं, उनमें से ४० फ़ी सदी के लगभग जन्म के पहले सप्ताह के अन्दर ही मर जाते हैं और ६० फ़ी सदी पहले मास के अन्दर! और देशों के मुक़ाबले में यहाँ बच्चों की मौत कितनी अधिक होती है, इसका ब्योरा पढ़ कर शरीर के रोंगटे खड़े होते हैं। मानों यहाँ के बच्चे मरने ही के लिए पैदा होते हैं। अब ज़रा दूसरे देशों में बच्चों की मौत का औसत देखिए और उससे अपने देश की औसत का मुक़ाबला करिए। इङ्गलैण्ड में हर साल जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें ७ फ़ी सदी मर जाते हैं। फ़्रान्स में ८ फ़ी सदी बच्चे मौत के शिकार होते हैं। जर्मनी में १० फ़ी सदी, इटली में १६ फ़ी सदी तथा जापान में १६ फ़ी सदी बच्चे जन्म लेने के बाद मर जाते हैं। पर हिन्दुस्तान में २० फ़ी सदी बच्चे पैदा होने के बाद मौत के मुख में चले जाते हैं। इनमें उन बच्चों का शुमार नहीं है, जो गर्भ से ही मरे पैदा होते हैं!!

बाल-विवाह का एक और दिल दहलाने वाला परिणाम हमारे देश की बाल-विधवाएँ हैं। आज इस अभागे देश में छोटी उम्र की शादी की बदौलत एक करोड़ बाल-पत्नियाँ मौजूद हैं और बाल-विधवाओं की संख्या आधे करोड़ के लगभग पहुँचती है। परन्तु कुल विधवाओं की संख्या तो २,६८,३४,८३८ तक कूँती जाती है, अर्थात् हर ६ स्त्री पीछे एक स्त्री विधवा है! २,१८,४६३ बाल-पत्नियाँ और १५,१३७ बाल-विधवाएँ तो ५ वर्ष के नीचे की हैं। अकेली ५९७ विधवाएँ १ वर्ष की उम्र की हैं!! सिवा हिन्दुस्तान ऐसे अजायबघर के, दुनिया के किसी कोने में भी १ वर्ष की विधवाएँ स्वप्न में भी देखने को न मिलेंगी। हिन्दुस्तान विचित्रताओं का घर है। उनमें से एक विचित्रता यह भी है। बाल-पत्नियों और बाल-विधवाओं का आँकड़ा नीचे दिया जाता है। उससे पाठक बाल-विवाह की वीभत्सता का अनुमान स्वयं कर सकते हैं :—

	बाल-पत्नियाँ		बाल-विधवाएँ
१५ वर्ष के नीचे की	६३,३०,२०७	...	२,७९,१२४
१० वर्ष के नीचे की	२०,१६,६८७	...	१,०२,२९३
५ वर्ष के नीचे की	२,१८,४६३	...	१५,१३९

बाल-विवाह का एक और घातक परिणाम यह है कि बाल-विवाह के द्वारा एक डोरी में ज़बरदस्ती बाँधा गया पति-पत्नी का जोड़ा उस सुख और सन्तोष को अनुभव नहीं करता, जो पति-पत्नी को मिलना चाहिए! हमारे देश में पति-पत्नी एक दूसरे को नहीं चुनते और न उनसे इस सम्बन्ध में कोई राय ली जाती है। उनके चुनने वाले उनके माता-पिता या दूसरे रिश्तेदार होते हैं। कभी-कभी तो उन्हें यह भी पता नहीं रहता कि विवाह क्या चीज़ है और यह तमाशा क्यों किया जाता है। इसीलिए जब वे बड़े होते हैं और उन्हें अनुभव होने लगता है, तब उन्हें होश होता है कि वे किस ख़न्दक़ में डाल दिए गए हैं। ऐसी हालत में अक्सर देखा जाता है कि पति-पत्नी एक दूसरे से असन्तुष्ट रहते हैं। अगर आप ख़ूब जाँच करके देखें तो आपको बहुत थोड़े पति-पत्नी ऐसे मिलेंगे, जो एक दूसरे से सन्तुष्ट हों। कहीं एक दूसरे का स्वभाव नहीं मिलता और हमेशा झगड़ा होता रहता है; कहीं पति रोगी है तो पत्नी तन्दुरुस्त, कहीं पुरुष कामदेव के समान सुन्दर है तो स्त्री कुरूपता का घर, कहीं

पतिदेव सुशीलता, नम्रता और शिष्टता के निधान हैं तो पत्नी-देवी कर्कशाओं और फूहड़ों की सरदार! ऐसी हालत में पति-पत्नी का जोड़ा एक दूसरे से सुखी और सन्तुष्ट कैसे रह सकता है? अगर रहता है तो सिर्फ़ इसलिए कि "गले पड़े बजाए सिद्ध।"

ऊपर बाल-विवाह के जिन भयङ्कर परिणामों का ज़िक्र किया गया है वे इतने भयङ्कर हैं कि बाल-विवाह की प्रथा एक मिनट के लिए भी भारत में न रहनी चाहिए, पर क्या कारण है कि सुधारकों के इतना गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने पर भी अब तक यह प्रथा ज़ोरों के साथ क़ायम है? क्या कारण है कि देश-काल को पूरी तरह समझने वाले, हिन्दू-सङ्गठन के जन्मदाता, पण्डित मदनमोहन मालवीय जी महाराज की भी हिम्मत नहीं पड़ी कि शारदा जी के बाल-विवाह-बिल का समर्थन एसेम्बली में करते? कारण और कुछ नहीं, सिर्फ़ इसलिए कि बाल-विवाह की बुनियाद धर्मशास्त्र पर क़ायम है; इसलिए कि धर्मशास्त्र में यह लिखा है कि हर एक लड़की की शादी रजस्वला होने के पहले हो जानी चाहिए; इसलिए कि धर्मशास्त्र यह कहते हैं कि अगर बारह वर्ष की कुमारी कन्या घर में बैठी रहेगी तो उसका पिता उस रजस्वला कन्या का रज हर महीने पीता रहेगा; * इसलिए कि धर्मशास्त्र के अनुसार उस मनुष्य के पुरखे सीधे नरक में गिर पड़ेंगे जिस मनुष्य की कन्या विवाह के पहले रजस्वला हो जायगी; इसलिए कि पिता-माता और ज्येष्ठ भ्राता ये तीनों नरक में जायँगे अगर वे कन्या को विवाह के पहले रजस्वला होते हुए देख लेंगे;† इसलिए कि धर्मशास्त्रों में आठ वर्ष की कन्या का विवाह सब से उत्तम कहा गया है—उद्वहेदष्टवर्षामेवं धर्मो न हीयते (दक्षस्मृति); इसलिए कि "निर्णयसिन्धु" में कन्या के विवाह की सबसे उत्तम उम्र सात वर्ष की लिखी गई है—"विवाह प्रशस्तकालमाह ससेति।" अतएव बाल-विवाह की प्रथा तब तक नहीं मिट सकती, जब तक कि विवाह में धर्मशास्त्रों का दख़ल है, और जब तक विवाह की रस्म को हम सदा के लिए धर्मशास्त्र की बेड़ी से आज़ाद न कर देंगे। ख़ाली लड़कों की उम्र बढ़ा देने से काम न चलेगा, जब तक यह नियम न तोड़ दिया जाय कि लड़की का विवाह रजस्वला होने के पहले ज़रूर हो जाना चाहिए। बहुत सी बिरादरियों और संस्थाओं ने लड़कों की शादी की उम्र बढ़ाकर १६ या १८ या २० कर देने का प्रस्ताव अपनी-अपनी सभाओं में पास कर दिया है, पर उनकी हिम्मत इस प्रस्ताव के पास करने की नहीं पड़ती कि लड़की का विवाह रजस्वला हो जाने के बाद किया जाय। मसलन मारवाड़ी-अग्रवाल महासभा को ही लीजिए। उसने बड़ी हिम्मत के साथ यह प्रस्ताव पास किया है कि लड़कों की शादी १६ वर्ष के पहले हरगिज़ न की जाय। पर लड़कियों की शादी की उम्र वही बाबा-आदम के ज़माने से, ८ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक की, जो चली आ रही है वही अब भी बनी हुई है; उसमें ज़रा भी फेरफार नहीं हुआ। रजस्वला होने के पहले जो गुड़िया की शादी होती थी, वही अब भी होती है। इसलिए कि किसकी हिम्मत है कि धर्मशास्त्र के ख़िलाफ़ जाय। चूँकि लड़कों की शादी की उम्र १६ वर्ष कर दी गई और लड़कियों की शादी की उम्र वही बनी हुई है, इसलिए लड़कों की शादी यद्यपि १६ वर्ष में ही होती है, मगर उनकी सगाई तभी कर दी जाती है जब वे ११ या १२ के होते हैं और इसी हिसाब से लड़कियों की सगाई जब वे ७ या ८ वर्ष की होती हैं तभी कर दी जाती है। इसलिए जब लड़के १६ वर्ष के होते हैं तब लड़कियाँ १० या ११ या ज़्यादा से ज़्यादा १२ वर्ष की हो जाती हैं और तभी उनकी शादी हो जाती है, जिसमें कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे, महासभा के प्रस्ताव की भी रक्षा हो और धर्मशास्त्र की आज्ञा का भी उल्लङ्घन न हो, सुधारक भी कहलाएँ और साथ ही धर्मिष्ठ भी बने रहें, कुफ़्र भी रहे और काबा भी रहे, दीन भी हो और दुनिया भी हो, शैतान भी ख़ुश रहे और ख़ुदा भी! इसलिए बाल-विवाह की प्रथा हिन्दुस्तान से तब तक नेस्तनाबूद नहीं हो सकती, जब तक धर्म का दख़ल विवाह के मामले में बना हुआ है और जब तक धार्मिक ढकोसलों का क़िला स्वतन्त्र विचार और विवेक-बुद्धि के गोलों से उसी तरह न ढहा दिया जायगा, जिस तरह कि लीज का क़िला जर्मन के गोलों से ढहा दिया गया था।

---

* प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्या न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिवति शोणितम्॥

† माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

विवाह और ज्योतिष

जिस समय धर्मशास्त्र और मज़हबी ढकोसलों ने विवाह की प्रथा को अपनी बेड़ी में जकड़ा, उस समय उसके साथ ही साथ और न जाने कितनी ख़ुराफ़ात बातें और रस्में इस प्रथा के अन्दर घुस आईं। उनमें एक निहायत ही ख़ुराफ़ात और मुज़िर बात ज्योतिष और जन्म-कुण्डली पर ज़ोर देना है। यही नहीं, विवाह के मामले में ज्योतिषी के पत्रे और वर-कन्या की जन्म-कुण्डली पर इतना ज़्यादा ज़ोर दिया जाने लगा कि विवाह का असली उद्देश्य ही ग़ायब हो गया। यहाँ तक कि कोई विवाह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि वर और कन्या की जन्मकुण्डली एक दूसरे के साथ मिल न जाय। कुण्डली मिल जाने पर भी ज्योतिष का प्रभाव ख़तम नहीं हो जाता। कुण्डली मिल जाने पर भी विवाह तभी होता है जब ज्योतिषी जी महाराज पत्रे से विचार कर अपना फ़तवा दे दें कि हाँ फलाँ घड़ी पर, अमुक मुहूर्त पर, शादी हो सकती है। हमारे यहाँ वर और कन्या का गठजोड़ा कराने के लिए यह देखना ज़रूरी नहीं है कि दोनों के गुण, स्वभाव, शील, और योग्यता एक दूसरे से मिलते हैं या नहीं, बल्कि यह ज़रूरी है कि दोनों की जन्म-कुण्डलियाँ मिलती है या नहीं! अगर दोनों की जन्म-कुण्डली एक दूसरे से जोड़ खा गई तो फिर वर और कन्या में और किसी बात की दरकार नहीं। यह ज़रूरी नहीं कि वे पढ़े-लिखे हों, सुन्दर और सुशील हों, तन्दुरुस्त और हृष्ट-पुष्ट हों! सिर्फ़ एक बात ज़रूरी है कि दोनों की कुण्डली समान हो। यही नहीं, अगर किसी लड़की की कुण्डली ऐसी बेढब हुई कि उसका जोड़ खाना मुश्किल हो गया तो फिर उसका विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी कुण्डली किसी से मिले तब तो विवाह हो। या उसका पिता इतना धनी हो कि किसी लड़के के बाप को घूस देकर मिला ले, तब विवाह हो सकता है! ज़रा ख़्याल करिए, क्या हालत उस बाप की होगी जिसकी लड़की की कुण्डली में सास-ससुर को खा जाने वाले ग्रह बैठे हों। ब्रह्मा भी उतर आवें तो उसकी शादी अच्छी जगह नहीं हो सकती। अगर कहीं उसकी कुण्डली मङ्गली हुई अर्थात मङ्गल ख़राब स्थान पर बैठे तो फिर उसकी शादी हर्गिज़ हो ही नहीं सकती। हाँ, ऐसा कोई वर मिल जाय तो दूसरी बात है जिसकी कुण्डली में भी बराबर के मङ्गल बैठे हों। नतीजा यह होता है कि बेजोड़ वर और कन्या ज़बरदस्ती विवाह की रस्सी से जकड़ दिए जाते हैं। कभी-कभी वे एक दूसरे से वैसे ही भिन्न होते हैं जैसे कि उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुव से! अगर एक पूरब जाता है तो दूसरा पश्चिम, एक मलार अलापता है तो दूसरा होली, एक बाँसुरी बजाता है तो दूसरा भोंपू। यह मत समझिए कि इस तरह की शादी एक्का-दुक्का होती हैं। नहीं, ज्योतिष के प्रभाव से कम से कम ६० फ़ी सदी शादियाँ इसी ढङ्ग की बेजोड़ और अनमेल होती हैं। जिस वर से कुण्डली मिल जायगी, कन्या को उसी के यहाँ जाना होगा—वह चाहे लूला हो, लँगड़ा हो या अपाहिज हो। ऐसे अनमेल और बेजोड़ विवाह की सन्तान कैसी सर्वगुण-सम्पन्न हो सकती है, यह आप ख़ुद सोच सकते हैं। और मज़ा यह कि ऐसी ही सन्तान के बूते स्वराज्य की लड़ाई लड़ने का दावा किया जाता है। ऐसे लोगों का ख़ुदा ही हाफ़िज़ है!

दहेज की प्रथा

एक दूसरी ख़राबी जो ज्योतिष की तरह विवाह की प्रथा में घुस गई है वह दहेज की प्रथा है। इस प्रथा ने भी विवाह के असली उद्देश्य की जड़ पर उसी तरह कुल्हाड़ा चलाया है, जिस तरह ज्योतिष ने! इस प्रथा की बदौलत लड़का उस लड़की से नहीं ब्याहा जाता जो गुण में, रूप में, तन्दुरुस्ती में और उम्र में उसके सर्वथा योग्य हो, बल्कि उस लड़की से ब्याहा जाता है जिसका पिता अधिक से अधिक दहेज दे सकता हो। जिस तरह घुड़दौड़ की लॉटरी छोड़ी जाती है या नीलाम में बोली बोली जाती है उसी तरह से लड़का उस लड़की के गले में बाँध दिया जाता है; जिसका पिता सबसे ज़्यादा दहेज देने में समर्थ होता है। इस कुप्रथा से क़रीब-क़रीब कोई भी हिन्दू-जाति की बिरादरी या समाज ख़ाली नहीं है। अमीर, ग़रीब और मध्यम दर्जे के लोग सभी इस कुप्रथा के शिकार हैं! हर एक आदमी की यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि वह अपनी प्यारी लड़की को ऐसे घर में दे, ऐसे वर के हवाले करे, जो उसकी लड़की को आराम दे सके। पर जब वह अपनी लड़की के लिए किसी वर के पिता के पास जाता है तो उससे इतना दहेज माँगा जाता है कि वह अपना-सा मुँह लेकर लौट आता है। नतीजा यह होता है कि वह लड़की एक

अयोग्य वर के गले मढ़ दी जाती है। किसी लड़की का पिता जब किसी वर के पिता के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए पहुँचता है तो पहला सवाल यही होता है कि कितना दहेज दोगे? दहेज जुटाने की चिन्ता उसको चिता की तरह भस्म कर डालती है। हर एक हिन्दू-गृहस्थ के लड़की पैदा होने के साथ ही दहेज की चिन्ता भी पैदा हो जाती है। तब से वह पेट काट-काट कर रुपया जमा करता है और अन्त में वर के पिता के चरणों में चढ़ा देता है। यह प्रथा कैसी निर्दयता-पूर्ण है कि अगर जिस किसी आदमी के चार-पाँच कन्याएँ हुईं तो वह तबाह हो गया और फिर उसका उभड़ना मुश्किल है। मैं एक मध्यम दर्जे के सज्जन को जानता हूँ, जिनकी ज़िन्दगी ही दहेज जुटाने में बीत गई। ज्योंही वे एक लड़की के लिए दहेज जुटा कर निश्चिन्त होते थे कि त्योंही वे दूसरी लड़की के लिए दहेज जुटाने में लग जाते थे। इस तरह ज़िन्दगी भर दहेज जुटाने की फ़िक्र से उनका पिण्ड कभी न छूटा और अन्त में वे इसी चिन्ता के बलिदान भी हो गए!! न जाने कितने घर इसकी बदौलत तबाह हो गए! न जाने कितनी बीभत्स घटनाएँ और आत्म-हत्याएँ इस दहेज की प्रथा की बदौलत हुआ करती हैं। बङ्गाल की स्नेहलता का बलिदान अभी बहुत पुराना नहीं हुआ। परन्तु एक नहीं, अनेक स्नेहलताएँ बङ्गाल और अन्य प्रान्तों में प्रति दिन इस प्रथा की बलि-वेदी पर हलाल की जा रही हैं, पर समाज के सिर पर जूँ तक नहीं रेंगती। यही नहीं, बड़े-बड़े पढ़े-लिखे बी० ए०, एम० ए० अपने बी० ए०, एम० ए० पास पुत्र के विवाह में बड़े अभिमान के साथ दहेज ग्रहण करते हैं और ज़रा भी सङ्कोच नहीं करते! नतीजा यह होता है कि योग्य कन्या योग्य वर के साथ बहुत कम ब्याही जाती है और हम लोगों की सन्तति दिन पर दिन अयोग्य, असमर्थ और अपाहिज होती जा रही है। अभी भी कोई लक्षण ऐसे नहीं हैं जिनसे यह प्रगट हो कि यह प्रथा जल्दी लोप हो जायगी। लेकिन यह भी याद रहे कि हम "कम्प्लीट इण्डिपेन्डेन्स" से हब्बा भर भी कम लेने के लिए तैयार नहीं हैं। "डोमिनियन सेल्फ़ गवर्नमेण्ट" को लेने वाले पर लानत! अरे मियाँ! ज़रा होश सँभालो! ज़रा सी दहेज वाली ख़राबी को तो आप समाज से हटा नहीं सकते, लेकिन दावा यह है कि हम दुनिया की सबसे बड़ी सरकार को यहाँ से हटा देंगे! अगर ख़ाली चाहने से घोड़े मिल जाते तो सभी सवारी कस लेते। अच्छा! मालूम हुआ जब आपको स्वराज्य मिल जायगा तब आप दहेज जैसी सारी कुरीतियों को हिन्दुस्तान से जलावतन कर देंगे। ख़ैर, तब तक के लिए दहेज की कुप्रथा का हटना मुल्तवी रहे!

'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'

हिन्दू-धर्म के अनुसार उस आदमी का नरक से उद्धार नहीं हो सकता जिसके पुत्र न हो। 'पुत्र' शब्द का अर्थ ही यह है कि वह "पुंनाम नरकात् त्रायते" पिता को 'पुं' नामक नरक में गिरने से बचाता है। परन्तु पुत्र बिना विवाह के प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए हर एक हिन्दू का यह धार्मिक फ़र्ज़ हो गया है कि वह विवाह करे। जब विवाह करने से इस लोक में पत्नी के साथ विषय-भोग और परलोक में पुत्र-जन्म से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो तो फिर बतलाइए कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विवाह करने से चूके और धड़ाधड़ सन्तान न पैदा करे? यही नहीं, किसी भी धर्म-ग्रन्थ को उठाइए, रामायण को लीजिए, महाभारत को लीजिए,

पुराणों को देखिए, सब जगह पुत्रोत्पत्ति की महिमा गाई गई है। प्राचीन काल से हमारे हृदयों में यह विश्वास बद्धमूल चला आ रहा है कि जिस माता-पिता के मरने के बाद उसका पुत्र श्राद्ध न करे, पिण्ड-दान न दे, तर्पण न करे तो फिर उस माता-पिता का नरक से उद्धार नहीं हो सकता। इस अन्ध-विश्वास का यह फल हुआ कि हर एक हिन्दू यही चाहता है कि हमारा विवाह हो और हमारे पुत्र हो, चाहे वह पुत्र रोगी हो, अपाहिज हो, लूला हो, लँगड़ा हो, गूँगा हो, बहिरा हो, दुर्बल हो या निर्वीर्य हो। सिर्फ़ सन्तान होनी चाहिए, चाहे जैसी हो। इसीलिए हिन्दू-समाज में बहुत कम ऐसे मिलेंगे जो शादी-शुदा न हों। इस धार्मिक अन्ध-विश्वास के कारण हिन्दू-समाज में विवाह की ऐसी भरमार है कि चाहे जो हो, लूला हो, लँगड़ा हो, अपाहिज हो, बूढ़ा हो, कोढ़ी हो, नपुंसक हो, विवाह अवश्य करेगा। इसी धार्मिक अन्ध-विश्वास की बदौलत वृद्ध-विवाह के नमूने हज़ारों की तादाद में भारतवर्ष में दिखाई पड़ते हैं। लोग वृद्ध-विवाह को मिटाना चाहते हैं, पर जो अन्ध-विश्वास इस वृद्ध-विवाह की जड़ है और जो हमें यह शिक्षा देता है कि बिना पुत्रोत्पत्ति के नरक से उद्धार न होगा, उसे कोई भी मिटाने की कोशिश नहीं करता। इसी धार्मिक अन्ध-विश्वास की बदौलत हर एक पिता अपना यह फ़र्ज़ समझता है कि वह अपने हर एक लड़के का विवाह करदे चाहे उसके आमदनी हो या न हो, चाहे उसके परिवार वाले भूखों मरते हों या ख़ुशहाल! हम लोगों में यह विश्वास जड़ जमाए हुए है कि हर एक व्यक्ति अपना भाग्य अपने साथ लेकर आता है अर्थात् जिसने मुँह चीरा है वह खाने को भी देगा। इसीलिए देखा जाता है कि चाहे खाने को न जुटे, पर लड़के का विवाह ज़रूर कर दिया जाता है। अगर आप पूछें कि भाई, समाई नहीं थी तो कुटुम्ब में एक और खाने वाले को क्यों बढ़ा लिया तो जवाब मिलता है कि सब अपने भाग्य से खाते हैं, नई बहू भी अपने भाग्य से खा लेगी। इसका नतीजा यह होता है कि जहाँ चार भूखों मर रहे थे वहाँ पाँच भूखों मरने लगते हैं! इस धार्मिक अन्ध-विश्वास की बदौलत कि विवाह करना हर एक हिन्दू का फ़र्ज़ है, इस देश में ऐसे लोग भी विवाह करने से नहीं रुकते जो क्षय रोग से पीड़ित हैं, जिन्हें मिरगी का रोग है और जो गर्मी या सूज़ाक के शिकार भी रह चुके हैं। इस देश में इक्का-दुक्का भी ऐसा आदमी न मिलेगा जिसने इन रोगों के कारण विवाह न किया हो। इन रोगियों की कौन कहे, यहाँ तो कोढ़ी तक का भी विवाह हो जाता है। विवाह की योग्यता के लिए यह भी ज़रूरी नहीं है कि उसे गिन्ती गिनना आता है या नहीं। क्योंकि मेरे एक नज़दीकी रिश्तेदार हैं जो निहायत ही कुलीन हैं, किसी ऐरे-ग़ैरे गोत्र के भी नहीं हैं, ख़ास विद्या और बुद्धि के निधान वृहस्पति महाराज के वंश के हैं, नक़ली ब्राह्मण भी नहीं, शुद्ध रक्त-वीर्य के असली कुलीन मालवीय ब्राह्मण हैं। पर आप यक़ीन रक्खें, मैं ज़रा भी मुबालग़ा नहीं करता, उक्त मालवीय जी दस तक गिनती भी नहीं गिन सकते। यही नहीं, अगर आप उनसे पूछें कि एक पैसे में कितने रुपए होते हैं, तो वह बहुत सोच कर आपको उत्तर देंगे कि "दस रुपए"। पर इससे यह मत समझिए कि उनका विवाह नहीं हुआ। अगर आप ऐसा समझते हैं तो उनकी बेइज़्ज़ती करते हैं, उनके ख़ानदान पर धब्बा लगाते हैं। अजी साहब! उनका विवाह हुए दस वर्ष हो गए और अब वे शायद दो-तीन लड़के-लड़कियों के बाप भी हैं! मैं आपसे पूछता हूँ कि हिन्दुस्तान को छोड़ कर कौन सा ऐसा मुल्क है जहाँ इस तरह के लोग भी विवाह करके सन्तान पैदा कर सकते हों? मैं आपसे पूछता हूँ कि हिन्दुस्तान में विवाह की यह हालत क्यों है? इसका सिर्फ़ एक जवाब है और वह यह कि हमारा धर्म हमें इस स्थिति में रहने के लिए मजबूर करता है और जब तक हम धर्म के ग़ुलाम हैं और विवाह में धर्मशास्त्र की राय को प्रधान मानते रहेंगे तब तक यह हालत कभी भी नहीं सुधर सकती।

विवाह और जात-पाँत का भेद

एक और बात जो विवाह के उद्देश्य को तहस-नहस कर हमारी जाति को रसातल की ओर ले जा रही है वह हमारा जात-पाँत का भेद है। इस जात-पाँत के भेद की बदौलत हमारे यहाँ शादी सिर्फ़ एक ख़ास दायरे या बिरादरी में ही होनी चाहिए, चाहे वह बिरादरी कितनी ही छोटी क्यों न हो। कोई-कोई बिरादरी या जाति—जैसे मालवीय ब्राह्मणों की बिरादरी—ऐसी छोटी है कि इसमें दो या तीन सौ से ज़्यादा घर न होंगे। इन्हीं दो-तीन सौ घरों के अन्दर आपस में शादी-ब्याह होते हैं, जिससे कभी-

कभी रिश्ते के भाई-बहिनों में भी शादियाँ हो जाती हैं! ख़्याल करिए, दो-तीन सौ घरों के अन्दर विवाह-शादी होने से वर के लिए योग्य कन्या और कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ने में कितनी कठिनाई होती होगी। ख़ैर, इन छोटी-छोटी बिरादरियों में सब एक हों, सो भी नहीं। इनमें भी आपस में ऊँच और नीच का भेद है; जैसे "ऊँच मालवीय" और "नीच मालवीय", मसलन हिन्दू-सङ्गठन के जन्मदाता मालवीय जी महाराज नीच मालवीय के यहाँ भोजन भी न करेंगे, ब्याह-शादी करना तो दरकिनार;* इसलिए नतीजा यह होता है कि छोटी सी बिरादरी के अन्दर भी ऊँच प्रायः ऊँच में और नीच प्रायः नीच में ही शादी का सम्बन्ध करते हैं। इस जात-पाँत के भेद की कृपा से पहले से ही सङ्कुचित छोटा दायरा और भी तङ्ग और छोटा बन जाता है!

हर एक आदमी इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि कुलीन से कुलीन हिन्दू को भी अपनी बिरादरी के अन्दर योग्य वर तथा योग्य कन्या ढूँढ़ने में कितनी दिक़्क़तें उठानी पड़ती हैं। इसलिए एक बहुत ही सङ्कीर्ण तथा छोटे से दायरे वाली बिरादरी में सीमाबद्ध रहने के कारण योग्य से योग्य तथा सुशील से सुशील कन्याएँ "कौए के गले में मलाई की पूड़ी" के समान मूर्ख, लम्पट, व्यभिचारी, बदमाश, रोगी अथवा अपाहिज़ के गले बाँध दी जाती हैं। इसके एक नहीं, अनेकों उदाहरण प्रतिदिन देखने में आते हैं। इसी तरह छोटी-छोटी बिरादरियों में महदूद रहने के सबब से प्रायः देखा जाता है कि योग्य, शिक्षित, सुशील और हृष्ट-पुष्ट वर का गठ-जोड़ा महामूर्ख, कर्कशा अथवा रोगी कन्या के साथ कर दिया जाता है। इस बुराई की तह में भी धर्म ही मौजूद है, क्योंकि वर्णाश्रम और जात-पाँत का भेद प्रचलित हिन्दू-धर्म का प्रधान अङ्ग है। इसलिए जब तक प्रचलित हिन्दू-धर्म और उसके साथ ही जात-पाँत का भेद सदा के लिए हिन्दुस्तान से न उठा दिया जाय तब तक विवाह की बहुत सी ख़राबियाँ दूर नहीं हो सकतीं।

सुधार का मार्ग

हमारा वैवाहिक जीवन कैसा बीभत्स है, उसमें कैसी भयङ्कर ख़राबियाँ पैदा हो गई हैं, इसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। वह इतनी ज़्यादा बिगड़ी हुई है कि अगर आप उसको थोड़े-बहुत परिवर्त्तन के द्वारा सुधारना चाहें तो नहीं सुधार सकते। यह हालत तो तभी सुधर सकती है और हमारी वैवाहिक प्रथा अपने असली उद्देश्य पर तभी आ सकती है, जब उसमें जड़ से परिवर्तन किया जाय और विवाह का प्रचलित सिद्धान्त ही तर्क कर दिया जाय। ज़रा सा परिवर्तन यहाँ और ज़रा सा परिवर्तन वहाँ कर देने से काम न चलेगा। अगर हम चाहते हैं कि हमारा वैवाहिक जीवन सुखी हो, अगर हम चाहते हैं कि हमारी औलाद ऐसी हो जो दुनिया में अपाहिज़ों और ग़ुलामों की ज़िन्दगी न बसर करे, अगर हम दूसरी क़ौमों के बीच बराबरी के साथ बैठना चाहते हैं, तो हमें अपनी वैवाहिक प्रथा में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा और उन सिद्धान्तों को ही बदल देना होगा, जिन पर हमारी यह प्रथा क़ायम है।

सब से पहली बात यह कि विवाह का धर्म से कोई ताल्लुक़ न होना चाहिए, अर्थात् वैवाहिक संस्कार को धार्मिक संस्कार न समझना चाहिए। धर्म मनुष्य की बुद्धि को अन्ध-विश्वास की ग़ुलामी में जकड़ देता है और फिर बाद को उससे अनेक ख़राबियाँ पैदा हो जाती हैं। धर्म की बदौलत हमारी वैवाहिक प्रथा में कैसी-कैसी ख़राबियाँ पैदा हो गई हैं, उनका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। उनको फिर से दुहराने की ज़रूरत नहीं है। इसलिए "सिविल मैरेज ऐक्ट" या इसी तरह के किसी दूसरे नियम या क़ानून के अनुसार शादियाँ होनी चाहिएँ, जिसमें पण्डित, पाधा, पुरोहित, मुल्ला और पादड़ी की दरकार न हो और जिसमें लोग विवाह करते समय अपनी दुनियावी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह से महसूस करें।

दूसरी बात यह कि मनुष्य तभी विवाह करे, जब वह अपने बूते पर खड़ा होने और अपनी स्त्री तथा बाल-बच्चों का भरण-पोषण अच्छी तरह करने के लायक़ हो।

तीसरी बात यह कि जब स्त्री और पुरुष आपस में सम्बन्ध तय करके विवाह करना चाहें तो दोनों को अपनी डॉक्टरी परीक्षा करके इस बात का सार्टिफ़िकेट पेश करना चाहिए कि दोनों की तन्दुरुस्ती ठीक है और जो सन्तान उनसे पैदा होगी वह भी तन्दुरुस्त होगी। अगर

* यदि भट्ट जी इस 'ऊँच' और 'नीच' मालवीयों की सविस्तार व्याख्या भी इस स्थान पर कर देते तो निश्चय ही पाठकों का विशेष मनोरञ्जन हुआ होता। —स० 'चाँद'

दोनों में से एक की भी तन्दुरुस्ती ख़राब हो तो फिर उन्हें एक दूसरे के साथ विवाह करने का अधिकार न होना चाहिए।

चौथी बात यह कि विवाह ज़िन्दगी भर के लिए न होना चाहिए। यह नहीं कि मन पटे अथवा न पटे दोनों एक दूसरे के साथ विवाह की बेड़ी में हमेशा के लिए जकड़े रहें। जिस समय विवाह का ठीका या इक़रारनामा लिखा जाय उसमें एक शर्त यह भी होनी चाहिए कि यह इक़रारनामा जब चाहे तब टूट सकता है और पति-पत्नी एक दूसरे को जब चाहें तब तलाक़ दे सकते हैं।

पाँचवीं बात यह कि किसी माता-पिता को यह हक़ न होना चाहिए कि वह अपनी लड़की या लड़के का विवाह उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कर सके।

जब इस तरह के विवाह का प्रचार होगा तभी हमारी वैवाहिक ख़राबियाँ दूर होंगी उसके पहले नहीं; और तभी ऐसी सन्तान पैदा होगी जो स्वराज्य और आज़ादी की लड़ाई में दृढ़ता के साथ टिक सके। नहीं तो जैसे सदियों से हम कीड़े-खटमल के समान पैदा होते और मरते रहे हैं, वैसे ही पैदा होते और मरते रहेंगे—देख लीजिएगा !!

नाथ !

[रचयिता—पण्डित रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

एक ही पल्लव के दो पुष्प !
एक सरिता के थे दो कूल !!
एक सरसिज के दो प्रतिविम्ब !
पुण्य के दो साधन सुखमूल !!

नहीं, प्रियतम ! यह मेरी भूल !!
सुधा में हो जैसे अमरत्व !!
श्याम-घन में ज्यों निर्मल-नीर !
अरुण में ऊषा का अस्तित्व !!

नहीं, नलिनी मैं आप दिनेश !
मयूरी मैं, तुम थे घनश्याम !!
मानसर मैं, हृदयेश ! मराल !!
कुमुदिनी के थे शशि सुखधाम !!

पुष्प मैं थी तो तुम मकरन्द !
रत्न की थे तुम कोमल कान्ति !!
कल्पना के प्रिय मञ्जुल भाव !
भक्ति की प्रतिमा में तुम शान्ति !!

नाथ ! तुम विकसित नवल-वसन्त !
कोकिला का मैं थी उन्माद !!
प्रणय-स्वाती के थे तुम विन्दु !
पपीहे का मैं प्रेम-प्रमाद !!

किन्तु हा ! यह कैसी अनरीति !
निठुरता ! निर्ममता !! अन्याय !!
आज होते तुम मुझसे भिन्न !
मुझे छोड़े जाते असहाय !!

कहाँ जाते हो तजकर देव !
त्यागते क्यों असमय में साथ !!
हुआ मेरा सूना संसार !
कहूँगी मैं अब किसको 'नाथ' !!

हिन्दू-लॉ में स्त्रियों के अधिकार

[ले० श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गताङ्क से आगे)

(३) स्मार्त्तकाल में स्त्रियों की स्थिति

सूत्र-काल के पश्चात् ही स्मार्त-काल का आरम्भ हुआ था, इसलिए इसमें उस समय की छाया रहना अनिवार्य है, किन्तु इस कारण यह समय जैसा भयावह होना चाहिए था, वास्तव में उतना भयावह नहीं है। बौधायन का सिद्धान्त अधिक दिन तक नहीं टिक सका, कदाचित् वह कभी माना भी नहीं गया था। अनेक स्मृतियाँ बनीं और स्पष्ट शब्दों में स्त्रियों के धनाधिकारादि का फिर से विधान किया गया एवं उनका क़ानूनी व्यक्तित्व फिर से स्थापित हुआ। नियोगादि बुरी प्रथाओं की निन्दा की गई और स्त्रियों की रक्षा का विधान किया गया। फिर भी इस उन्नतिशील युग में वह समानता उन्हें प्राप्त नहीं हुई जो वैदिक समय में थी। मन्वादि स्मृतियों के पारायण से साधारण विद्यार्थी को यही विदित होगा कि स्त्रियाँ मुख्यतया परतन्त्र ही थीं, अपवाद रूप से केवल थोड़े से अधिकारों की स्वामिनी थीं। जिन आधुनिक लेखकों ने केवल स्मृतिकाल से ही स्त्रियों की स्थिति को निरूपण करना आरम्भ किया, उनके मत में भी यही सिद्धान्त उपयुक्त ठहरा। ऐसी बात नहीं कि ये लोग साधारण विद्यार्थी थे, वास्तव में ये लोग बड़े-बड़े क़ानूनज्ञ हुए हैं, किन्तु जैसा जस्टिस मित्र ने लिखा है, इनकी भूल यह थी कि ये लोग स्मृतियों के पहले का इतिहास नहीं जान सके। इन विद्वानों की ऐसी धारणा के कारण ही वर्त्तमान हिन्दू-लॉ का रूप इस अंश में विशेष विकृत होगया! हमें यहाँ स्त्रियों के किसी अधिकार-विशेष पर विचार नहीं करना है, उनकी साधारण स्थिति को ही विचारना है; अतः सर्व-प्रथम यही परीक्षा करना आवश्यक है कि स्मृतियों के परतन्त्रता-सूचक वचनों का यथार्थ अभिप्राय क्या है, क्योंकि यदि वे सचमुच में क़ानूनी सिद्धान्त हैं तो आधुनिक लेखकों की सम्मति बहुत दुरुस्त है, अन्यथा स्त्रियों की स्थिति दूसरे प्रकार की होगी।

स्मृतियों में परतन्त्रता-सूचक वचनों की कमी नहीं है। उदाहरण के लिए मनुस्मृति का यह वचन लिया जा सकता है :—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

इसी की प्रतिध्वनि मनु महाराज के दूसरे वाक्य में मिलती है :—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापियोषिता
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि॥

याज्ञवल्क्य और नारद ने भी मनु के 'पिता रक्षति कौमारे' वाले वचन को अपनी स्मृतियों में अक्षरशः उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में और भी कितने ऐसे वचन हैं, जिनसे स्त्रियों की निर्धनता, परतन्त्रता और व्यक्तित्व-हीनता सूचित होती है। मनु लिखते हैं कि :—

नास्ति स्त्रीणांक्रियामन्त्रैरितिधर्मे व्यवस्थितः।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृत मितिस्थितिः॥

—९, १८

स्त्रियों की कोई क्रिया वेद-मन्त्र से नहीं होती, ऐसी धर्म की व्यवस्था है। वे निरिन्द्रिय अर्थात् व्यक्तित्वहीन और मन्त्राधिकार-शून्य हैं। उनकी स्थिति असत्य है। फिर दूसरी जगह लिखते हैं :—

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधना स्मृताः।
यत्ते समाधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥

स्त्री, पुत्र और दास, ये तीनों निर्धन होते हैं अर्थात् किसी धन में उनका स्वामित्व नहीं होता है। जो ये उपार्जन करते हैं वह उसी व्यक्ति का होता है जिनको ये

स्त्री, पुत्र या दास हैं। मनुस्मृति के पढ़ने से यह अनायास विदित होता है कि स्त्रियों की पराधीनता के लिए हमारे स्मृतिकार अत्यन्त ही आतुर हो उठे थे। इसी आतुरता के कारण वर्तमान हिन्दू-लॉ के लेखकों और सञ्चालकों को यह मानना ठीक जान पड़ा कि हिन्दू-स्त्रियाँ वस्तुतः परतन्त्र और निर्धन थीं और वे केवल उन्हीं अधिकारों की अधिकारिणी मानी जा सकती हैं, जिनका स्पष्ट उल्लेख धर्म-शास्त्रों में है। दूसरे शब्दों में स्त्रियों की परतन्त्रता और निर्धनता नियमरूप से, तथा उनकी स्वतन्त्रता और धनवत्ता अपवादरूप से स्वीकृत हुई। इसी भ्रमात्मक धारणा के कारण स्त्रियों की सत्ता वर्त्तमान हिन्दू-लॉ में बहुत-कुछ खर्व कर डाली गई। सुतरां पहले इसी भ्रम का निवारण करना आवश्यक है।

मनुस्मृति कुछ एक या दो वर्षों की लिखी हुई पुस्तक नहीं है, प्रत्युत् कई शताब्दियों की स्मृतियों (कण्ठस्थ विषयों) का संग्रह है। कई प्रकार से यह मत स्थापित होता है जिनका उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु ऐसा होने के कारण उसमें कई विरोधी सिद्धान्तों का आकलन हुआ है। मत्स्य-मांस खाने की विधि और निषेध साथ ही साथ देख पड़ता है। उसी प्रकार नियोग का भी विधि-निषेध साथ ही साथ किया गया है। आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है जो कदापि एक ही समय में प्रचलित नहीं हुए होंगे। भिन्न-भिन्न ऋषियों ने कई प्रकार के पुत्रों का उल्लेख किया है, जिनसे शताब्दियों के परिवर्तन का पता चलता है। उसी प्रकार स्त्रियों की स्थिति का भी विरोधी दृश्य देखने में आता है। हम यह पहले कह आए हैं कि सूत्रकाल में स्त्रियों की स्थिति में बहुत ही अवनति हुई और उस काल के पश्चात् ही स्मृतियों का समय आता है। अतः यह भी निश्चित ही है कि स्मार्त्तकाल पर सूत्रकाल की छाया अवश्य कुछ न कुछ रहेगी। स्त्रियों का वेदाधिकार, संस्कार और स्वत्व बहुत कुछ परिवर्त्तित हो गया था, इसलिए मन्वादि स्मृतियों में उपरोक्त वचनों का पाया जाना आवश्यक है, किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि स्मार्त्तकाल में स्त्रियों की क़ानूनी स्थिति वैसी परतन्त्रतापूर्ण थी। जिन मनु महाराज ने स्त्री को निर्धन कहा है, उन्हीं ने ६ प्रकार के स्त्री-धन गिनाए हैं, विधवा के उत्तराधिकार कहे हैं तथा स्त्रियों के सत्कार की गाथा भी गाई है। तब इन परतन्त्रता-सूचक वचनों का अभिप्राय क्या है?

यहाँ हमें क़ानूनी विधिवाक्य (Legal injunctions) और नैतिक उपदेश वाक्य (Moral injunctions) के भेद पर ध्यान देना चाहिए। शास्त्रों में दोनों प्रकार के वाक्य हैं, किन्तु क़ानूनज्ञों को सर्वदा इनका भेद ध्यान में रखना अनिवार्य है, अन्यथा स्त्रियों की सत्ता का ठीक-ठीक पता लगना असम्भव है। महर्षि जैमिनि ने इन भेदों के ऊपर बहुत पहले मीमांसा कर दी थी और उस दृष्टि से देखने पर स्मृतियों के परतन्त्रता-सूचक वचनों का तात्पर्य नैतिक उपदेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है। स्त्री का भरण-पोषण करना पति के लिए क़ानूनी विधि (Legal obligation) है, किन्तु विधवा बहिन का भरण-पोषण किसी भाई के लिए अधिक से अधिक नैतिक विधि (Moral obligation) हो सकता है। क़ानूनी और नैतिक विधियों में यह भेद है कि यदि उसका पालन कोई व्यक्ति स्वयं नहीं करता है तो राजा का राज-दण्ड उसको ऐसा करने के लिए विवश करता है, किन्तु नैतिक वाक्यों की कोई ऐसी अनिवार्यता नहीं है, इसलिए हरेक क़ानूनी कर्त्तव्य-विधि के लिए अधिकार-विधि की योजना रहती है, अर्थात् पति को यदि स्त्री का भरण-पोषण करना क़ानूनी विधि है तो उसी अनुपात में स्त्री को भी पति से भरण-पोषण पाने का क़ानूनी अधिकार है। अधिक क्या, वर्त्तमान क़ानून-विज्ञान (Jurisprudence) में कर्त्तव्य-विधि और अधिकार-विधि का ऐसा परस्पर सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति को कुछ भी क़ानूनी अधिकार नहीं है, वह निरा परतन्त्र या दास है एवं जिस व्यक्ति के लिए कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है वह सर्वथा स्वतन्त्र है। नैतिक विधियों के लिए न तो किसी प्रकार की क़ानूनी अनिवार्यता है और न उनके लिए दूसरे पक्ष में किसी अधिकार की उत्पत्ति होती है। इसलिए क़ानूनी क्षेत्र में उन कर्त्तव्यों और अधिकारों का कोई मोल नहीं है। महर्षि जैमिनि ने इन दोनों प्रकार के वाक्यों को क्रमशः विधि-वाक्य और अर्थवाद कहा है। विधि-वाक्य भी चार प्रकार के होते हैं—उत्पत्ति-विधि, विनियोग-विधि, अधिकार-विधि और प्रयोग-विधि। इसी प्रकार अर्थवाद भी चार प्रकार के होते हैं, जो

क्रमशः निन्दा, प्रशंसा, उदाहरण और प्राचीन प्रथा के विषय में कहे जाते हैं। इतना जान लेने पर यह परीक्षा करना आवश्यक है कि हमारे धर्मशास्त्रों के परतन्त्रता-सूचक वचन वस्तुतः क़ानूनी वाक्य हैं अथवा नैतिक वाक्य हैं; विधि हैं अथवा अर्थवाद।

स्मृतिकारों में मनु, याज्ञवल्क्य और नारद ही मुख्य हैं, अतः इन्हीं तीनों के वचन पर विचार करना पर्याप्त है। यहाँ भी हम जस्टिस मित्र महाशय का ही पदानुसरण करेंगे। मनु ने "पिता रक्षति कौमारे" वाले श्लोक में विधिलिङ्ग का प्रयोग नहीं किया है, लट्-लकार का प्रयोग किया है, इसलिए यह कोई विधि वाक्य नहीं है प्रत्युत् वस्तु-स्थिति का वर्णन है, "न स्वातन्त्र्य मर्हति" में भी लट्-लकार का ही प्रयोग है। उसी प्रकार "न स्वातन्त्र्येन कर्त्तव्यं किञ्चित् कार्यं गृहेष्वपि" से भी उनकी नैतिक परतन्त्रता ही सूचित होती है—क़ानूनी परतन्त्रता नहीं। मनु ने पुरुषों के ऊपर स्त्री की रक्षा का भार बहुत आतुरतापूर्वक रक्खा है, किन्तु उस रक्षा का अभिप्राय केवल इतना ही है कि स्त्रियाँ कुमार्ग में जाने से रोकी जायँ। यह बात मनु के ही वाक्य से सूचित होती है। लिखा है:—

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेहाच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नोऽपीह भर्तृष्वेता निकुर्वते॥
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापति निसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति॥

—९, १५—१६

स्त्रियाँ स्वभावतः व्यभिचारिणी, चञ्चल और स्नेह-रहित होती हैं। अत्यन्त रक्षा करने पर भी रक्षिता नहीं रहती हैं इसलिए प्रजापति से उनके ऐसे विचित्र स्वभाव को जान कर पुरुषों को उनकी रक्षा में तत्पर होना चाहिए। इन श्लोकों के द्वारा स्त्री-स्वभाव की निन्दा अवश्य की गई है, किन्तु मनु किस लिए इतने आतुर हो रहे हैं, यह भली-भाँति विदित हो जाता है। कुल्लूक आदि मनु के टीकाकारों ने भी इन पारतन्त्र्य वचनों का अभिप्राय यही कहा है। यदि मनु इन वचनों के द्वारा किसी क़ानूनी सिद्धान्त का कथन करते तो स्त्रियाँ सच-मुच घर की चहारदीवारी में नितान्त बँधुआ हो जातीं, उन पर गधों की मार बात-बात में पड़ती, तथा धनाधिकार में उनका कोई स्थान न होता, और बहुत से मूर्ख इन वाक्यों को क़ानूनी सिद्धान्त मान कर स्त्रियों पर उपरोक्त अत्याचार करते हों या कर चुके हों तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु मनु महाराज तो स्पष्ट शब्दों में बल पूर्वक निरोध का विरोध करते है। लिखते हैं:—

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यांच पारिणाह्यस्य चेक्षणे॥
अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ता सुरक्षिताः॥

—९, १०,—१२

स्त्रियों को कोई बल से नहीं रोक सकता है, प्रत्युत् धन-संग्रह, आय-व्यय और गृहकार्य आदि में लगा कर ही बचा सकता है। जिस स्त्री को घर के लोग रोक नहीं रखते हैं, प्रत्युत् जो स्वयं अपनी रक्षा करती है, वही स्त्री यथार्थ में सुरक्षित रहती है। इन वचनों से स्पष्ट है कि मनु जी स्त्रियों को बरवश रोकने का कैसा विरोध करते हैं, साथ ही उनकी पवित्रता के लिए कितने आतुर हो रहे हैं। वस्तुतः हिन्दू-स्त्रियों के लिए सतीत्व का आदर्श जितना ऊँचा है, संसार में और कहीं नहीं है।

हमारे लिखने का यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियों के ऊपर किसी प्रकार का शासन ही न किया जाय। देश, काल और पात्र के विचार से हरेक स्त्री-पुरुष का शासन होना अनिवार्य है। पुरुष-जाति के ऊपर साधारणतः स्त्री की रक्षा का भार है और वह नैतिक दृष्टि से स्त्रियों को कुमार्ग में जाने से रोकने का अधिकारी है, परन्तु क़ानूनी दृष्टि से स्त्री और पुरुष एक से स्वतन्त्र हैं। मनु के उपरोक्त वाक्य केवल नैतिक उपदेश हैं, जिनका उपयोग नैतिक रीति से हरेक गृह में होना आवश्यक है, किन्तु इनसे स्त्रियों के क़ानूनी व्यक्तित्व में रत्ती भर की कमी नहीं आती है।

याज्ञवल्क्य ने उक्त श्लोक को दूसरे प्रकार से लिखा है:—

रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्द्धके।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित्स्त्रियः॥

—या० स्मृ० विवाह-प्रकरण ८५

जस्टिस मित्र महोदय इस वाक्य को भी अर्थवाद ही मानते हैं। यद्यपि इसमें विधिलिङ्ग का प्रयोग है, तथापि

वे कहते हैं कि "अनुवाद्य अनुत्तवात् न विधेयमुदीरयेत्" जिसको हम नित्य प्रति अनायास करते हैं उसकी विधि क्या होगी ? स्त्री, माता, कन्या आदि का रक्षण लोग योंही करते हैं, इसलिए इसकी विधि अनावश्यक है। मनु ने इसीलिए उसमें विधिलिङ्ग का प्रयोग नहीं किया। याज्ञवल्क्य के प्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर ने भी इस श्लोक की टीका में रक्षा का उद्देश केवल "अकार्य-करणात्" अर्थात् बुरे कामों से बचना कहा है। अतः मनु-वाक्य और इसमें केवल शब्द-भेद है, भाव-भेद कुछ नहीं है।

नारद ने मनु के "पिता रक्षति" वाले श्लोक को शब्दशः उद्धृत किया है और "भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय ऐवाधना स्मृतः" भी कहा है, किन्तु इसके बाद ही वे स्वयं इस परतन्त्रता की व्याख्या यों करते हैं—"सारी प्रजा परतन्त्र है, केवल राजा स्वतन्त्र है। शिष्य परतन्त्र है, किन्तु अध्यापक स्वतन्त्र है। इस संसार में केवल तीन व्यक्ति स्वतन्त्र हैं, अध्यापक, राजा और गृहपति। शेष सभी परतन्त्र हैं" (नारद अ० ३, ३४—३५)। अब इस परतन्त्रता का अर्थ हम भली भाँति समझ सकते हैं। सारी प्रजा परतन्त्र है, इसका अर्थ कदापि यह नहीं हो सकता कि क़ानून की दृष्टि में प्रजा कोई व्यक्ति ही नहीं, उसको कोई क़ानूनी अधिकार नहीं, वह कोई वैध कार्य (Juristic actions) नहीं कर सकती, और हरेक बात में उसे राजा की आज्ञा लेनी पड़े। राजा स्वतन्त्र है, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह प्रजा के वैध कार्यों का किसी प्रकार निरोध कर सके। उसका अभिप्राय इतना ही है कि वह सारी प्रजा का रक्षक है, उसके सुख-शान्ति की व्यवस्था करने वाला है और बुरे कार्यों को रोकने वाला है। जो राजा प्रजा के वैध-कार्यों का निरोध करता है, वह अन्यायी कहा जाता है और प्रजा की सामूहिक शक्ति अन्त में उसकी सत्ता का अन्त कर देती है। इसलिए प्रजा की इस परतन्त्रता का अर्थ केवल नैतिक परतन्त्रता है। स्त्री-जाति और पुरुष-जाति में राजा-प्रजा का सम्बन्ध नहीं है। राजा के प्रतिकूल प्रजा को जो कुछ स्वतन्त्रता है, उससे अधिक स्त्री को पुरुष के प्रति है; क्योंकि राजा के अतिरिक्त सारी जनता स्त्री हो या पुरुष, प्रजा है और उसी पराधीनता में सबका यथायोग्य क़ानूनी अधिकार और कर्त्तव्य है। किन्तु स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में परस्पर स्वामी, सखा और सेवक तीनों प्रकार का भाव है। नारद के टीकाकार असहाय और जगन्नाथ भी इन श्लोकों की टीका में यही लिखते हैं कि स्त्री यदि बिना अपने संरक्षकों के पूछे किसी धन का विनिमय करती है तो वह अवैध (Unlawful) नहीं होता है, प्रत्युत् उसे पाप होता है। वीरमित्रोदय के रचयिता मित्रमिश्र की भी यही सम्मति है। अतः सिद्ध होता है कि नारद की सम्मति में भी स्त्री क़ानूनी तौर परतन्त्र नहीं है, वह नैतिक दृष्टि से ही अपने पति, पिता या पुत्रादि के अधीन है, अतः यह एक अर्थवाद है, विधि-वाक्य नहीं।

बृहस्पति भी मनु के समान ही स्त्री-रक्षा का उपाय आय-व्यय, गृह-कार्य और अर्थ-संग्रह बतलाते हैं।* इससे स्पष्ट है कि हमारे शास्त्रकारों का अभिप्राय स्त्री-रक्षा से केवल यही था कि गृहकार्यादि में स्त्रियों को लगा कर पुरुष सर्वदा उनका नियन्त्रण करते रहें, उनके अभावों की पूर्त्ति करते रहें जिससे वे कुमार्ग में न चली जायँ। इन बचनों का कदापि यह अभिप्राय नहीं था कि स्त्रियों को धनोपार्जन का अधिकार नहीं, पुरुषों की आज्ञा बिना वे किसी भी स्वतन्त्र धन का विनिमय न कर सकें, अथवा उनकी कोई सत्ता ही नहीं। यह बात इससे और भी पुष्ट होती है कि यद्यपि शास्त्रकारों ने स्त्रियों को ऐसा परतन्त्र कहा है, तथापि उन्होंने जीवित पति के धन में उनका सहाधिकार (Coparcenership) स्वीकार किया है, मृत पति के धन में उनके उत्तराधिकार या भरण-पोषण का विधान किया है, पति, पिता, पुत्रादि पर उनके पालन की क़ानूनी अनिवार्यता रक्खी है और कई प्रकार के धनों को उन्होंने स्वतन्त्र स्त्री-धन माना है, जिस पर पति का भी कुछ वश नहीं चल सकता है। इस प्रकार उनके धनाधिकार की व्यवस्था की है और विवाह, दत्तक एवं आत्म-रक्षा आदि से वैयक्तिक अधिकारों की भी योजना की गई है। ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि हमारे धर्मग्रन्थों में स्त्रियों की स्थिति परतन्त्र है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि क़ानूनी तौर पर न सही, नैतिक ही दृष्टि से स्त्रियों को ऐसा परतन्त्र क्यों कहा गया ? इसका उत्तर यह है कि सूत्रकाल में स्त्रियों की समानता का बहुत कुछ अन्त हो चुका था।

---

* "आये व्ययेऽन्नसंस्कारे गृहोपस्कररक्षणे।
शौचाग्निकार्ये संयोज्या रक्षा स्त्रीणामियं स्मृता ॥"

उन्हें वेदाध्ययन का अधिकार नहीं रहा। विवाह-संस्कार ही उनका एकमात्र संस्कार रह गया। जब विद्यादान की यह दशा हुई, यहाँ तक कि स्त्रियों को शूद्र वर्ग में सम्मिलित कर दिया गया तो उन्हें भले-बुरे का ज्ञान कैसे रह सकता था? इसके अतिरिक्त जब उनकी सत्ता में इतना बड़ा परिवर्तन उपस्थित हुआ तो वे स्वभावतः आत्म-रक्षा करने में असमर्थ हुईं। ऐसी स्थिति में पुरुष-जाति यदि उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर नहीं लेती तो क्षति के अतिरिक्त मान-हानि भी होती। सुतरां हमारे शास्त्रकारों ने बड़ी ही आतुरता-पूर्वक स्त्रियों की रक्षा का विधान स्मृतियों में किया है, किन्तु भूल से आधुनिक क़ानूनज्ञों ने इन वचनों को स्त्रियों की क़ानूनी पराधीनता के वचन मान लिए हैं।

(४) मध्यकाल में स्त्रियों की क़ानूनी स्थिति

स्मृतियों में स्त्रियों की नैतिक पराधीनता का विधान हुआ है—यह सिद्धान्त मध्यकाल के टीकाकारों और निबन्धकारों से और भी दृढ़तापूर्वक स्थिर होता है। टीकाकारों के सुमेर विज्ञानेश्वर ने इन परतन्त्रता-सूचक वचनों के विषय में कहा है, "यत्तु पारतन्त्र्य वचनं न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीत्यादि तदस्तु पारतन्त्र्यं, धनस्वीकारे तु को विरोधः?" अर्थात् इन वचनों से जो परतन्त्रता दीख पड़ती है, वह रहे; इससे स्त्रियों के धनाधिकार में क्या बाधा पहुँचती है? स्पष्ट है कि विज्ञानेश्वर के मत में इस पराधीनता का धनाधिकार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। यदि ऐसा होता तो विज्ञानेश्वर कदापि इतनी उदारता से स्त्रियों के धनाधिकारों का निर्णय नहीं करते। आगे चलकर हम देखेंगे कि विज्ञानेश्वर ने मीमांसा की तर्क-पद्धति से किस प्रकार स्त्रियों के धनाधिकार को बढ़ा दिया है। इसके अतिरिक्त मित्रमिश्र, नीलकण्ठ, बालमभट्ट और अन्यान्य निबन्धकारों ने विज्ञानेश्वर का ही अनुसरण किया है। बङ्गाल के प्रसिद्ध निबन्धकार जिमूतबाहन ने भी संयुक्त परिवार की संस्था का प्राचीन सिद्धान्त तोड़ कर स्त्रियों के धनाधिकार का मार्ग बहुत-कुछ परिष्कृत किया। इसी प्रकार मिथिला और द्राविड़ (मद्रास) प्रान्तों में भी स्त्रियों की मध्य-कालीन स्थिति टीकाकारों और निबन्धकारों के द्वारा अधिकाधिक उन्नत हुई।

यहाँ पर एक विषय ध्यान देने योग्य है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के टीकाकारों और निबन्धकारों ने भिन्न-भिन्न रीति से स्त्रियों की क़ानूनी स्थिति का निरूपण किया। यद्यपि मिताक्षरा का मान बङ्गाल को छोड़ सम्पूर्ण भारत-वर्ष में सर्वोपरि है और उसमें स्त्रियों के धनाधिकार का विधान अत्यन्त उदार है, तथापि उसके अन्तः सम्प्रदायों में बड़ा ही मतभेद है। महाराष्ट्र (बम्बई) सम्प्रदाय स्त्रियों के लिए अत्यन्त उदार और मिथिला सम्प्रदाय अपेक्षाकृत सङ्कीर्ण है। काशी और द्राविड़ सम्प्रदायों का स्थान इन दोनों के मध्य में है। बङ्गाल के दायभाग सम्प्रदाय में यद्यपि स्त्रियों के विनिमयाधिकार (Power of alienation) में बहुत कुछ बाधा दीख पड़ती है, तथापि संयुक्त परिवार की बेड़ी कट जाने से स्त्रियों को लाभ ही हुआ है। इस प्रकार स्मृतिकारों के पश्चात् टीकाकारों और निबन्धकारों ने हिन्दू-लॉ के इस अङ्ग की भरपूर उन्नति की है, किन्तु दुर्भाग्यवश अङ्गरेज़ी सरकार ने इस उन्नति की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया, जिसका ब्योरा हमें आगे देखने को मिलेगा।

(क्रमशः)

अछूत-विनय

[रचयिता—श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]

क्या हमको तुम किसी भाति कुछ बतलाओगे?
किस कुदशा में हमें और तुम पहुँचाओगे?
सहते हैं हम, योग्य नहीं जो है सहने के!
रहते हैं जो रहन योग्य, क्या वह रहने के?

गिरते ही क्या जायँगे, हम अछूत संसार में,
विषम भाव क्यों है भरा, प्रभु के भी व्यवहार में?

मनोरञ्जन और शिक्षा

[ले० श्री० रमेशप्रसाद जी, बी० एस-सी०]

क्या स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं ?

गत कई वर्षों से स्त्रियाँ पुरुषों की समानता करने के लिए तुल पड़ी हैं। पुरुष जिन-जिन विषयों में दक्षता प्राप्त कर वाह-वाही लूट रहे हैं, स्त्रियाँ भी उन्हीं विषयों में पु षों के बराबर ही (यदि अधिक नहीं तो) दक्षता दिखला कर अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही हैं। क्या साहित्य, क्या विज्ञान, क्या राजनीतिक आन्दोलन, क्या समाज-सुधार—सभी विषयों में स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही अपनी करामात दिखला कर संसार को चकित कर रही हैं। इसके अलावा व्यायाम और खेल-कूद है। इसमें भी स्त्रियों ने पुरुषों से कुछ कम नामार्जन नहीं किया है। यदि इस देश में राममूर्ति हैं तो ताराबाई भी हैं। राममूर्ति के खेलों को देख कर लोग आश्चर्य-चकित हो गए थे, किन्तु ताराबाई ने प्रायः वैसे ही खेल दिखला कर लोगों को और भी आश्चर्य में डाल दिया। अभी हाल की बात है कि दो महिलाओं ने इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स के बीच के समुद्र-भाग को तैर कर पार किया। इनमें एक का नाम मिस गार्ट्रूड इडर्ली है। २१ मील विस्तृत समुद्र को इन्होंने सिर्फ़ १४ घण्टे ३१ मिनट में पार किया है। आपके पहले पाँच पुरुष तैराकों ने इस समुद्र-भाग को अवश्य पार किया था, किन्तु आपकी यह चेष्टा दो कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला कारण यह है कि आप सर्व-प्रथम महिला हैं, जिन्होंने उस काम को कर दिखाया है, जिसे पुरुषों ही ने अब तक किया था। दूसरा कारण यह है कि आपने अपने पहले के पाँच पुरुष-तैराकों से प्रायः दो घण्टे कम समय में यह काम कर दिखाया। आपके पहले जिन लोगों ने स्ट्रेट ऑफ़ डोवर को पार किया था, उनका नाम और पार करने का समय नीचे दिया जाता है :—

कैप्टेन मैथ्यू वेब	...	२१ घण्टे	४५ मिनट
थॉमस विलियम बर्जेस	...	२२ ,,	३५ ,,
हेनरी सुलीवान	...	२७ ,,	२३ ,,
सेवास्त्रियन तिराबोशी	...	१६ ,,	२३ ,,
चार्ल्स टॉथ	...	१६ ,,	५४ ,,

इनके साथ तुलना कीजिए नीचे दी हुई दो स्त्रियों के समय को :—

मिस गार्ट्रूड इडर्ली	...	१४ घण्टे	३१ मिनट
मिसेज़ क्लेमिङ्गटन कार्सन		१५ घण्टे	३१ मिनट

मिसेज़ कार्सन का समय, यद्यपि इडर्ली के समय से एक घण्टा अधिक था, किन्तु उस समय तक डोवर और कैले के बीच के जल-भाग को पार करने वाले सब से तेज़ पुरुष-तैराक से प्रायः एक घण्टा कम था। कहिए, इसमें उनकी बहादुरी है या नहीं ? किन्तु बात इतनी ही नहीं है, मिस इडर्ली इस समय १९ वर्ष की लड़की (पाश्चात्य देश में इस उम्र की लड़की युवती नहीं कही जाती) हैं, किन्तु कार्सन दो सन्तानों की माँ हैं। समय का विचार करते समय इस बात को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। खेल-कूद के इतिहास में स्त्रियों का पुरुषों पर विजय पाना एक नई वस्तु थी।

ये बातें बेतार के तार द्वारा संसार के कोने-कोने में प्रचारित हो गईं। सारा पुरुष-समाज स्त्रियों की यह विजय सुन कर सन्न हो गया। क्या शारीरिक विषयों में भी स्त्रियाँ पुरुषों को नीचा दिखावेंगी ? पुरुषों को यह बात कब सह्य होने लगी। मिसेज़ कार्सन के विजय के सिर्फ़ दो दिन बाद जर्मनी के अर्नेस्ट वीरकोएटर (Ernest Vierkoetter) नामक एक पुरुष ने उपरोक्त समुद्र-भाग को सिर्फ़ १२ घण्टे ४३ मिनट में पार कर डाला। इसके दो हफ़्ते के अन्दर ही अन्दर फ़्रान्स के एक पुरुष-तैराक, जॉर्जेज़ मिचेल, ने अर्नेस्ट से १ घण्टा

३८ मिनट कम समय में इङ्गलिश चैनेल को पार किया। इसने मिस इडर्ली से ३ घण्टे २६ मिनट कम समय लिया!

इस समय अब एक ही प्रश्न पाश्चात्य जगत् में खलबली मचाए हुए है। क्या स्त्रियाँ खेल-कूद में भी पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं? कुछ विद्वानों का कहना है

मिस गार्ट्रूड इडर्ली, जिन्होंने इंगलिश चैनेल जैसे भयङ्कर २१ मील के पाट को केवल १४ घण्टे और ३१ मिनिट में पार कर पुरुषों के छक्के छुड़ा दिए थे!

कि पुरुषों की शारीरिक शक्ति स्त्रियों की शारीरिक शक्ति से सर्वदा अधिक थी और रहेगी। स्त्रियाँ कम से कम खेल-कूद के विषय में पुरुषों की समानता नहीं कर सकतीं। सवाल किया जा सकता है "क्यों"? इसका उत्तर देने के पहले, मैं उन बाधाओं का उल्लेख कर देना चाहता हूँ, जो अब तक स्त्रियों के खेल-कूद की उन्नति में बाधा देती आ रही हैं। पहली बाधा उनकी पोशाक है। स्त्रियों के पोशाक ऐसे ढङ्ग के होते हैं, जो हाथ-पाँव या शरीर के अङ्गों के स्वतन्त्र सञ्चालन में सर्वदा बाधा उपस्थित किया करते हैं। पाश्चात्य देश की स्त्रियों ने, विशेषतः वे स्त्रियाँ, जो खेल-कूद में भाग लिया करती हैं, अपने पोशाकों में बहुत कुछ रद्दो-बदल कर डाला है। किन्तु हमारे देश की स्त्रियाँ अभी भी पुरानी लकीर को पीट रही हैं और जब तक वे ऐसा करती रहेंगी, उनकी शारीरिक उन्नति कोसों दूर रहेगी। जब तक उनके पोशाक अङ्ग-सञ्चालन में बाधा देते रहेंगे, तब तक हिन्दुस्तान की शायद कोई भी स्त्री खेल-कूद में पुरुषों की बराबरी न कर सकेगी। पाश्चात्य देश की स्त्रियों ने अपने पोशाक का तर्ज़ तो अवश्य बदल दिया, किन्तु अभी भी वे पुरुषों की समानता नहीं कर रही हैं। तैरने ही को लीजिए। मिस इडर्ली ही को देखिए, उन्होंने पुरुषों के सामने, दूर तक तैरने में, हार खाई। कम दूरी के तैरने में भी पुरुष स्त्रियों से सदा आगे रहते हैं। मिस मैरीचन, सब से तेज़ स्त्री-तैराक, सौ गज़ १ मिनट ३ सेकेण्ड में तैरती हैं। किन्तु जॉनी विसमुलर इस दूरी को प्रायः ५२$\frac{3}{5}$ सेकेण्ड ही में तैर जाता है। इडर्ली से भी तुलना कर लीजिए। ये १५० गज़ १ मिनट ४५ सेकेण्ड में तैरती हैं और जॉनी विसमुलर सिर्फ़ १ मिनट २७$\frac{3}{5}$ सेकेण्ड में। कहिए, तैरने में स्त्रियाँ मनुष्यों से पीछे हैं या नहीं?

लुइस डी० बी० हैन्डले, न्यूयार्क के स्विमिङ्ग एसोसिएशन के एक विशेषज्ञ का कहना है कि स्त्रियों के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि तैरने में वे पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकतीं। स्त्रियों में सिर्फ़ एक गुण है, उनमें सहनशक्ति बहुत ज़्यादा होती है, इसलिए वे पुरुषों से अधिक दूर तैर सकती हैं। स्त्रियों के शरीर में चर्बी की मात्रा पुरुषों से ज़्यादा होती है, इसलिए देर तक पानी में रहने पर भी उन्हें सर्दी नहीं जान पड़ती। स्त्रियाँ इस कला में उन्नति करती जा रही हैं, किन्तु वे पुरुषों जैसी तेज़ तैराक नहीं हो सकतीं। तैरने में पुरुष स्त्रियों से हमेशा बाज़ी मार ले जाया करेंगे।

कहा जाता है कि 'गॉल्फ़' नामक खेल में शारीरिक शक्ति की अपेक्षा बुद्धि (Skill) की अधिक आवश्यकता होती है। लोगों का विश्वास था कि स्त्रियाँ इस खेल में

पुरुषों के समक्ष होंगी। किन्तु इस खेल में भी स्त्रियाँ पुरुषों से हार मान गई हैं। शारीरिक शक्ति को यदि छोड़ भी दें, तो इस खेल में शीघ्र-विचार की आवश्यकता होती है। पुरुष किसी विषय को तुरन्त सोच सकते हैं और जिस बात को वे एक बार निश्चय कर लेते हैं उस पर दृढ़ होकर काम भी करते हैं। स्त्रियाँ पहले तो किसी बात को तुरन्त सोच नहीं सकती हैं और यदि सोचती हैं तो उस पर दृढ़ नहीं रहतीं। स्त्रियाँ मस्तिष्क की अस्थिरता के लिए विख्यात हैं, इसी कारण वे "गॉल्फ़" में पुरुषों से लोहा नहीं ले सकतीं।

मि० सुजेनी लेंगलेन स्त्री-टेनिस-खिलाड़ियों में सर्व-प्रथम है, किन्तु उसे संसार का प्रथम टेनिस-खिलाड़ी नहीं कहा जा सकता। विल टिल्टेन, संसार का प्रसिद्ध पुरुष-टेनिस-खिलाड़ी, ने उसे कई बार हराया है। मामूली

टेनिस की सुप्रसिद्ध खिलाड़िन मि० सुजेनी लेंगलेन

पुरुष-टेनिस-खिलाड़ियों ने भी उसे हराया है, और इस समय संसार में ऐसे सैकड़ों खिलाड़ी मौजूद हैं जो उसे हरा सकते हैं। टेनिस के खेल में स्त्रियों पर विजय पाने का एक ही कारण दिया जा सकता है। पुरुष स्त्रियों से लम्बे और भारी होते हैं। किन्तु ऐसे भी पुरुष हैं जो क़द में अपनी स्त्री-प्रतिद्वन्दी से छोटे और वज़न में हलके होने पर भी अपने प्रतिद्वन्दी को हरा देते हैं। इसलिए पुरुषों के जीतने का सिर्फ़ यही कारण दिया जा सकता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक तेज़, अधिक विचारशील और फुर्तीले होते हैं।

* * *

ख़ून से नर-मादा की पहचान

डॉ० डिऊई जी० स्टील ने कई परीक्षाओं द्वारा साबित किया है कि ख़ून से लिङ्ग-भेद का पता लग सकता है। आपने पशुओं के ख़ून को सौगुणे पानी के साथ मिला कर, उसमें कई रासायनिक पदार्थ डाले। इसके बाद आप उसमें मिथिल ग्रीन (एक प्रकार का रङ्ग) के कई बूँद डालते हैं। यदि ख़ून हरा हो जाता है तो वह मादा पशु का रक्त होता है, नर-पशु के रक्त के साथ उसका रङ्ग लाल होता है। नर-मादा का रक्त पहचानने का यह अच्छा तरीक़ा है, जासूसी विभाग वालों के फ़ायदे का यह आविष्कार है।

* * *

सीसे से पारा

हम लोगों में से बहुतों का विश्वास है कि 'पारस' पत्थर के स्पर्श से नीची श्रेणी के धातु ऊँची श्रेणी के धातु में परिवर्तित हो जाते हैं। लोहे का सोना होना, सीसे (Lead) का चाँदी बनना इस पत्थर द्वारा सम्भव है। कोई भी यह नहीं बतला सकता कि प्राचीन काल में भी इस पत्थर का अस्तित्व था या नहीं। किन्तु आज-कल के वैज्ञानिक विशेष क्रियाओं द्वारा एक धातु को दूसरी धातु में परिवर्तित कर रहे हैं। प्रो० स्मिट्स ने सीसे को पारे का रूप दिया है। सीसे को पारे में परिणत करने का विवाद अब शेष-प्राय, हो आया है, किन्तु इस समय पारे को सोने का रूप देने के पीछे वैज्ञानिक पड़े हुए हैं। देखें उनकी चेष्टा कब सफलीभूत होती है।

* * *

मछलियों की प्राण-शक्ति

लोगों का विश्वास है कि मछलियों के प्राण-शक्ति नहीं होती। किन्तु एक जर्मन प्रोफ़ेसर साहब ने प्रमाणित

किया है कि उनकी घ्राण-शक्ति मनुष्यों से कम नहीं होती।

बहुत सी मछलियों के अण्डों का पता नहीं लगता कि वे क्या हो जाते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि नर-मछली अण्डों को अपने मुँह में रख लेता है और जब तक वह फूट नहीं जाता तब तक वह उसकी रक्षा करता है।

* * *

दौड़ाक स्त्रियाँ

दौड़ने में स्त्रियाँ पुरुषों से सदा पीछे रहती हैं। संसार की सबसे तेज़ स्त्री-दौड़ाक मिस फ्रेनी रॉसेनफ़ेल्ट ११ सेकेण्ड में १०० गज़ दौड़ती है, कोई भी तेज़ बालक मिस फ्रेनी का साथ दे सकता है। २२० गज़ की दौड़ में सब से तेज़ पुरुष से ७ सेकेण्ड पीछे पहुँचती है। अब तक दौड़ कर लम्बाई फाँदने (Long Jump) में स्त्री केवल १८ फ़ीट फाँद सकी है, किन्तु पुरुष २५ फ़ीट ११७/८ इञ्च। चार सेर वज़न के लोहे के गोले को स्त्री केवल ३८ फ़ीट ३३/४ इञ्च फेंक सकती है, पर पुरुष उसी गोले को ६७ फ़ीट ७ इञ्च। ऐसे और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं जिससे यह पता लगेगा कि खेल-कूद में स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत पीछे हैं। कोई नहीं कह सकता कि आरम्भ में ईश्वर ने स्त्रियों को पुरुषों से कम शारीरिक शक्ति दी थी या नहीं, किन्तु इतना तो अवश्य है कि स्त्रियाँ परम्परा से पुरुष के अधीन रहती आई हैं और इस परतन्त्रता को तोड़ने के लिए उन्हें कई शताब्दियों की आवश्यकता होगी।

अमेरिका की प्रसिद्ध दौड़ने वाली स्त्री हेलेन फ़िल्की

* * *

लिफ़ाफ़ों की रक्षा

जिन लिफ़ाफ़ों में गोंद लगा रहता है, अक्सर बरसात के दिनों में उनका परदा (Flap) सट जाता है और उसे उखाड़ने में बहुत से लिफ़ाफे नष्ट हो जाते हैं। किन्तु सटे हुए परदों को उखाड़ने का एक अच्छा तरीक़ा है। ऐसे लिफ़ाफ़ों को ज़रा सा गरम कर दीजिए वे अपने आप बिना दिक़्क़त के खुल पड़ेंगे।

* * *

शीशे पर लिखना

शीशा इतना चिकना होता है कि उस पर लिखना असम्भव है। यही हालत है पॉलिश किए हुए धातुओं की। किन्तु एक से दो हिस्सा वाटर ग्लास (Water glass or Silicate of soda) में दस हिस्सा तरल इण्डिया इङ्क (Liquid India Ink) मिला देने से इन पदार्थों पर लिखने की अच्छी काली रोशनाई बन जाती है। शीशे या धातु को अच्छी तरह साफ़ कर डालिए और लोहे की क़लम से लिखिए।

* * *

सुन्दरता की प्रतियोगिता

अमेरिका में संसार के सभी देशों की सुन्दर स्त्रियों की प्रतियोगिता होने वाली है। उसमें संसार की चुनी हुई सुन्दरियाँ शामिल होने के लिए जा रही हैं।

* * *

केश झाड़ने की मैशीन

सिर का केश कटा लेने के बाद उसके कुछ टुकड़े बदन पर पड़े रह जाते हैं। हम लोग केश कटाने के बाद तुरन्त स्नान कर शरीर पर पड़े हुए सारे केश के टुकड़ों

केश झाड़ने की मैशीन जो कटे हुए बालों को सोख लेती है

को साफ़ कर दिया करते हैं, किन्तु पाश्चात्य देशों में, जहाँ के लोग महीने में शायद ही एक बार स्नान करते हैं, और जिन्हें फ़ैशन को दुरुस्त रखने के लिए प्रायः हर हफ़्ते बाल कटवाना पड़ता है, एक ऐसी मैशीन की आवश्यकता थी जो उनको इस कठिनता को दूर कर सके, क्योंकि वहाँ के लोग कपड़ा पहने हुए ही बाल कटवाते हैं और जब बाल कपड़ों में समा जाते हैं तो स्वभावतः बड़ी उलझन होती है। अब बाल साफ़ करने की एक मैशीन (Vacuum) बनी है जो बिजली से चलती है और कटे हुए बाल के छोटे से छोटे टुकड़े को सोख कर अपने थैले में भर लेती है।

*　　*　　*

विचित्र कैमरा

बर्लिन के डॉ० एलसनर ने एक ऐसा कैमरा बनाया है, जिससे पेट के भीतर का फ़ोटो खींचा जा सकता है। एक लम्बा नल आदमी के मुँह के राह पेट तक पहुँचा दिया जाता है। नल के एक सिरे पर बिजली की रोशनी और पैरिस्कोप का शीशा होता है और उसके दूसरे सिरे पर फ़ोटो खींचने का कैमरा। इसका लेन्स इतना बड़ा होता है कि उसमें शीशे पर पड़ा हुआ पेट के भीतरी भाग का फ़ोटो आ सके। पेट के भीतरी अवयवों के सात चित्र बड़ी शीघ्रता से खींचे जा सकते हैं। इस प्रकार पेट के भीतर के रोग का पूरा हाल इस नए यन्त्र द्वारा बड़ी सरलता से जाना जा सकता है।

*　　*　　*

जहाज़ पर समाचार-पत्र

'जेरविसबे' नामक जहाज़ पर, जो ऑस्ट्रेलिया से इङ्गलैण्ड आया है, एक दैनिक समाचार-पत्र छपता और यात्रियों के हाथ बेच दिया जाता था। यह पहला ही जहाज़ है, जिस पर दैनिक समाचार-पत्र छपा करता था। इस जहाज़ पर सिडनी (ऑस्ट्रेलिया का एक मुख्य शहर) से प्रति दिन बेतार के तार द्वारा समाचार प्राप्त हुआ करता था। हम देखते हैं, कुछ दिनों में जल-यात्री स्थल-यात्रियों सा ही समाचार-पत्र-पाठ का आनन्द लेने लगेंगे।

*　　*　　*

तैरना सिखाने की मैशीन

एक जर्मन शिक्षक का कहना है कि जब तक मनुष्य के हृदय में डूबने का भय बना रहता है, तब तक न वह जल्दी तैरना सीखता है और न अच्छा तैराक ही बन

तैरना सिखाने वाली मैशीन

सकता है। इसलिए उसने एक मैशीन बनाई है, जिसमें एक कमरबन्द रहता है। इसे कमर में बाँध कर नव॰

सिखुआ तैराक पानी में कूद पड़ता है। कमरबन्द मैशीन के साथ बँधे रहने के कारण तैराक के डूबने का कुछ भी भय नहीं रहता। इस मैशीन से तैरना सीख लेने के बाद तैराक को पानी में स्वतन्त्रता-पूर्वक तैरने के लिए छोड़ दिया जाता है। वह देखता है कि जिस काम को सीखने में उसे महीनों लगाना पड़ता, उसे वह कुछ ही दिनों में सीख गया है।

* * *

व्याकरण सिखाने का नया तरीक़ा

इस देश की शिक्षा-पद्धति उन्नतिशील देशों की शिक्षा-पद्धति से सर्वथा भिन्न है। यहाँ के विद्यार्थी जिस विषय को सीखने से दिल चुराते हैं, उसे छड़ी के हाथ सिखलाया जाता है, किन्तु पाश्चात्य देशों में प्रत्येक विषय इस प्रकार मनोरञ्जक ढङ्ग से विद्यार्थियों के सामने रक्खे जाते हैं कि उसे बालक खेल ही समझ कर सीख लेते हैं। व्याकरण ही को लीजिए। व्याकरण का हर एक नियम रटने के लिए यहाँ के बालक बाधित किए जाते हैं। किन्तु पाश्चात्य देशों में इन्हें खेल ही द्वारा समझाया और सिखाया जाता है। चित्र में देखिए, कई लड़के खड़े या बैठे हैं। उनमें प्रत्येक के सीने पर एक-एक Part of Speech या व्याकरण के अन्य नामों का तख़्ता लगा है। एक श्रेणी के बालकों का नाम जैसे बालक आसानी से स्मरण कर लेते हैं, उसी प्रकार व्याकरण के उन नामों को भी वे बात की बात में याद कर लेते हैं। बालकों में कोई मास्टर नाउन (Noun) बनता है, कोई मास्टर वर्ब; कोई मास्टर सेन्टेन्स और कोई मास्टर फ़्रेज़ या क्लॉज़। कहिए, व्याकरण सिखाने की अभिनव प्रथा कैसी है?

व्याकरण सिखाने का नया तरीक़ा

भारतवर्ष की शिक्षा-पद्धति बालकों के लिए भार-स्वरूप है, किन्तु अन्य देशों की शिक्षा-पद्धति वहाँ के विद्यार्थियों के लिए मनोरञ्जन। इस देश की शिक्षा की बागडोर जिन लोगों के हाथ में है, क्या वे न्यू-यार्क के 'फ़ॉरेस्ट-हिल्स' स्कूल से कुछ सबक़ सीखेंगे?

दयनीय दशा

[रचयिता—श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश']

बिगड़ी बनाते थे विपत्तियों की प्रति पल, अपनी जो बिगड़ी तो हम न बनाते हैं।
उपदेश धर्म का धुरीण बने देते रहे, आज धर्म-भाव को न अपना जनाते हैं॥
मानियों का मान मारते थे सदा मान रख, हम मूढ़-मानवों को आज भी मनाते हैं।
हम विश्व-प्रेमी बने विश्व को मिलाते रहे, हाय! हम अब न अछूत अपनाते हैं॥
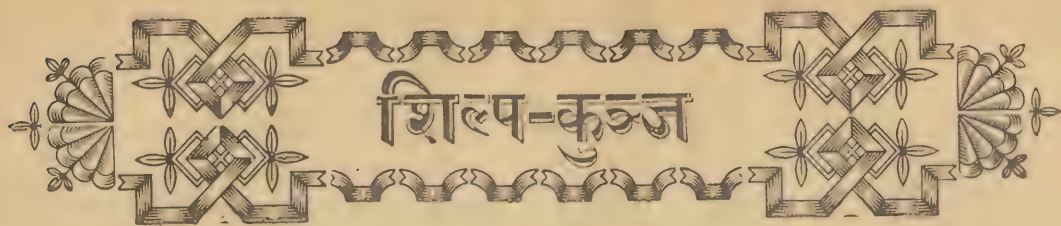
[ले० श्रीमती शकुन्तला देवी जी गुप्ता 'हिन्दी-प्रभाकर']

गुलुबन्द

आवश्यक वस्तएँ—२ सलाई लोहे की, ५ औंस बारीक ऊन।

आरम्भ—७५ फन्दे चढ़ाओ ४ लाइन सीधी बुनो।

५ वीं लाइन, ३ उलटे ९ सीधे।

छठी लाइन—९ उलटे ३ सीधे। इस प्रकार ४ बार और बुनो। फिर ४ लाइन सीधी। इन १४ लाइनों को २४ बार और बुनो। फिर बन्द कर दो।

किनारे की झालर—३ इञ्च चौड़े गत्ते पर ऊन लपेट लो, फिर गत्ते की ओर से ऊन काट दो। फिर ३-३ टुकड़े लेकर किनारे के सूराख में डाल कर गाँठ दे दो। इसी प्रकार १-१ फन्दा छोड़ कर गाँठें बाँधते जाओ। गाँठें दोनों ओर बाँधनी होंगी, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

गुलूबन्द का नमूना

भारतवर्ष और तलाक़

[ले० साहित्याचार्य श्री० चन्द्रशेखर जी शास्त्री]

"तलाक़" का क़ानून हिन्दुओं के लिए उपयोगी है कि नहीं, इसी प्रश्न पर कुछ दिनों से विचार हो रहा है। इधर-उधर पत्रों में भी इसके अनुकूल-प्रतिकूल लेख निकलते हैं। दलीलें दी जाती हैं। प्रतिपक्षी की कमज़ोरियाँ दिखाई जाती हैं। यह तो निर्णय का तरीक़ा नहीं है। दलीलें तो मिलती रहेंगी, चाहिए सिर्फ़ बुद्धि। एक की ख़तम होगी, दूसरा अपनी बुद्धि काम में लाने लगेगा और दोनों दल के लोग समझेंगे कि हमारी इस दलील का उत्तर नहीं हुआ। कभी कोई दल अपनी जीत का डङ्का पीटेगा, कभी कोई दल। क्या किसी निर्णय पर पहुँचने का यही तरीक़ा है?

तलाक़ के विरोधी कहते हैं कि इस क़ानून से सबसे बड़ी हानि यह होगी कि स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी हो जायँगी, वे पति परित्याग के मैदान में आकर खड़ी हो जायँगी। सचमुच यह दुख की बात होगी। पर क्या ऐसा होगा? सम्भव तो नहीं मालूम पड़ता। जिस देश में तलाक़ का क़ानून है, क्या वहाँ की सब स्त्रियों ने पति छोड़ दिए हैं। यदि नहीं तो यहीं यह ग़ज़ब कैसे हो जायगा। यदि कोई समझे कि यहाँ अवश्य ही सब स्त्रियाँ पति छोड़ देंगी, भले ही दूसरे देशों में न छोड़ती हों, तब तो ऐसा समझने वाले को तलाक़ का क़ानून बनवाने का पक्षपाती होना चाहिए, न कि विरोधी। क्योंकि उसकी समझ के अनुसार सब स्त्रियाँ बड़ी बुरी परिस्थिति में रहती हैं, ऐसी बुरी कि उससे शीघ्र ही त्राण पाना चाहती हैं, पर करें क्या? कोई उपाय नहीं, कोई चारा नहीं, समाज में कहीं स्थान नहीं। बेचारी लाचार हैं, पड़ी हैं, सड़ रही हैं। जिस दिन तलाक़ का क़ानून बन जायगा, उस दिन उनको राह मिल जायगी और वे उस राह से भाग निकलेंगी, जैसे खूँटा टूटने पर गाय।

सुख से जगह छोड़ी नहीं जाती, उस आदमी से—इस स्थान से—प्राणी स्वभावतः प्रेम करने लगते हैं, जिससे उन्हें सुख पहुँचता है, जो स्थान उन्हें सुखकर मालूम होता है। उस आदमी से यदि सम्बन्ध टूटता है तो उसे दुःख होता है, यदि कोई वह सम्बन्ध तोड़ता है तो वह दुश्मन बन जाता है—उसकी बुराई करने पर हम उतारू हो जाते हैं। यही मनुष्यों का स्वभाव है। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि जिन स्त्रियों को सुख है वे तलाक़ के क़ानून का स्वागत करेंगी और अपने पति से—उस पति से, जो सुख देता है; अपने उस घर से, जहाँ वे सुख उठा रही हैं—अलग होना चाहेंगी। अजी जो ऐसी स्त्रियों के सामने अलग होने का नाम लेगा वे उसका सिर खा जायँगी। तलाक़ का क़ानून आप पास करते रहिए, वे अपनी जगह पर अड़ी रहेंगी। उन्हें ज़रूरत ही क्या है? तलाक़ का क़ानून तो कोई बाज़ार नहीं है जिसे देखने के लिए सब स्त्रियाँ ललचाएँगी। वह तो एक कड़वी दवा है जो एक बड़े रोग से छुटकारा पाने के लिए थोड़ा दुख उठाकर इस्तेमाल की जाती है। दवा तो सब नहीं पीते। जिन्हें ज़रूरत भी रहती है, डॉक्टर-वैद्य जिनके लिए दवा पीना उचित समझते हैं, वे भी तब तक नहीं पीते, जब तक उनको यह विश्वास नहीं हो जाता कि मेरा यह रोग अब किसी तरह न छूटेगा। इसकी दवा करनी ही होगी। अब दवा न करने से बड़ी हानि होगी। यही दशा तलाक़ के क़ानून की भी होगी। जिन स्त्रियों को दुःख होगा वे ही तलाक़ की शरण लेंगी। अतएव हम लोगों को इसके लिए भयभीत न होना चाहिए।

वैद्य को सब रोगों की दवा रखनी चाहिए। रोग-विशेष को बुरा कहते भय मालूम होता है। क्योंकि रोग तो सभी बुरे होते हैं। पर मेरा मतलब उन रोगों से है जो बुरे कामों के फल-स्वरूप होते हैं; जो रोग समाज में घृणित समझे जाते हैं। मान लीजिए, किसी को बहुत बुरा रोग हो गया है, उसने अपने विकट दुराचार के दण्ड के रूप में वह रोग पाया है। पर वह रोगी तो है। वैद्य के यहाँ जाने और उससे दवा पाने का हक़दार तो है। वह दुःखी तो है। मनुष्य का—हृदयवान् मनुष्य का

दया-पात्र तो है। उसे दवा तो मिलनी ही चाहिए। वैद्य को समझना चाहिए कि वह वैद्य है, न्यायाधीश नहीं। किसी ने बुरे काम किए हैं, इसलिए वह बुरे रोग का शिकार हुआ है, पर वैद्य को तो उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए। उसे तो उस दुराचारी व्यक्ति को दण्ड देने का अधिकार नहीं है। वह केवल वैद्य है, वह रोग की दवा दे सकता है। वह मनुष्य है और हृदय रखने वाला मनुष्य है, वह उस दुखी रोगी पर दया दिखा सकता है। जिस वैद्य के यहाँ सब रोगों की दवा नहीं, वह अच्छा वैद्य कैसे समझा जा सकता है। वह चिकित्सा-पद्धति क्या अपना महत्व प्रमाणित कर सकती है, जिसमें सब प्रकार के रोगों की दवा न हो। जी हाँ, सभी चिकित्सा-पद्धतियों को गरमी-सुज़ाक आदि घृणित रोगों की भी दवा बतलानी होगी, सभी वैद्यों को इन रोगों तक की दवा रखनी होगी। क्योंकि वह है चिकित्सा और ये हैं वैद्य।

इसी प्रकार समाज के श्रेष्ठ सज्जनों का भी तो यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने साथियों के सुख-स्वाच्छन्द्य का विधान करें। उनके दुःखों को दूर करें। दुर्बलों को बलवान् बनावें; रोगियों को नीरोग बनावें; अज्ञानियों को ज्ञानी बनावें और मूर्खों को विद्वान् बनावें। समाज ने इन सब बातों का प्रबन्ध किया भी है। उसने अपनी विद्या और शक्ति के अनुसार जीवन की प्रत्येक कठिनाई का सामना करने का उपाय निश्चय किया है और उसके निश्चित किए उपायों में से अनेक उपाय काम में भी लाए जाते हैं। अब प्रश्न होता है कि वैसी स्त्रियों के लिए जो हृदयहीन, दुराचारी पति के द्वारा पीड़ित हो रही हैं, समाज ने कौन सा उपाय बतलाया है? पारिवारिक बड़ी-बूढ़ी कही जाने वाली स्त्रियों के उत्पीड़नों की जो स्त्रियाँ शिकार बनी हुई हैं, उनकी रक्षा के लिए समाज ने कौन सा मार्ग निश्चित किया है? क्या समाज को इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देना चाहिए। समाज के सुखियों का तो यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे इसका उपाय बतलावें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो यह उनकी हृदयहीनता कही जायगी, उनकी कमज़ोरी समझी जायगी।

यह सच है कि सभी स्त्रियाँ उत्पीड़ित नहीं हैं, सभी की रक्षा की ज़रूरत नहीं है। पर कुछ भी तो हैं, उनकी संख्या थोड़ी ही सही, पर वे हैं तो उनकी रक्षा तो होनी ही चाहिए। रोग भी तो बहुत कम आदमियों को होते हैं। सभी मनुष्य रोगी नहीं हैं। पर इसका निश्चय नहीं है कि कौन कब रोगी हो जायगा। यही बात तलाक़ के क़ानून के लिए भी समझनी चाहिए। जो स्त्रियाँ पीड़ित हैं, उनके लिए तो कोई उपाय चाहिए या उन्हें भाग्य पर बिलखने के लिए योंही छोड़ देना चाहिए? यह तो उचित न होगा। यह तो समाज के महत्व की बात न होगी। आज उन उत्पीड़िताओं की संख्या कम है, पर कल वह बढ़ जा सकती है। आग बुझाने का उपाय तो समय से पहले ही किया जाता है। बड़े आदमियों के महलों में तो रोज़ आग नहीं लगा करती, कई कोठियाँ तो ऐसी हैं जिनमें कभी आग लगी ही नहीं। फिर उनमें आग बुझाने के यन्त्र क्यों लगे रहते हैं? टङ्कियों में जल क्यों भरा रहता है? इसीलिए न कि समय पड़ने पर काम आवे। इसी प्रकार स्त्रियों के लिए एक उपाय बना दिया जाय और उस उपाय का ज्ञान उन्हें करा दिया जाय तो इसमें हानि क्या है?

आदर उस वस्तु का होता है, जिसका दाम अधिक हो, जिसके ख़रीदार बहुत हों। उस वस्तु की रक्षा बड़े यत्न से की जाती है, जिसके लेने वाले अधिक होते हैं। मनुष्यों के सम्बन्ध की भी कुछ ऐसे ही बातें हैं। जो धनी है, प्रतिष्ठित है, विद्वान् है, नामी है, उसका आदर होता है। जिससे अपना मतलब निकलता है उसका भी आदर किया जाता है और जिसके विषय में यह निश्चय रहता है कि हमसे निरादृत होने पर यह दूसरी जगह चला जायगा उसका भी आदर होता है। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें हैं, जिनसे मनुष्य वस्तुओं तथा मनुष्यों का आदर करता है। खेद है कि बहुत ढूँढ़ने पर भी तुलना के लिए कोई उत्तम उदाहरण न मिल सका। दुराचारी मनुष्य अपनी विवाहिता की अपेक्षा रखेली का अधिक आदर करता है। इन आदर के कारणों में प्रधान कारण यह रहता है कि उस मनुष्य को इस बात का ज्ञान है कि यदि मेरा व्यवहार बुरा मालूम हुआ तो यह मेरे यहाँ से किसी दूसरे के पास चली जायगी। अतएव उसके लिए वह विशेष सावधान रहता है। पर विवाहिता की कोई दूसरी गति नहीं है। वह कहीं आ-जा नहीं सकती। वह घर से बाहर निकली नहीं कि

पतिता हुई, दुनिया भर के दोष उसके सिर सवार हुए। सब कलङ्कों की कालिमा उसके मुँह पुत गई। यह बात पति महोदय को मालूम है, अतएव वे विवाहिता की उपेक्षा किया करते हैं। विवाहिताओं के लिए भी यदि कोई मार्ग निकल आवेगा तो सम्भव है कि कुछ दुराचारी सँभलें, उनके होश ठिकाने आ जायँ। ऐसे पति के लिए भय की आवश्यकता है। विवाहिता के हाथ में कोई अधिकार होना चाहिए, जिसे वे उस समय काम में ला सकें, जब कि उनके पति महोदय कुपथगामी हों। समाज इसके लिए क्या व्यवस्था करता है? समाज के मुखिया इस सम्बन्ध में क्या सोचते हैं?

तलाक़ के क़ानून से हमारा कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है और न किसी कारण-विशेष से आकर्षण ही है। पर वैसी स्त्रियों की रक्षा का कोई उपाय तो चाहिए? पुरुष तो शक्तिमान् हैं, उनके हाथ थैली है, प्रबन्ध है, वे परिवार के सञ्चालक हैं, वे अपने सुख का उपाय कर सकते हैं और करते भी हैं। पर स्त्रियों के लिए तो ऐसी कोई बात नहीं है, उनके हाथों तो कोई अधिकार नहीं है। उनका जो कुछ मान है, जो कुछ प्रतिष्ठा या अधिकार है वह सब पतिदेव की कृपा पर है। जब तक वह कृपा है तब तक सब कुछ है, जिस दिन वह कृपा हटी उस दिन सब कुछ गया। कैसा असहाय जीवन है, कितना दुर्बल जीवन है! क्या इसके लिए कुछ उपाय न होना चाहिए? समाज के मुखियों को इसके सम्बन्ध में कुछ सोचना न चाहिए?

अपने व्यक्तियों की ऐसी अवस्था देख कर भी जो समाज इसके लिए कोई उपाय न करे, जिस समाज के मुखिया इन दुःखिताओं के दुःख से दुःखी न हो जायँ और उनके दुःखों के दूर करने में संलग्न न हो जायँ, कहना होगा कि वह समाज कमज़ोर है, वह अपने व्यक्तियों की रक्षा करने की योग्यता नहीं रखता। उस समाज के मुखिया अयोग्य हैं, स्वार्थी हैं, और उन्हें अपने कर्त्तव्य का ध्यान नहीं है। वे आलसी हैं या कायर हैं। दुःखी चिल्ला रहा है और वैद्य सुख की नींद सो रहा है, कैसा वीभत्स दृश्य है? प्यासा तड़प रहा है और आप कहते हैं कि आज निर्जला एकादशी है। आपके हृदय भी है कि नहीं? आपके माथे में बुद्धि नाम की कोई वस्तु है कि नहीं?

कई मित्र संस्कृत के श्लोक उद्धृत करके हम लोगों को समझाना चाहते हैं कि ऐसा करना बुरा है। कोई बात नहीं। संस्कृत के श्लोक उद्धृत किए जा सकते हैं, वे अनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी। वे नए भी हो सकते हैं और पुराने भी, पर उनसे तो किसी का दुःख दूर नहीं हो सकता। यदि होता तो पति महोदय या घर के अन्य व्यक्ति ही किसी को कष्ट क्यों देते? मैं तो ऐसा श्लोक नहीं जानता जो किसी को दुराचार करने का उपदेश देता हो, जो किसी को पीड़ा देने की सलाह देता हो। श्लोक तो उत्तम काम करने का उपदेश देते हैं, फिर ये बुरे काम क्यों होते हैं, क्यों किए जाते हैं? वे श्लोक उनका क्या कर लेते हैं? श्लोक पढ़ने वाले भी जो न करने का वह सब करते हैं। उन पर श्लोक को नाराज़ होते तो किसी ने नहीं देखा और न किसी ने सुना। फिर उन श्लोकों से क्या मतलब? काम की बात में श्लोक क्यों घसीटे जायँ?

श्लोकों में तो स्त्री-पुरुष दोनों के कर्तव्य बतलाए गए हैं। वे कर्तव्य दोनों को ही पालने चाहिएँ। पर पति महोदय तो उनका पालन करते नहीं, फिर स्त्रियों को ही कर्तव्य-पालन के लिए क्यों विवश किया जाता है? क्या स्त्रियों ही का धर्म है, पुरुषों का नहीं? फिर पुरुष क्यों नहीं समझाए जाते? उन्हें क्यों नहीं कहा जाता कि दुराचार बुरा है, विवाहिता का अपमान अधर्म है? पति छोड़ने वाली स्त्री पापिनी है, पतिता है। फिर स्त्री छोड़ने वाला पुरुष पापी क्यों नहीं है, पतित क्यों नहीं है? जिस समाज ने वैसी स्त्रियों के लिए दण्ड-व्यवस्था क़ायम की है, उस समाज ने वैसे पुरुषों के लिए कौन सी दण्ड-व्यवस्था की है? पहले न सही, इसी समय वह क्या कर रहा है? क्या उसको समझ से इस बात की ज़रूरत नहीं है?

दुःखी मनुष्य के हृदय में इतना बल नहीं होता, उसके मन में इतनी धीरता नहीं होती कि वह धर्मोपदेश सुने, वह श्लोक सुने। वह चाहता है ऐसी दवा, जिससे उसका दुःख छूटे या कम हो। फिर स्वस्थ होने पर आप जितनी दलीलें सुनावें वह सुनने को तैयार है, जो धर्मोपदेश दें वह सुनने के लिए उत्साहवान् है। आप स्वयं सोचें। कोई पीड़ा से छटपटा रहा है और आप उसे कर्म-सिद्धान्त की व्याख्या सुना रहे हैं। वह आपको

पागल समझेगा, और समझेगा अपने दुःखी हृदय को दुःख पहुँचाने वाला शरीरधारी पत्थर ! उसकी समझ की आप निन्दा कर सकते हैं, पर वह है स्वाभाविक ! तलाक़-क़ानून के पक्षपातियों का भी यही कहना है । समाज के कर्तव्यज्ञानहीन, पतित मनुष्यों के द्वारा स्त्रियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उनसे उनकी रक्षा का उपाय कीजिए । दुःखिताओं को दुःख से उबारिए, क्योंकि आप समाज के मुखिया हैं । आपका यह कर्तव्य है और उज्ज्वल कर्तव्य है कि आप समाज की छोटी श्रेणी के व्यक्तियों के लिए सुख का उपाय करें । उन्हें दुःख की आग से झुलसने से बचावें । यह काम तलाक़ के क़ानून से हो या और किसी उपाय से हो । वह उपाय आपको करना ही होगा । यदि आप समाज की रक्षा चाहते हैं, यदि आप अपने कर्तव्य-पालन की आत्मतृप्ति का आनन्द अनुभव करना चाहते हैं, तो आपको यह काम करना ही होगा । एक क्षण की भी उपेक्षा आत्मघातक हो रही है । यह बात आपको समझ लेनी चाहिए । इस उपाय से स्त्रियों का दुःख जितना दूर होगा वह तो होगा ही, सबसे बड़ा लाभ इसका यह होगा कि पुरुष-वर्ग का सुधार होगा । उसका औरङ्गज़ेबी दिमाग़ कुछ ठण्ढा होगा, उसके निरङ्कुश शासन में एक मज़बूत धक्का पहुँचेगा, उसकी आँखें खुलेंगी । उसका दिल काँप जायगा । विशेष कर इसीलिए समाज के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया है । क्या आपकी विवेचना, आपकी ईमानदारी इस आवश्यकता को क़बूल न करेगी । कहिए, क्या विचार है ?

समय की दुहाई देना व्यर्थ है । जो बातें पहले न थीं वे आज क्यों की जायँ—कई गम्भीर विचार के शास्त्रानुरागी सज्जन यह प्रश्न किया करते हैं । उनके लिए इतना ही कहना काफ़ी है कि पहले रामचन्द्र थे, आज वे नहीं हैं । रामचन्द्र की स्त्री हरी गई और उसका बदला लेने के लिए उन्होंने उस वंश का ही नाश कर दिया, जिस वंश के एक मनुष्य ने उनकी स्त्री हरी थी । पर आज हमारी आँखों के सामने हमारी स्त्रियाँ हरी जाती हैं और हम चुप रहते हैं । रामचन्द्र का साथ जङ्गली बानरों तक ने दिया था और आज हमारा साथ हमारे पड़ोसी तक नहीं देते ! हममें बल नहीं । पुलिस की सहायता में ही हमारा क्रोध और कर्तव्य समाप्त हो जाता है । रामचन्द्र ने सीता की परीक्षा करके उन्हें अपनी महारानी बनाया और आज वैसी स्त्रियों की परीक्षा का कोई साधन ही हमारे पास नहीं है । फिर पुराने समय की बात क्यों छेड़ी जाती है ? समय सभी के लिए बदलता है । स्त्री के रहने पर भी बूढ़ी उमर में शादी करने वाले पुरुष पुराने समय की दुहाई दें, इससे बढ़कर आश्चर्य की कोई बात हो सकती है ? यह तो निर्लज्जता की सीमा है । रामचन्द्र ने सीता का निर्वासन किया; और उन्होंने वैसा किया अपनी समझ के अनुसार विवश होकर । पर आजीवन वे ब्रह्मचारी बने रहे । यज्ञ के समय स्त्री की ज़रूरत पड़ी, उन्होंने सीता की सोने की प्रतिमा बनाई और इस प्रकार उन्होंने सीता के सम्बन्ध के अपने उच्च प्रेम का परिचय दिया । पर क्या आज भी पुरुष-समाज की ओर से स्त्रियों के लिए वैसा ही आदर और अनुराग प्रकट किया जाता है ? यदि नहीं, तो पुराने समय के राग अलापने का क्या अर्थ है ?

अजी समय बदल गया है । न वह समय है और न आप ही वह हैं । स्त्रियाँ ही वैसी कैसे रह सकती हैं ? सभी बदल गया है । नए नियम बनते जाते हैं । बहुत से काम बिना नियम बने ही होते हैं और उनके लिए कोई चूँ तक नहीं करता । ऐसी दशा में समय का ढोंग तो व्यर्थ ही जान पड़ता है । एक मित्र कहते हैं कि आज के बच्चे गुड़ पर ख़ुश नहीं होते, उन्हें गनेश-भण्डार का रसगुल्ला चाहिए । यदि समय है तो सभी के लिए ! आप उसे नहीं मानते तो मुझे ही आप उसे मानने के लिए क्यों कहते हैं ? कह भी नहीं सकते । यदि समय की अवहेलना करके पुरुष-समाज पाप-भागी नहीं हो सकता तो स्त्रियाँ ही पापिनी क्यों हो जायँगी—यही रहस्य कोई समझा देता !

[ले० अध्यापक श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

प्रिय रमेश,

तुम्हारा प्रेम-पत्र प्राप्त हुआ। समाज की वर्त्तमान स्थिति देख कर तुम्हारे नेत्रों से रक्ताश्रु प्रवाहित होने लगते हैं, हृदय में अग्नि धधक उठती है—यह ठीक है, ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। पर मेरे भाई! ऐसा करने से क्या होगा? रोने से, अपने हृदय को जलाने से, कुछ होने का नहीं। रोने से—हृदय जलाने से—समाज का कुछ भी कल्याण नहीं होगा, उसका कल्याण तो होगा उसका इलाज करने से। समाज का सबसे बड़ा रोग है उसकी बुज़दिली। आज तक इस विषय पर कितने लेख नहीं लिखे गए, कितने भाषण नहीं दिए गए। लेख लिखते-लिखते लेखकों की लेखनियाँ घिस गईं; भाषण करते-करते भाषण-कर्ताओं की जिह्वाएँ थक गईं, पर समाज की तन्द्रा भङ्ग नहीं हुई, उसकी बुज़दिली पर आघात नहीं हुआ। यही हमारे लिए निराशा का सबसे बड़ा स्थल है, जिसे देख कर हमारी आत्मा काँप उठती है, निरुत्साह के आवेग से हमारा शरीर अवसन्न हो जाता है, और बुद्धि जैसे कुण्ठित होकर व्यर्थ हो जाती है। समाज ने बुज़दिली को एक अमूल्य और अप्राप्त निधि के समान अपनी छाती से चिपटा रक्खा है! कौन नहीं जानता कि उसकी यही बुज़दिली किस प्रकार उसकी जीवन-शक्ति का शोषण कर रही है। किससे यह बात छिपी हुई है कि उसकी यही बुज़दिली, तिल-तिल करके उसका सर्वनाश कर रही है। पर समाज आँखें रहते हुए भी, यह सब देख रहा है। उसकी ख़ुमारी दूर होने के कुछ भी आसार नज़र नहीं आते, यह देख कर किस सहृदय का हृदय न रो उठेगा? यह देख कर किस समाज-सेवी की आत्मा मारे भय के उद्विग्न न हो उठेगी? इस स्थल पर सहसा एक पुरानी घटना की स्मृति मेरे हृदय को कोंचने लगती है। प्रसङ्गवशात् मैं उस घटना का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। ऐसा करने से अवश्य ही बहुत स्थल घिरेगा—बहुत समय नष्ट होगा। पर चिन्ता नहीं, यह घटना समाज की आँखों में उँगली डाल कर उसे उसकी बुज़दिली का परिचय देगी। इस उल्लेख को देख कर जिनकी छाती में हृदय है, जिनके मस्तिष्क में बुद्धि है, उनके नेत्रों के सामने भावों की भयङ्कर आँधी उठ खड़ी होगी, वे हतबुद्धि हो, सिर थाम कर बैठ जाएँगे, और उनकी जिह्वा सहसा 'उफ़! उफ़!' कहने लगेगी।

बात उन दिनों की याद है, जिन दिनों मैं मैट्रिक में पढ़ता था। कक्षा में मेरे एक प्रिय साथी थे—श्री० अब्दुलक़ादिर। उनसे मेरी गहरी मित्रता हो गई थी—अब भी है। पिछले दिनों जब तुम यहाँ आए थे, तब मैंने तुमसे भी उन्हें परिचित करा दिया था। जानते हो मेरे ये मित्र महाशय कौन हैं? आओ, आज मैं तुम्हें इनकी जन्म-कथा सुनाऊँ। पर भाई! सुन कर उछल न उठना, अनाप-शनाप न बकने लगना; क्योंकि मैं जानता हूँ कि क्षणिक जोश में तुम पागल हो उठते हो। केवल शान्त-हृदय से समाज की बुज़दिली पर विचार करना। समाज की यही बुज़दिली हमारा लक्ष्य है, हमें इसी

पिशाचिनी बुज़दिली का संहार करना है, यही ऐसी माया है, जो अपने कठोर पाश में हमारे मन, प्राण, बुद्धि, उत्साह और स्वाभिमान को जकड़े हुए है। हमें इसी कठोर पाश के सुदृढ़ तन्तुओं को—जो हमें उठने नहीं देते, हिलने नहीं देते, बोलने नहीं देते—छिन्न-भिन्न करना है। अस्तु—

अब्दुलक़ादिर कक्षा के सब विद्यार्थियों में विद्या-बुद्धि के विचार से श्रेष्ठ थे। प्रायः सभी विद्यार्थी उनसे किसी न किसी विषय में थोड़ी-बहुत सहायता लिया करते थे। मैं आरम्भ से ही गणित में कमज़ोर रहा हूँ। इच्छा तो नहीं थी कि किसी से साहाय्य-याचना करूँ, पर अन्त में विवश हो, मुझे अब्दुलक़ादिर की शरण लेनी ही पड़ी। क्रमशः हम दोनों में गम्भीर सौहार्द्र-भाव उत्पन्न हो गया—जो अद्यापि चला जा रहा है। अब्दुल-क़ादिर बहुधा मेरे यहाँ आया करते थे, मैं उनके यहाँ आया करता था। बात यह कि हम दोनों एक ही मुहल्ले में रहते थे, अतः एक दूसरे के यहाँ आने-जाने में विशेष असुविधा न होती थी। जब मैं अब्दुलक़ादिर के यहाँ जाता तो एक विशेष बात देखता था। उनका घर बिलकुल साफ़, लिपा-पुता पाता, जैसा कि किसी उच्च-जाति के हिन्दू का होना चाहिए। उनकी माँ को एक पवित्र हिन्दू-रमणी के सदृश देखता—उनमें इस्लाम की छाया भी न दिखाई देती। उस समय मैं इस विशेषता का कारण न समझ सका था—यही समझता था कि अब्दुलक़ादिर की माता को हिन्दू-संस्कृति से विशेष स्नेह है। इस धारणा ने भी मेरे और अब्दुलक़ादिर के स्नेह-सूत्र को अत्यधिक दृढ़ कर दिया था। परन्तु एक दिन सहसा यह धारणा व्यर्थ हो गई।

अब्दुलक़ादिर से मेरी गहरी मित्रता थी—वे मेरे यहाँ नित्य ही आया करते थे, अतः माता जी भी उन्हें पुत्र-दृष्टि से देखने लगीं। सत्य तो यह है कि उनके सदाचरण ने ही माता जी के हृदय को वात्सल्य भाव से विभोर कर दिया था। क्रमशः माता जी को अब्दुल-क़ादिर की माता से मिलने की इच्छा हुई। उन्होंने अब्दुलक़ादिर पर अपना विचार प्रगट कर दिया। दूसरे ही दिन अब्दुलक़ादिर की माता जी हमारे यहाँ आईं। माता जी ने उनका ख़ूब सम्मान किया, स्नेह-पूर्वक बातें कीं। प्रथम भेंट में ही उनमें परस्पर सख्य-भाव उत्पन्न हो गया। फिर तो माता जी जब इच्छा होती, तभी उन्हें बुला भेजतीं। इस आवागमन से उन दोनों में यथेष्ट प्रेम-भाव की अभिवृद्धि हो गई, दोनों हृदय खोल कर मिलने-जुलने लगीं। अब्दुलक़ादिर की माता की वेश-भूषा और बातचीत ने माता जी को विशेष प्रभावित किया, उनके हृदय में, अब्दुलक़ादिर की माता का पूर्ण परिचय प्राप्त करने की आकांक्षा उद्भूत हुई।

अन्ततः माता जी अपनी आकांक्षा को हृदय के कोने में छिपा न सकीं, जिज्ञासा के आवेग से वह उमड़ उठीं। उन्होंने अब्दुलक़ादिर की जननी से प्रश्न कर ही दिया—बहिन! तुम्हें देखने से मेरे हृदय में कौतूहल नाच उठता है, जिज्ञासा का तूफ़ान उठ खड़ा होता है। बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ! तुम मुस्लिम-रमणी हो, फिर भी तुममें मुस्लिम-सभ्यता की छाया दिखाई नहीं देती! तुम्हें देखकर कौन कहेगा कि तुम मुस्लिम रमणी हो? तुम्हें देखकर तो यही जान पड़ता है कि तुम हिन्दू-सभ्यता की साकार प्रतिमा हो! तुम पर हिन्दू-सभ्यता का यह गम्भीरतम प्रभाव कैसे पड़ा? तुम्हारी दृष्टि में हिन्दू-सभ्यता का क्या महत्व है? तुम हिन्दू-धर्म को कैसा समझती हो?

उस समय मैं अपने बैठकख़ाने में था, पुस्तक मेरे हाथ में थी, माता जी का प्रश्न सुन मैं सहसा चौंक उठा। अब्दुलक़ादिर की जननी को देखकर कभी-कभी मेरे हृदय में भी जिज्ञासापूर्ण कौतूहल की जाग्रति हो उठती थी। आज माता जी के उक्त प्रश्न सुन मेरे हृदय में एक शान्त हलचल हो उठी। मैंने आहिस्ते से सिर ऊपर उठाया और अब्दुलक़ादिर की जननी की ओर देखा। उफ़! माता जी के प्रश्नों ने कदाचित् उनका हृदय बुरी तरह मसल दिया था, गम्भीर मर्म-वेदना की आँधी उनके मुखड़े को आवृत्त कर रही थी, कठिन ग्रीष्म उत्ताप से जैसे पुष्प मुरझा गया था, राहु के भीषण आक्रमण ने चन्द्रमा के उत्फुल्ल मुखड़े को जैसे निष्प्रभ कर दिया था! संसार की समस्त कातरता उनके नेत्रों में समा गई थी, और अश्रु-रूप में वहाँ से प्रवाहित होना चाहती थी। उदासी के उस दैन्यरूप को देख सरल-हृदया माता जी दया-विगलित हो उठीं। बोलीं—बहिन! यदि मेरे प्रश्नों से तुम्हारे कोमल प्राण आकुल होते हैं,

तो जाने दो, मुझे क्षमा करो, तुम्हारी सरल आत्मा को पीड़ित करना मेरा उद्देश्य नहीं है।

परन्तु अब्दुलक़ादिर की जननी भर्राए हुए कण्ठ-स्वर में बोलीं—नहीं बहिन! तुम्हारे प्रश्न मेरे हृदय को पीड़ित नहीं कर रहे हैं, ये प्रश्न ही ऐसे हैं, जिनके उत्तर में हिन्दू-समाज की बुज़दिली छिपी हुई है, जिनके उत्तर में अगणित हिन्दू-महिलाओं के दारुण पतन का रहस्य छिपा हुआ है। बहिन! तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर अङ्गारों के समान मेरे हृदय पर रक्खे हुए हैं, जिनका दाहक उत्ताप आज अनन्तकाल से मेरे ही क्या, अनन्त हिन्दू-नारियों के हृदय को, शरीर को, स्वाभिमान को और धर्म को तिल-तिल करके जलाता आ रहा है। परन्तु अभागा हिन्दू-समाज—मूर्ख हिन्दू-समाज आज तक इन धधकते हुए अङ्गारों को नहीं देख सका—इनकी भस्मकारी शक्ति का अनुभव नहीं कर सका। मेरी कहानी—जिसमें एक हिन्दू-महिला के हृदय के फफोले छिपे हुए हैं, जिसमें हिन्दू-महिलाओं की करुण-स्थिति का हाहाकार छिपा हुआ है—तुम्हारे सामने वस्तु-स्थिति प्रस्तुत कर देगी।

अब्दुलक़ादिर की जननी के शुभ्र, पर शुष्क मुखड़े पर उनकी छटपटाती हुई वेदना अश्रुरूप धारण कर प्रवाहित होने लगी। माता के मृदुल आश्वासनपूर्ण वाक्यों ने किसी भाँति उस करुण प्रवाह को शान्त किया। अब्दुलक़ादिर की जननी बोलीं—"बहिन! तुम सरल-हृदया हो, कुल-रमणी हो। तुम्हारे सामने अपने करुण-क्रन्दन की छटपटाती हुई कहानी सुनाने की इच्छा होती है, पर साथ ही हृदय इस भय से काँप उठता है कि कहीं मैं तुम्हारी पवित्र सहानुभूति से—तुम्हारे विशुद्ध स्नेह-सलिल से वञ्चित न हो जाऊँ! कारण यह कि नारी का स्वाभिमान ऐसा कोमल तन्तु होता है, जो घृणा के एक ही झटके से खण्ड-खण्ड कर दिया जा सकता है। नारी की पवित्रता घृणा के एक छींटे से ही इतनी अपवित्र हो जाती है कि अविरल अश्रुधारा भी आजीवन उस दाग़ को धोने में—उस अपवित्रता को धो बहाने में असमर्थ रहती है और मैं अभागिनी आज उसी भयाविनी घृणा के कठोर अभिशाप से न जाने कितने दिनों से, अपने जीवन को अश्रुमय बनाए हुए जीवन की साँसें गिन रही हूँ।

"बहिन! सुन कर चौंक मत उठना, आश्चर्य न करना! मैं प्रकृत मुस्लिम नारी नहीं हूँ, मेरी उत्पत्ति मुस्लिम-समाज में नहीं हुई है। मैं मुस्लिम-सभ्यता और मुस्लिम-धर्म पर भी अनुरक्त होकर मुस्लिम-समाज में नहीं गई हूँ। मुझे तो तुम्हारे समाज की सङ्कुचित वृत्ति ने—तुम्हारे समाज की उस बुज़दिली ने, जिसके कारण आज भारत का अस्तित्व भी सन्देह की सीमा में पहुँच चुका है—मुझे, मेरी इच्छा के विरुद्ध, मुझसे बिना ही पूछे, निर्दयता-पूर्वक मुस्लिम-समाज के अञ्चल में फेंक दिया है। तुम कहोगी कि मैं मुस्लिम नारी होकर तुम्हारे समाज को कोस रही हूँ, पर बहिन! मुझे क्षमा करना। यदि समाज तुम्हारे साथ भी मेरे ही जैसा व्यवहार करे, जिस प्रकार उसने मेरे हृदय में अग्नि-ज्वाला प्रज्वलित कर दी है, उसी प्रकार वह तुम्हारे हृदय को भी ज्वाला-पंण कर दे, तो मैं कहती हूँ—दावे के साथ कहती हूँ कि तुम भी मेरे ही समान रक्त के अश्रु बहाओगी और पानी पी-पीकर हिन्दू-समाज को कोसोगी। तुम्हारा समाज धर्म की चाहे जितनी दुहाई दे, अपनी श्रेष्ठता के जितने चाहे गीत गाए, पर निर्भ्रान्त सत्य तो यही है कि उसने नारी-जाति के साथ घोर शत्रु जैसी व्यवहार-व्यवस्था कर रक्खी है। तुम्हारे समाज में नारी का कोई पद नहीं है, उसके सम्मान की रक्षा का कोई भाव नहीं है। तुम्हारा समाज नारी के साथ औदार्यपूर्ण और स्नेहमय व्यवहार करना जानता ही नहीं। स्त्री की मर्यादा पर लाञ्छन का एक छोटा सा भी धब्बा लग जावे, फिर चाहे इसमें स्त्री का अपराध हो या न हो, समाज उसे इस प्रकार—इस निर्ममता-पूर्वक त्याग देगा कि कोई टूटी-फूटी जूती को भी न त्यागता होगा। वह बेचारी समाज से इस प्रकार निर्वासित कर दी जाएगी, जैसे समाज में उसका कोई अस्तित्व ही न था। मैं ही इसका एक जीता-जागता प्रमाण तुम्हारे सामने प्रस्तुत हूँ।

"बहिन! तुम्हारे ही समान मैं भी जैन-समाज की एक हत-भागिनी पुत्री हूँ। एक सम्भ्रान्त जैन-घर में मेरा जन्म हुआ था, मैं एक सम्भ्रान्त जैन-कुल की पतोहू थी। परन्तु कौन जानता था कि मैं एक दिन वैभवशाली माता-पिता की पुत्री और धनी-मानी सास-ससुर की वधू होने पर भी, एक तुच्छ मुसलमान का घर बसाऊँगी। उन दिनों मेरी आयु केवल सत्रह-अठारह वर्ष की थी। रूप के प्रकाश में यौवन मेरे साथ अठखेलियाँ कर

रहा था। मैंने देवता जैसा पति पाया था और पाया था उनका चन्द्र-किरण जैसा निर्मल एवं शीतल प्यार! सास-ससुर की भी मैं कुछ कम दुलारी नहीं थी। गर्व की आँधी मुझे वर में लिए उड़ती फिरती थी। मारे अभिमान के धरती पर मेरे पैर न पड़ते थे, मैं अबोध नारी अपने सौभाग्य पर इतराती हुई संसार को तुच्छ समझ रही थी। उफ़! ऐसे ही सुख के समय कहीं से वायु का एक तीव्र झोंका आया और वे प्रेम-पुष्प, जिनकी तीव्र गन्ध पाकर मैं आनन्द-विभोर रहती थी, धूल में जा गिरे और गिरते ही इधर-उधर बिखर गए। मैं उन्हें बटोरने के लिए जितनी ही उद्विग्न होती थी, जितनी ही छटपटाती थी, वायु का झोंका उन्हें मुझसे उतनी ही दूर उड़ाए लिए जाता था। आह मेरा दुर्भाग्य!

"मेरा निवास-स्थान एक साधारण क़स्बे में था। गाँव-खेड़ों में पर्दे का कठोर बन्धन बहुधा शिथिल रहता है। मैं भी पर्दे में नहीं रहती थी, बहुधा बाहर भी निकला करती थी। गाँव के तट को छूती हुई एक नदी बहती थी। नदी जाना और उसके स्वच्छ जल में स्नान करना मुझे बहुत भाता था, पुरा-पड़ौस की स्त्रियों के साथ घाट पर जाना मेरा नित्य-नियम बन गया था। एक दिन की बात सुनो। स्नान से निवृत्त हो, कपड़े-लत्ते धोकर मैं घर लौटना ही चाहती थी कि सहसा एक ओर से विपत्ति का बादल उठा और वज्र भयङ्कर ध्वनि करता हुआ मेरे सुख-सौभाग्य पर आ गिरा। मेरा भाग्य उसके आघात से शीशे की नाईं चूर-चूर हो गया। आज भी उसे देख कर मेरा कोमल हृदय जल उठता है, असह्य मर्म-वेदना उमड़ उठती है और मैं ज़ार-ज़ार रोने लगती हूँ, परन्तु उफ़! कोई मेरी उस हृदयाग्नि को देखने नहीं आता, मेरी वह मर्म-व्यथा किसी के कलेजे को करुणार्द्र नहीं करती, मेरी वह क्रन्दन-ध्वनि कोई नहीं सुनता! आह! कहीं समाज के हृदय में हृदय होता और उसमें केवल दो ही नेत्र होते!

"मैं अभी दो ही क़दम बढ़ी थी। स्वभावतः मैंने सिर ऊपर उठाया, एक युवक जो मुसलमान था, मुझे घूर रहा था। मैंने लज्जावश सिर नीचा कर लिया और आगे को पैर उठाया। परन्तु इतने में ही उस युवक ने झपट कर मेरी साधना के समान पवित्रता पर, मेरे जीवन के समान बहुमूल्य सतीत्व पर और हिमालय के समान गम्भीर एवं उच्च स्वाभिमान पर आक्रमण किया। उसने मुझे कसकर अपने कठोर बाहु-पाश में ग्रसित कर लिया। मेरी सम्पूर्ण मर्यादा धूलिसात् हो गई। बहिन! यही मेरा गुरु अपराध था, जिसके कारण समाज ने अपनी भयङ्कर उपेक्षा के भाव से मुझ दीना स्त्री को सदा के लिए—जीवन भर के लिए कुचल डाला! बहिन! यही मेरा वह गम्भीर अपराध था, जिसके प्रायश्चित्त के विधान से तुम्हारा धर्मशास्त्र शून्य है, और इसी कारण समाज में मेरे लिए कोई स्थान न रह गया। इसी अपराध के कारण मेरा यह लोक नष्ट हुआ और कदाचित् परलोक भी। हाय! इसी अपराध के कारण मेरा नैहर गया, पीहर गया, मेरा सर्वस्व छिन गया और मैं कहीं की न रही। बहिन! जब उस दिन की याद आती है, हृदय में वह भीषण दावाग्नि धधक उठती है, जिसके असह्य उत्ताप के कारण इस शरीर का एक-एक रोम जल उठता है। अस्तु—

"ज्योंही मुझे उस युवक ने स्पर्श किया, त्योंही मैं ज़ोर से चीख़ उठी। आह! यदि मुझमें शक्ति होती तो मैं उस युवक को अपनी कोपाग्नि में वहीं उसी क्षण भस्म कर देती। परन्तु समाज ने ऐसी व्यवस्था ही नहीं की, उसने स्त्रियों को कभी वह अवसर ही न दिया कि वे अपने सतीत्व को विलास-दृष्टि से, पाप-दृष्टि से देखने वाले नेत्रों को ज्योति-विहीन करने का बल प्राप्त कर सकतीं! समाज ने तो स्त्रियों को चहार-दीवारी के भीतर बन्द रहने वाला ऐसा पशु बना रक्खा है, जिसे पुरुष नामधारी जीव अपनी इच्छा के एक इशारे पर—उँगली के एक सङ्केत पर—फिरकी के समान घुमा फिरा सकता है! मैं अपने भाग्य को ठोकती और नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहाती हुई घर की ओर चली। परन्तु मेरी वह मर्म-व्यथा सङ्गिनी स्त्रियों की मनोरञ्जक आलोचना का विषय बन गई, वे रास्ते भर ज़ोर-ज़ोर से इस घटना की अच्छी-बुरी चर्चा करती रहीं। उनकी दया से, बात की बात में, प्रकाश के समान गाँव भर में यह समाचार फैल गया।

"मेरा हृदय भरा हुआ था, शरीर में आग की ज्वालाएँ उठ रही थीं। द्वार पर पहुँचते ही मैं चिल्ला कर रो पड़ी। परन्तु उफ़! मैं नहीं जानती थी कि मेरी अश्रुधाराएँ व्यर्थ जाएँगी, उन्हें देख कर किसी का

हृदय पानी-पानी न होगा। मेरा तो यही विश्वास था कि मेरे अपमान का समाचार सुन घर वालों के तथा पास-पड़ोस वालों के हृदय क्रोधाग्नि से भड़क उठेंगे और वे मेरे अपमानकारी को बात की बात में उस भयङ्कर अग्नि में झोंक कर भस्म कर डालेंगे। परन्तु हाय! मेरी हृदय-विदारक कहानी सुन कर किसी के नेत्र सजल नहीं हुए, किसी के नेत्रों से अग्नि की चिनगारियाँ विकीर्ण नहीं हुईं, क्रोधावेश में किसी ने अपने होंठ नहीं काटे, वीर-दर्प से किसी की भुजाओं में स्पन्दन क्रिया नहीं हुई। यह है तुम्हारी समाज की सञ्जीवनी शक्ति! बहिन! तुम्हीं बताओ और सच्चे हृदय से बताओ, संसार की कौन जाति अपनी स्त्रियों का ऐसा भीषण अपमान देख सकती है? है ऐसा कोई सिंह, जो यूरोपियन स्त्री के शरीर को उसकी इच्छा के बिना स्पर्श कर सके? है कोई ऐसा माई का लाल, जो मुस्लिम नारी पर उसकी बिना इच्छा के हाथ उठा सके? और तुम्हारे समाज में? बहिन! क्षमा करना, मुझ ऐसी असंख्य अभागिनी स्त्रियाँ हैं, जो आए-दिन हिन्दू-मुस्लिम गुण्डों के षड्यन्त्र का शिकार हुआ करती हैं!!

"मेरी रुदन-वार्ता सुनकर, जिसमें शतशः ज्वालामुखी पर्वतों की भयङ्कर विस्फोटक शक्ति भरी हुई थी, घर वाले बग़लें झाँकने लगे। उन्होंने घृणा के अञ्चल में अपना मुँह छिपा लिया। ज्योंही मैं घर में प्रवेश करने लगी, त्योंही मेरे ससुर ने कड़क कर मुझसे कहा—'कुल-कलङ्किनी! कुलटा! तूने मेरे वंश की उज्ज्वल कीर्ति में कालिमा पोत दी है। अब तेरे लिए इस घर के द्वार नहीं खुल सकते।' यह सुनते ही मेरा माथा घूम गया, नेत्रों में अन्धकार छा गया। मारे क्लेश के मैं आत्म-विस्मृत हो गई। क्षण-भर के लिए भी मेरी बुद्धि में यह न आया कि मैंने क्या अपराध किया है, और किस प्रकार उनके शुभ्र कुल को कलङ्क-कालिमा से रङ्ग दिया है। मैंने अपने उस पति की ओर, जो मुझ पर स्नेह की वर्षा करते-करते नहीं थकता था, जिसकी दृष्टि में मेरे समान सुन्दर, बहुमूल्य और प्रिय पदार्थ दूसरा न था, डबडबाए नेत्रों से देखा। मुझे उसी दिन पता चला कि अभागिनी हिन्दू-नारी को वास्तविक पति-प्रेम की प्राप्ति नहीं होती, उसके सामने केवल उसका आभास-मात्र रहता है। उसे प्रेम का दान नहीं दिया जाता, दी जाती है केवल उसकी छाया, जो अनायास ही अन्धकार में विलुप्त हो जाती है। यदि मेरे पति के हृदय में विशुद्ध स्नेह की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही होती, यदि उसके हृदय में मेरे लिए रत्ती भर भी ममता होती, तो वह मेरे नेत्रों में, मेरे हृदय की वह सम्पूर्ण करुणा उछलता हुआ देखता, जो उसके हृदय को पानी-पानी कर डालती। मेरे नेत्रों में, मेरे हृदय की सम्पूर्ण व्यथा दो अश्रु-कणों के रूप में आ बैठी थी, उसे यदि मेरा पति देख पाता, तो उसका हृदय खण्ड-खण्ड हो जाता। मैंने अपमान के बोझ से दबी हुई ध्वनि में उससे कहा—'मेरे हृदयेश्वर! मेरे जीवन-धन! मेरे इस लोक और परलोक के स्वामी! मैंने तो कोई अपराध नहीं किया। आज के पूर्व मैंने कभी उस अधम को देखा भी नहीं था, मैं यह भी नहीं जानती कि वह कौन है। मैंने तो उसकी ओर एक बार भी दृष्टि उठा कर नहीं देखा। मैं सर्वथा निष्पाप हूँ। उसी का अपराध है, उसीने मुझ पर अत्याचार किया है। क्या उसके पाप का दण्ड मुझे दिया जायगा? क्या उसके पाप के कारण मैं तुम्हारे चरणों की सेवा से वञ्चित कर दी जाऊँगी?' हृदय की जिस विह्वलता को लेकर मैंने ये करुणापूर्ण शब्द कहे थे, वह पति के हृदय को हिला देने में समर्थ नहीं हुए। उसकी सरस वाणी मेरे लिए मूक हो गई। जिसकी मैं कल्पना भी न कर सकती थी, वह मेरे आगे आया। उसने मेरी ओर अग्निमय नेत्रों से देखा, फिर वह बिजली के समान लपक कर मेरे निकट आया। मारे भय के मेरे प्राण काँप उठे—इसके पश्चात्? इसके पश्चात् बहिन! मैं क्या कहूँ, मुझ निरपराधिनी पर वह हिंसक पशु के समान टूट पड़ा। मुझ पर ऐसी मार पड़ी कि कभी पशुओं पर भी न पड़ती होगी। मैं रोती थी, चीख़ती थी, पर मेरी करुण-ध्वनि किसी के कलेजे में कसक उत्पन्न न कर सकी, किसी के मुँह से इतनी आवाज़ भी न निकल सकी कि अब तो इस अभागिनी पर दया करो। जब मारते-मारते उसके हाथ थक गए, तब उसने धक्का देकर मुझे अपने घर की सीमा से बाहर निकाल दिया।

"बहिन! मैंने मन में किसी प्रकार का पाप या अपराध करने की बात भी न सोची थी, इतने पर भी मुझ पर इतना भीषण अन्याय और अत्याचार किया गया। और जिसने वास्तव में पाप किया था—अपराध

किया था—उसे दो बातें कहने की भी किसी को न सूझी। सभी मेरा अपराध बतलाते थे—सभी मुझे लाञ्छित करते थे। मैं मारे परिताप के पागल हो गई, मेरी सम्पूर्ण सुध-बुध जाती रही, मुझे सान्त्वना की दो मीठी बातें सुनाने वाला भी कोई न दीखता था। मेरे चारों ओर निराशा की उग्र आँधी चलने लगी। मैं दिन भर सामने वाले नीम की छाया में मृतप्राय बैठी रही, किसी ने मेरी बात भी न पूछी।

"सन्ध्या हुई! मैं नहीं जानती, किसने पञ्चायत जमा की और किस उद्देश्य से की; पर मैं उसमें बुलाई अवश्य गई। मैंने सुन रक्खा था कि पञ्चों में साक्षात् परमेश्वर की विभूति होती है, वे किसी पर अन्याय या अत्याचार नहीं करते, दूध का दूध और पानी का पानी कर देते हैं। परन्तु उस दिन मैंने पञ्चायत का जो वीभत्स रूप देखा, वह इस जीवन में भूलने की बात नहीं है, उसकी छाप इस निर्बल हृदय पर आजीवन लगी रहेगी। एक बुड्ढा बोला—'× × × वंश में कभी ऐसी बात नहीं सुनी गई। इस छोकड़िया ने × × × की सात पीढ़ियों के नाम में बट्टा लगा दिया। सच है, स्त्री चाहे तो आदमी को हाथी पर बिठा दे, चाहे तो गधे पर बिठा दे।' इसके बाद उसने मुझसे पूछा—'यह क्या बात है, तुमने ऐसा खोटा काम क्यों किया? घर में तुम्हें किस बात का कष्ट था?'

"मैंने उत्तर दिया—'पञ्चो! इसके सिवा मैं और क्या कहूँ, कि मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं सर्वथा निष्पाप हूँ। मैं उस आदमी को जानती भी नहीं, उसने अकारण मुझ पर अत्याचार किया है।' यह सुन कई लोग हँस पड़े। पर एक युवक बोला—'मैं इस देवी के कथन पर विश्वास करता हूँ। मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि इस देवी के कथन पर सन्देह किया जा सके। वास्तव में वह आदमी इस गाँव का रहने वाला नहीं है। कल ही तो चीफ़-कमिश्नर साहब शिकार खेलने आए हैं। वह अधम उन्हीं का बैरा है। इतने उच्च अधिकारी का सेवक होने के अभिमान में ही उसने यह असभ्य धृष्टता की है। यह तो कभी सम्भव ही नहीं कि इतने अल्प काल में इस लज्जालु स्त्री ने उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो। मेरी राय है कि क़ानूनी कारवाई कर, उस पापिष्ठ

The Bombay Chronicle

THURSDAY, MAY 30, 1929

STAND BY THE "CHAND"

We note, without surprise, that the Director of Public Instruction, U. P., has issued a circular to all Inspectors of schools in the province declaring that the well-known Hindi monthly, *Chand*. is no longer approved for use in schools and should not be purchased by any recognised school under you." The latest ban is no doubt a sequel to the proscription of the book, *Bharat Men Angrezi Rajya*, which was published by the *Chand* office. In a sense the ban is a tribute to the worth of the *Chand*. In fact the *Chand* is one of the best Hindi magazines in India and is by far the best devoted to the cause of Indian womanhood. It has therefore been a most popular magazine among Hindi-knowing people all over India. In common with various other journals we have had several occasions before to commend it to the public. We feel it necessary to say now that it is the duty of the public to help the magazine and prevent it from being victimised by Government. The U. P. Government's ban may prevent not only Government schools but all recognised schools in the provinces, including even the unaided ones, from purchasing the magazine. But it shall not prevent the senior students and teachers and the public from continuing to read it.

का अभिमान कुचल दिया जाय, जिससे आगे वह कभी ऐसा न करे।'

"यह सुन वही बुड्ढा बोला—'भैया! मैं लगी-लिपटी बात नहीं करता, मैं तो दो-टूक बात करना जानता हूँ, चाहे किसी को बुरा लगे, चाहे भला। संसार का उतार-चढ़ाव देखते-देखते ही मेरे बाल पके हैं। तुम अभी कल के लड़के हो, त्रिया-चरित्र की माया क्या जानो। बड़े खेद की बात है कि तुम्हारी समझ में तनिक सी बात नहीं आती। मैंने तो आज तक कोई ऐसा शक्तिशाली पुरुष न देखा जिसने स्त्री की इच्छा के बिना उसे स्पर्श करने का साहस किया हो। और यदि तुम्हारी बात मान भी लूँ तो इस स्त्री की मर्यादा में जो दाग़ लग चुका वह कैसे धुल सकेगा? जानते हो वह आदमी जाति का मुसलमान है। अब यह स्त्री तो किसी भी तरह हमारी जाति में रहने योग्य नहीं रही। रही उस आदमी पर क़ानूनी काररवाई करने की बात, सो मैं इस विषय में चुप रहना ही उत्तम समझता हूँ। एक तो वह बड़े अफ़सर का नौकर ठहरा, उसके सामने हमारी कौन सुनेगा, और क्या आश्चर्य कि हमीं किसी झगड़े में पड़ जायँ। फिर इस मामले को आगे बढ़ाने से हमें अपयश ही प्राप्त होगा—आपन जाँघ उघारिए, आपन मरिए लाज।' यह सुन और भी कुछ आदमी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए बोले—'आपने बिलकुल दो-टूक बात कह दी है—पञ्चायत करना इसे कहते हैं। हम यह मान ही नहीं सकते कि वह आदमी सहसा इस पापिनी पर टूट पड़ा होगा। ज़रूर यह उसकी ओर देख कर हँसी-मुसकुराई होगी, और क्या आश्चर्य कि इसीने पहले-पहल उससे छेड़खानी की हो। ऐसी पापिनी का तो मुँह देखने में भी पाप होता है। निकाल बाहर करो इसे—जहाँ इसका सींग समाय, चली जाय!!'

"पञ्चायतों के न्याय की बहुत सी कहानियाँ मैं पहले ही सुन चुकी थी; पर यह मुझे उसी दिन मालूम हुआ कि हिन्दू-समाज की पञ्चायतें मूर्ख-बालकों के समान न्याय का अभिनय करती हैं। पञ्चायत ने मेरे भाग्य का निबटारा कर दिया था, और वह निबटारा ऐसा था, जिसकी अपील कहीं हो सकना सम्भव न था। यदि मैं अपील करती भी तो व्यर्थ, क्योंकि मुझे भली-भाँति विदित था कि दुखियों के और विशेषतया नारियों के अश्रु पञ्चों के कठोर हृदय को नरम करने की शक्ति नहीं रखते; दुखियों की और विशेषतया नारियों की सर्द आहें पञ्चों के कठोर हृदय में दया की भावना उत्पन्न करने में सर्वथा निःशक्त रहती हैं। अब तो मैं चारों ओर से असहाय थी, अब तो मेरे चारों ओर निराशा का तूफ़ान हहरा रहा था। आज तक मैंने केवल दुःख का नाम भर सुना था, वह कैसा भयङ्कर होता है, इसकी कभी कल्पना भी न की थी। सहसा अपने को ऐसे कल्पनातीत दुःख-दैत्य के पञ्जे में देख मैं एकबारगी कातर हो उठी। मेरे मन में यही आया कि ऐसे तिरस्कृत और लाञ्छित जीवन को त्याग देने में ही सुख है।

"विचार निश्चय में परिणत हो गया और मैं घाट की ओर चल पड़ी। चन्द्रमा के प्रकाश की रजत-धारा में संसार सुख से स्नान कर रहा था, तारक-वृन्द रजनी-रानी के साथ आँखमिचौनी खेल रहे थे। ऐसे सुख के समय मैं ग़म के आँसू पीती और ठण्ढी साँसें भरती हुई घाट की ओर बढ़ी जा रही थी। सोचती जाती थी, जिस घाट पर स्नान कर अपने मन-प्राण पुलकित करती थी, आज वहीं समाज की बुज़दिली के नाम पर इस अमूल्य मानव-जीवन का नाश कर, अपनी धधकती हुई छाती ठण्ढी करूँगी, इतने में सहसा किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया। मैं उछल कर दो क़दम आगे बढ़ गई, घूम कर देखा तो वही मुसलमान-युवक सामने खड़ा हुआ है। मेरे रोम-रोम में अग्नि-ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। गरज कर बोली—अधम! मेरा सर्वनाश करने पर भी तेरी छाती ठण्ढी नहीं हुई! जान पड़ता है, तू मुझे सुख से मरने भी न देगा!

"वह नम्रता-पूर्वक बोला—कम से कम मैं यही इरादा करके तुम्हारे निकट आया हूँ। मेरी दो बातें ध्यान देकर सुन लो, उन पर विचार कर लो, फिर तुम्हारे जी में जो आवे, करना, मैं न रोकूँगा। मुझसे बेशक क़ुसूर हो गया है, इसके लिए तुम मुझे चाहे जो सज़ा दो, मैं ख़ुशी से मञ्ज़ूर करूँगा। उस समय मैं तुम्हारे रूप के जादू में पागल हो गया था। एक क्षण के लिए भी मैंने यह न सोचा था कि तुम्हारे हक़ में मेरे पागलपन का परिणाम इतना भयङ्कर होगा। पर विचार करने की बात तो यह है कि अपराध मेरा था, तुम्हारा समाज मुझे दण्ड देने का यत्न करता।

तुम तो बेगुनाह थीं, तुम्हें किस कारण समाज ने इतनी कड़ी सज़ा दे डाली। जो पति तुम्हारे परी ऐसे हुस्न की बहार लूटता था, वह भी समाज में जा मिला, तुम पर उसने भी तनिक सी दया न की, उसने भी तुम्हें मिट्टी के ढेले के समान त्याग दिया! जिस समाज में स्नेह का एक कण भी नहीं रह गया है, जिस समाज को दया छू भी नहीं गई है, उसको तुम क्यों इतना प्यार करती हो? उसके अन्धेर से आकुल होकर तुम अपना यह सोने जैसा शरीर क्यों नष्ट करने जा रही हो? मैंने ग़लती की है, आओ मैं ही उस ग़लती को सुधारूँगा। तुम मेरे हृदय की रानी बनकर—मेरे सिर की ताज बनकर—रहना। यदि तुम मेरे चमड़े की जूतियाँ पहिनना चाहोगी तो वह भी मैं सिर झुकाकर क़ुबूल करूँगा।

"उसने और भी न जाने कितनी बातें कहीं। मैं उन्हें पत्थर की मूर्ति के समान चुपचाप खड़ी सुनती रही। बहिन! मुझे क्षमा करना, मैं अबला उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर फिसल गई। उसकी बातों ने मेरे हृदय में पुनः जीवन पर ममता उत्पन्न कर दी। थोड़ी देर पहले जिस मृत्यु को मैं सरल समझ कर घाट की ओर बढ़ी जा रही थी, वही मृत्यु अब मुझे अत्यन्त कठिन—अत्यन्त भयङ्कर जान पड़ने लगी। जीवन की इसी ममता ने—हृदय की इसी दुर्बलता ने मुझे पतित कर दिया। उसने मेरा हाथ पकड़ा, वह मुझे अपने डेरे में ले गया।

"इसके पश्चात् मैं अपने जन्म-स्थान को, अपने समाज और धर्म को सदा के लिए प्रणाम कर उसके साथ नागपुर चली गई। वही आदमी मेरे अब्दुलक़ादिर का पिता है। उसने मेरे साथ जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, आज तक वह उनका पालन कर रहा है। मुझे सुख पहुँचाने के लिए उससे जो कुछ हो सकता है, वह शक्ति भर करने के लिए उद्यत रहता है। आज तक उसने मुझसे कड़ी बात नहीं कही—कभी उसने मुझे फूल की पङ्खड़ी से भी नहीं मारा, मेरी धर्म-भावना पर उसने कभी आघात नहीं किया। अपने हृदय की सम्पूर्ण शुभ-भावनाएँ उसने मेरे चरणों पर निछावर कर दी हैं। मेरी इच्छा पर वह कठपुतली की नाईं नाचता है। बहिन! तुमसे झूठ क्यों बोलूँ, सच तो यह है कि यह आदमी मेरे पूर्व-पति से कहीं अत्यधिक महत् है। सदा वह मुझ पर अपने प्राण उत्सर्ग करने के लिए समुपस्थित रहता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि आज कोई मेरा अपमान करने का साहस करे तो मेरा पति उसके और अपने प्राण एक कर देगा। परन्तु इतना सब होने पर भी मुस्लिम-धर्म और उसकी सभ्यता का प्रभाव मेरे हृदय पर नहीं पड़ सका है। जो संस्कृति मेरे शरीर के एक-एक कण में प्रवेश कर चुकी थी, उससे नाता टूट जाने पर भी, उससे मेरा मोह दूर नहीं हो सका है—आज भी उसके लिए मेरे हृदय में श्रद्धा का वही स्थान है। जैन-धर्म पर अब भी मेरा वैसा ही विश्वास है, और जीवन के अन्तिम क्षण तक रहेगा। यदि मैं कहूँ तो कह सकती हूँ कि जैन-धर्म और उसकी सभ्यता से सम्बन्ध टूट जाने पर, उन पर मेरा प्रेम पहले की अपेक्षा भी अधिक हो गया है। यही मेरे विषम भाग्य की वेदनापूर्ण कहानी है।"

बहुत दिन हो गए, जब अब्दुलक़ादिर की जननी की यह आत्म-कथा सुनी थी। परन्तु उसकी स्मृति आज तक नवीन बनी हुई है। आज तक मुझे ऐसा भास होने लगता है, जैसे अब्दुलक़ादिर की जननी का वह विषादपूर्ण मुखड़ा मेरे सामने हो, उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही हो, और वह अपने हृदय की मर्म-व्यथा सुना रही हो। नहीं कह सकता कि कितने बार इस करुण-कथा ने मेरे हृदय में हलचल उत्पन्न की है! सहसा मेरे मन में यही प्रश्न उठने लगता है कि अब्दुलक़ादिर की जननी का यह कारुणिक पतन किसने किया? यदि समाज में ज़िन्दादिली होती, तो उस पवित्र महिला का ऐसा हृदयवेधी अपमान हो सकता था? यदि समाज की धमनियों में सञ्जीवनी धारा प्रवाहित हो रही होती, तो क्या एक निरपराधिनी और निष्पाप नारी, जिसके हृदय में अपने धर्म और अपनी सभ्यता के लिए गर्व के भाव थे, पतन के गम्भीर गह्वर में पतित हो सकती थी? प्रिय रमेश! समाज की थोथी पञ्चायतों ने—समाज की मुर्दादिली ने आज तक इस देश का कितना अहित किया है। केवल कुछ क्षण इस प्रश्न पर विचार करो, मैं कहता हूँ, तुम्हारी आत्मा रो उठेगी। अब्दुलक़ादिर की जननी की कथा तो समाज की मुर्दादिली का एक छोटा सा नमूना है। यदि तुम अपने चारों ओर दृष्टिपात करोगे तो अपने को समाज की मुर्दादिली के गम्भीर सागर में डूबा हुआ पाओगे। यदि

इस देश के समाज की मुर्दादिली के केवल एक ही वर्ष के नमूने संग्रहीत किए जायँ, तो इतना विशाल ग्रन्थ बन जायगा कि उसके सामने महाभारत पासङ्ग के समान दिखेगा। जब तक समाज में यह मुर्दादिली है, तब तक उसके और देश के उत्थान की आशा करना केवल सुन्दर पागलपन है !! यदि तुम्हारे हृदय में समाज के स्थायी कल्याण की आकांक्षा है, तो उसके रोग का वास्तविक निदान करो ; यों कोरे जोश-ख़रोश से कुछ होने-जाने का नहीं। मेरी पूछो तो मैं तो समाज के विषय में यही धारणा कर चुका हूँ—

ग्रह गृहीत पुनि वात वश, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय वारुणी, कहहु कौन उपचार ॥

अपनी कुशलता का पत्र देना।

तुम्हारा,

—दिनेश

हिन्दू-विधवा का सङ्कट

[रचयिता—श्री० देवीप्रसाद जी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

मन को मारे रहूँ कहाँ तक,
इसको क्या समझाऊँ मैं ?
जिसको कभी न देखा मैंने,
कैसे उसको ध्याऊँ मैं ?

अपने पतियों के सँग सखियाँ,
जीवन-सुख सब पाती हैं।
हृदय विकल मेरा होता है,
कैसे धीर धराऊँ मैं ?

अपना सब शृङ्गार छोड़ कर,
बनी भिखारिन रहती हूँ।
किन्तु तरङ्गें यौवन की ये,
कैसे कहो दबाऊँ मैं ?

कई विधर्मी प्रेम जना कर,
मुझको नित्य बुलाते हैं।
किन्तु लाज को कुल की कैसे,
धोकर कहो बहाऊँ मैं ?

इनसे तो बच सकती हूँ, पर—
देवर जेठ न मानेंगे !
छेड़ रहे हैं वे मुझको नित,
कैसे लाज बचाऊँ मैं ?

पण्डित मुझको सुना रहे हैं,
कृष्ण-गोपियों की लीला।
कहते हैं वे कृष्ण बनेंगे,
यदि गोपी बन जाऊँ मैं।

नौकरनी सुन्दर युवकों के,
नित्य सँदेशे लाती है।
औरों के क़िस्से कहती है,
जिनको क्या बतलाऊँ मैं ?

नौकर कहता है नाहक़ ही,
अपनी उम्र गँवाती हूँ।
उसके साथ निकल जाऊँ तो,
सुख से मौज उड़ाऊँ मैं ?

करते हैं अपमान सभी जन,
जो परिजन कहलाते हैं।
अगणित कष्ट सहन करती हूँ,
कब तक उन्हें गिनाऊँ मैं ?

समझेगा आचरण-भ्रष्ट वह,
पतित मुझे ही मानेगा।
कहता है समाज अपना यदि,
पुनर्विवाह कराऊँ मैं।

विधवा हूँ हिन्दू-समाज की,
पर अबला हूँ—युवती हूँ।
चारों ओर प्रलोभन भी हैं,
कैसे नेम निभाऊँ मैं ?

गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ?

[ले० श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्०]

जिन गोसाईं जी ने "रामचरित-मानस" की मधुर वंशी फूँक कर "शवरी नाद मृगी जनु मोही" को चरितार्थ करते हुए हिन्दू-जनता को मन्त्र-मुग्ध सा कर दिया है वे अपने शुभ-जन्म से भारत के किस प्रान्त तथा किस जाति के मुखोज्ज्वल-कर्ता हुए थे; उनकी पारिवारिक अवस्था कैसी थी; उनका शैशवकाल किस दशा में व्यतीत हुआ था; उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किसने किया था; उनके धार्मिक एवं सामाजिक विचार कैसे थे—ये बातें विद्वानों की खोज के लिए अति ही गहन विषय हैं। यद्यपि जनता के हृदय में दृढ़बद्ध मूल धारणा के विरुद्ध लेखनी उठाना मानो प्रशान्त महासागर में एकाएक प्रचण्ड तूफ़ान उठा देना है; तथापि समालोचना की धधकती हुई ज्वाला में उस धारणा को ख़ूब तपाए बिना सोने की तरह उसकी असलियत मालूम नहीं हो सकती। इस धारणा के अनुसार गोसाईं जी ब्राह्मण थे; उनकी शादी हुई थी तथा उनकी ज्ञान-प्राप्ति का कारण उनकी स्त्री ही थी। इस धारणा की जन्मदात्री गोसाईं जी की वह जीवनी है जो "रामचरितमानस" के प्रायः सभी सटीक संस्करणों में टीकाकारों द्वारा लिखी पाई जाती है। इस लेख में उस जीवनी पर विचार करते हुए यह दिखलाया जायगा कि वह जीवनी गोसाईं जी तथा उनके समकालीन लेखकों के निजी लेखों के साथ कुछ अनुकूलता रखती है कि नहीं, अथवा वह केवल एक मनगढ़न्त कपोल-कल्पना है, जिसे गोसाईं जी के कुछ भक्तों ने लेख-बद्ध कर दिया है।

पाश्चात्य कवियों के जीवन-चरित की तरह भारतीय कवियों का प्रामाण्य जीवन-चरित हमें उपलब्ध नहीं, जिनके द्वारा इनके वंशादि का ठीक-ठीक पता चले। इन भारतीय कवियों के विषय में हम जो कुछ जानकारी रखते हैं, उसका अधिकांश परम्परा की जनश्रुतियों तथा मनगढ़न्त घटनाओं के विवरणों से भरा रहता है, जिनकी सत्यता वा असत्यता का ठीक-ठीक निर्णय करना टेढ़ी खीर प्रतीत होती है। अतः अगर कुछ भरोसा किया जा सकता है तो केवल उन्हीं विवरणों के ऊपर, जो सम्बन्धित कवि के निजी लेखों तथा उसके समकालीन अन्य कवियों के लेखों में लिखे पाए जाते हैं। पर इनका अंश बहुत थोड़ा रहता है। इनके स्वल्प होने पर भी इनका मूल्य स्वल्प नहीं, प्रत्युत अत्यधिक समझना चाहिए; कारण कि अन्य विवरणों की सचाई वा मिथ्यापन के निर्णयार्थ ये कसौटी हैं। इसके अतिरिक्त जाति-भेद जनित पक्षपात की मात्रा इतनी अधिक है कि सभी का यही प्रयत्न रहता है कि प्रख्यात कवियों तथा महापुरुषों को अपनी ही जाति का होना सिद्ध किया जाय। जुलाहा-वंश-प्रदीप महात्मा कबीरदास को जन्म का ब्राह्मण लिख मारना तथा उनका जन्मतः ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए कपोल-कल्पित विलक्षण घटनाओं का आश्रय लेना इस भारतीय चित्त-प्रवृत्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है। तथ्य के अनुसन्धान में जातीय पक्ष की अपेक्षा प्रान्तीय पक्ष कुछ कम विघ्न-बाधा नहीं उपस्थित करता। महाकवि कालिदास को बङ्गाल के रहने वाले बङ्गाली, मिथिला के रहने वाले मैथिल तथा महाराष्ट्र के रहने वाले महाराष्ट्री सिद्ध किया चाहते हैं। फल यह होता है कि भारतीय साहित्य के निबिड़तिमिराच्छन्न गगन में ऐतिहासिक सामग्रियों की चन्द्र-ज्योत्स्ना के अभाव के कारण हमारे सत्यान्वेषकगण अति साव-धानता-पूर्वक टटोल-टटोल कर चलते हुए भी कभी-कभी ठोकर खाकर मिथ्या के घोर अन्ध-कूप में जा गिरते हैं। अतः हमें यही उचित है कि किसी भी कवि का परिचय मालूम करने के लिए हमें उसी के लेखों का आश्रय लेना चाहिए और अन्यों के लेखों का उतना ही अंश ग्रहण करना चाहिए, जो सम्बन्धित कवि के निजी लेखों के साथ पूरा-पूरा बैठ जाय तथा शेषांश को झूठा अथवा अप्रामाणिक समझ, त्याग देना चाहिए।

अब देखना यह है कि उक्त निर्णय-पद्धति का अनु-

स्मरण कर हम गोसाईं तुलसीदास के विषय में किस निर्णय पर जा पहुँचते हैं। आपने अपना कुछ-कुछ परिचय अपनी कवितावली के उत्तरकाण्ड तथा विनय-पत्रिका में दिया है, जिससे आपकी जाति-पाँति, विवाह आदि के विषय में ठीक-ठीक अनुमान किया जा सकता है। आप अपने कुल तथा जन्म का विवरण इस प्रकार देते हैं—

(क) जायो कुलमङ्गन बधावो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चार ही चनक को॥७३॥

अर्थ—मैंने भिखमङ्गों के कुल में जन्म लिया। मेरा जन्म सुन कर बधावा नहीं बजाया गया। मेरे माता-पिता को अपने पाप (कुकर्म) का परिताप (पछतावा) हुआ। मैं बचपन से ही भूख से व्याकुल होकर दरिद्रता के कारण अन्न के लिए लालायित रहता और घर-घर रोता फिरता था। कहीं चने के चार दाने भी मिल गए तो चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा जाने की ख़ुशी होती थी।

नोट (१)—किसी-किसी टीकाकारों ने "कुलमङ्गन" का अर्थ ब्राह्मण-कुल किया है, पर यह ठीक नहीं। गोसाईं जी की जिस दिव्य लेखनी ने ब्राह्मण-जाति के अतुल महत्व प्रख्यायक ये बचन लिख डाले—

पूजिय विप्र शील गुण हीना,
शूद्र नाहिं गुण ज्ञान प्रवीना!
विप्र वंश की अस प्रभुताई,
अभय होय जो तुमहिं डेराई।
शापत ताड़त पुरुष कहन्ता,
विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता॥

फिर वही लेखनी इस जाति को "मङ्गनकुल" लिख इसके सारे महत्व पर एक बारगी पानी फेर दे, यह विश्वास में नहीं आता। जिस लेखनी ने इस जाति की प्रशंसा करते-करते इसे सातवें आसमान पर चढ़ा दिया है, फिर वही लेखनी इसे भिखमङ्गों की जाति बना इसे रसातल में ढकेल दे, यह कब मानने की बात है? इसके अतिरिक्त मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने ब्राह्मणों के जो ६ कर्म (पठन-पाठन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह) लिखे हैं, उनमें भीख माँगना कहीं नहीं लिखा। कोषकारों ने भी 'ब्राह्मण' शब्द के विविध पर्यायों में "याचक" वा "भिक्षुक" शब्द नहीं लिखा। तब कैसे माना जाय कि "मङ्गन-कुल" का अर्थ ब्राह्मण-कुल करना गोसाईं जी की ब्राह्मण-जाति के प्रति निजी श्रद्धा और भक्ति के अनुकूल, युक्तियुक्त, शास्त्र-सङ्गत और कोषानुमोदित है। वास्तव में ब्राह्मण जैसी अतुल प्रभावशालिनी जाति की शान में "मङ्गन" शब्द का प्रयोग करना एक अक्षम्य धार्मिक तथा सामाजिक अपराध है। इस प्रकार की तर्क-शैली का आश्रय लेने पर गोसाईं जी का ब्राह्मण होना सिद्ध नहीं होता। मुरादाबाद निवासी स्वर्गीय पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ने अपने "जातिभास्कर" नामक वृहद् ग्रन्थ में जिन विविध मङ्गन जातियों का विवरण लिखा है, उनमें ब्राह्मण-जाति का उल्लेख नहीं किया। स्वर्गीय मिश्र जी ने वहाँ पर केवल अलखनामी, अतीत (अथीथ), अघोरी, जोगी, खाफ़ी आदि विविध प्रकार के मँगतों का ही वर्णन किया है। सचमुच ब्राह्मण-जाति को उक्त जातियों का समकक्ष लिख देना मानों हंस को गृद्धों की पंक्ति में बैठा देना है। उक्त नाना प्रकार के भिखमङ्गों की जातियों में से हम अपने पाठकों का ध्यान अतीत (अथीथ) नामक ङ्गमन-जाति पर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं। फुलेरा (जयपुर) निवासी श्रोत्रिय पं० छोटेलाल जी शर्मा ने अपनी पुस्तक "जातिअन्वेषण" प्रथम भाग, पृष्ठ ९१ में "(११) अतित" शीर्षक विवरण में अथीथ जाति-विषयक जो टिप्पणी दी है, वह देखने योग्य है। यहाँ पर पाठकों की जानकारी के लिए उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है:—

"यह एक युक्तप्रदेश की हिन्दू-जाति है × × × किसी-किसी विद्वान् ने इस जाति को धार्मिक वा साम्प्रदायिक भिक्षु लिखा है × × × ये तो अपने को ब्राह्मण बतलाते हैं, पर ब्राह्मण लोग इससे इनकार करते हैं × × इन्हीं का एक भेद गुसाईं है, जो गोस्वामी शुद्ध शब्द का बिगड़ कर बना है।"

अहा! इस टिप्पणी ने तुलसीदास जी की अब तक एक घने अन्धकार में छिपी हुई जाति पर पूर्ण प्रकाश डालने में बिजली-बत्ती का काम कर दिया है। यह सभी मानते हैं कि आप युक्तप्रदेश के रहने वाले थे। आप जनता में स्मरणातीत काल से "गोसाईं जी" की उपाधि

से प्रसिद्ध हैं। आपके ही लेखों से आपका जन्म मँगतों के घर होना भी सिद्ध है। आप स्वयं लड़कपन में रामचन्द्र का यश गा-गाकर भीख माँगना स्वीकार करते हैं। इन अकाट्य प्रमाणों तथा प्रबल तर्क-शैली के होते हुए भी कौन ऐसा विचारवान् मनुष्य है, जो आपको जाति का गोसाईं वर्ग का अथीथ दृढ़ रूप से न मान लेवे।

नोट (२)—गोसाईं जी के जन्म होने पर आपके माता-पिता को अपने पाप का पश्चात्ताप हुआ। पर पाप और पश्चात्ताप तब होते हैं जब सन्तान की उत्पत्ति अवैध रीति (Unlawful Manner) से होती है। क्या इससे यह बात नहीं टपकती कि आपके जननी-जनक के बीच पवित्र दाम्पत्य सम्बन्ध (Holy conjugal Relationship) न होकर, एक अवैध सम्बन्ध (Unlawful Connection) था? अथवा सीधी भाषा में यों कहिए कि ये परस्पर शास्त्रानुसार विवाहित स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) न थे।

कोई-कोई "भयो परिताप पाप जननी जनक को" का यह अर्थ करते हैं कि गोसाईं जी अपने माता-पिता के लिए कष्ट और सन्ताप का कारण हो गए, क्योंकि भीषण दरिद्रता से आक्रान्त होने के कारण वे आपके भरण-पोषण में नितान्त असमर्थ थे; अतः उनकी दृष्टि में आप एक भयङ्कर और दुखदायी बोझ प्रतीत होने लगे। पर यह अर्थ ठीक नहीं; कारण कि माता-पिता कितना भी दरिद्र हो, पर यदि पुत्र की उत्पत्ति अवैध रीति से न हुई हो तो उसके जन्म पर आनन्द की सीमा नहीं रहती—यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है।

नोट (३)—कहीं-कहीं "बधावनो बजायो" भी पाठ मिलता है; जिसका अर्थ यह है कि गोसाईं जी के जन्म होने पर बधावा बजाया गया; पर यह अर्थ ठीक नहीं; कारण कि जिस सन्तान की उत्पत्ति अवैध रीति से हुई हो अथवा जो उत्पन्न होते ही अपने माता-पिता के कष्ट तथा सन्ताप का कारण हो गई हो, जैसा कि अन्य लोग मानते हैं, उसके जन्म पर बधावा नहीं बजाया जा सकता।

नोट (४)—"पाप" शब्द पापी-अर्थ में जननी-जनक का विशेषण भी हो सकता है। इससे भी वही ध्वनि निकलती है जिसका उल्लेख नोट (२) में कर आए हैं, अर्थात् यह कि उन दोनों के बीच एक अनुचित सम्बन्ध था।

(ख) मातु पिता जग जाय तज्यो,
विधि हूँ न लिख्यो कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर,
कूकर टूकन लागि ललाई॥५७॥

अर्थ—संसार में जन्म देकर मुझे माता-पिता ने छोड़ दिया। ब्रह्मा ने भी मेरे ललाट में कोई भलाई न लिखी थी। मैं अति ही नीच, अपमान का पात्र तथा साहस-हीन था और कुत्ते की तरह जूठे भोजन के लिए लालायित रहता था।

नोट—गोसाईं जी के जीवन-चरित लिखने वाले लिखते हैं कि आपका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था, इस कारण आपके माता-पिता ने ज्योतिःशास्त्र के "पिता समाश्चाष्ट मुखं न पश्येत्" (अर्थात् पिता ऐसे बालक का मुँह आठ वर्ष तक न देखे) इस वचन के अनुसार आपका परित्याग कर दिया। पर यहाँ कई बातें विचारने योग्य हैं। एक तो यह कि ऐसे महा दरिद्र भिखमङ्गे के घर ज्योतिषी नहीं बुलाए जाते। यदि वह बुलाया गया भी हो तो उसने आपकी जन्मपत्री के अन्य शुभाशुभ फलों के साथ यह भी भविष्य-वाणी कही होगी कि यह लड़का एक जगत्-प्रसिद्ध महाकवि होगा जो अपने यशोरश्मिजाल की धवलिमा से सारे संसार को उद्भासित कर देगा। अपने पुत्र की भावी उन्नति सुन कर भी आपके भरण-पोषण का भार अस्वीकार कर आपके माता-पिता ने आपको तज दिया, यह विश्वास योग्य नहीं प्रतीत होता। ऐसे होनहार पुत्र के भरण-पोषण की वेदी पर माता-पिता अपना तन, मन, धन सर्वस्व बलिदान कर देने में तनिक भी न हिचकते। दूसरी बात यह कि यदि आपका जन्म सचमुच अभुक्त मूल में हुआ तो यह आवश्यक नहीं था कि आपके माता-पिता आपके परित्याग जैसे नृशंस कार्य के करने में ही अपना कल्याण समझें। शास्त्रों में अभुक्त मूल का शान्ति-विधान भी बतलाया गया है। वह शान्ति-विधान न कर, आपके माता-पिता ने आपको तज दिया, यह कैसे माना जाय? तीसरी बात यह कि पिता भले ही सद्योजात पुत्र को तज दे; स्नेहमयी जननी दुधमुँहें बच्चे को अपनी छाती से अलग क्योंकर कर सकती

है ? पिता भले ही कहीं अन्यत्र चला जाय और जब तक बालक आठ वर्ष का न हो, घर न लौटे। इन सब बातों पर निष्पक्ष भाव से विचार करने पर यही मानना पड़ता है कि गोसाईं जी का अभुक्त मूल में जन्म होना और माता-पिता द्वारा आपका तजा जाना आपके जीवनचरित के लिखने वालों की कोरी कल्पना है। वह सिवाय एक भारी गप्प के और कुछ नहीं। यथार्थ बात तो यह जान पड़ती है कि आपके माता-पिता ने आपके बचपन में ही स्वर्ग की राह ली और आप इस प्रकार माता-पिता से छोड़े जाने के कारण घर-घर का जूठन खा-खाकर अपना दिन काटने लगे।

(ग) हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमरि कै कै,
भरों पेट राम रावरोई गुण गाइके ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र, मैं तो जैसा पहले था वैसा अब भी हूँ और आपके गुण गा-गाकर नीचता से अपना पेट पालता हूँ।

नोट—हमारा यह प्रतिदिन का अनुभव है कि गोसाइयों (अथीथों) के बालक एकतारा और करताल बजा-बजा कर घर-घर भीख माँगा करते हैं। ये प्रायः बनारस प्रान्त में रहते हैं और वहीं से सर्वत्र भीख माँगने के लिए जाया करते हैं। हमारे पूज्य गोसाईं जी ने भी अपनी प्रायः सारी ज़िन्दगी बनारस में ही स्थायी रूप से बिताई; अतः हमारा अनुमान, कि आप एक अथीथ-बालक थे और भी पुष्ट हो जाता है।

(घ) जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागिवश,
खाए टूक सब के विदित बात दूनी सो ॥७२॥

(ङ) मेरे जातिपाँति न चाहौं काहू की जातिपाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
अति ही अयाने उपखानों नहिं बूझै लोग,
साहब के गोत गोत होत है गुलाम को ॥१०७॥

(च) धूत कहौ, अवधूत कहौ, राजपूत कहौ,
जुलहा कहै कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहिहौं,
काहू की जाति बिगारन सोऊ ॥१०६॥

अर्थ—(घ) भूख से आतुर होकर, अपनी जाति (अथीथ) अपने से ऊँची जाति, तथा अपने से नीची जाति, अर्थात् जाति-पाँति का विचार छोड़ कर, सभी से रोटी के टुकड़े माँग-माँग कर खाए—यह बात संसार जानता है। (ङ) मेरी जाति-पाँति नहीं है, न मैं किसी की जाति-पाँति चाहता हूँ; न कोई मेरे काम का है, न मैं ही किसी के काम का हूँ। ××× लोग अत्यन्त मूर्ख हैं जो इस कहावत को नहीं जानते कि जो गोत्र स्वामी का होता है वही सेवक का भी होता है। (च) कोई मुझे चाहे धूर्त (ठग, पाखण्डी आदि) कहे; चाहे जोगी (भिखमङ्गा) कहे; चाहे रजपूत कहे; चाहे जुलाहा कहे; मुझे कुछ भी परवाह नहीं। मुझे कुछ अपने बेटे की शादी किसी की लड़की के साथ नहीं करनी है, न मैं किसी की जाति ही बिगाड़ना चाहता हूँ।

नोट (१)—अन्य टीकाकारों ने भी "सुजाति" शब्द का अर्थ अपने से ऊँची जाति किया है, जिससे भी यही ध्वनि निकलती है कि तुलसीदास ब्राह्मण न होकर ब्राह्मण से किसी नीची जाति के थे; क्योंकि ब्राह्मण से तो कोई ऊँची होती ही नहीं। उनका अथीथ होना पद-पद पर पुष्ट हुआ जा रहा है। "सुजाति" का बिना उक्त अर्थ किए जाति, सुजाति और कुजाति की पारस्परिक तुलना नहीं हो सकती और न उनका एक सिलसिले में प्रयोग ही सार्थक हो सकता है।

नोट (२)—तुलसीदास जी को अपने गोत्र आदि का भी ठिकाना न था; अतः गोत्र पूछने वालों पर वे झल्ला उठते और उन्हें मूर्ख कह कर ही उनका मुँह बन्द कर देने का प्रयत्न करते। इस विषय में जवाला-पुत्र सत्यकाम तुलसीदास से कहीं बढ़ कर शुद्ध हृदय का था, क्योंकि महर्षि गौतम द्वारा गोत्र पूछे जाने पर उसने साफ़ कह दिया कि मुझे अपना गोत्र मालूम नहीं। गोसाईं जी की तरह महर्षि को मूर्ख कह कर उसने गोत्र-विषयक प्रश्न से अपना पिण्ड छुड़ाना नहीं चाहा।

नोट (३)—गोसाईं जी की समकालीन जनता बड़ी बेढब मालूम पड़ती है; क्योंकि वह आपके विषय में जाति का प्रश्न छेड़ कर आपके पीछे पड़ गई-सी प्रतीत होती है और बेचारे आप इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने का साहस न रख कर, भागे फिरते हैं। दाल में बिना कुछ काला रहे ऐसी नौबत नहीं पहुँच सकती।

(छ) पातक पीन कुदारिद दीन, मलीन धरे
कथरी करवा है ॥ ५६ ॥

अर्थ—मैं बड़ा पापी तथा बुरी दरिद्रता के कारण

दुखी रहता था। मेरे पास पहनने वा ओढ़ने के लिए केवल एक मैली फटी गुदड़ी तथा जलपात्र की जगह केवल मिट्टी का एक कोरवा था।

अहो! दारुण दरिद्रता का कैसा हृदय-विदारक चित्र है। रामबोला* के पास केवल एक मैली फटी गुदड़ी तथा मिट्टी के एक कोरवे के सिवाय और कुछ नहीं। वह माता-पिता से विहीन हो, घर-द्वार से भी रहित हो, जाति-पाँति का विचार छोड़, घर-घर का जूठन खा-खाकर अपना पेट पालता है। उसकी जाति के विषय में तत्कालीन जनता सन्दिग्ध रहती है और जहाँ-तहाँ से वह फटकारा जाता है। पर ऐसी भी घोर दरिद्रता की यन्त्रणा से परिपीड़ित, अज्ञात कुलशील तथा जाति-पाँति से बहिष्कृत रामबोला के गले में, उसके जीवन-चरित के लिखने वालों में से किसी ने एक, तो किसी ने तीन स्त्रियों के ढोल बाँध दिए। कपोल-कल्पना की कैसी लम्बी छलाँग है! भला कौन ऐसा मूर्ख पिता होगा जो अपनी कन्या का पाणिग्रहण रामबोला जैसे वर से करवा कर उसे जीते जी भाड़ में झोंक दे! तिस पर तुर्रा तो यह कि गोसाईं जी विषयक जिन बातों का ज्ञान आपकी समकालीन जनता को न था, क़ुरान की आयतों की तरह उनका इलहाम ३०० वर्षों के बाद आपके जीवन-चरित-लेखक रूपी पैग़म्बरों पर कैसे हो गया! तुलसीदास स्वयं अपने विवाह के सम्बन्ध में यों लिखते हैं—

(ज) मेरे कोऊ कहूँ नाहीं......................
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।

—विनय-पत्रिका

अर्थ—मेरा अपना इस संसार में कहीं पर कोई नहीं है। मेरा ब्याह-बरेखा कुछ भी न हुआ; मैं जाति-पाँति कुछ भी नहीं चाहता। जब स्वयं गोसाईं जी ही लिख रहे हैं कि मेरा विवाह नहीं हुआ तो दूसरों का आपका विवाह हुआ लिखना चण्डूख़ाने की गप्प के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। जिस बात का मुद्दई स्वयं दावा नहीं करता, उस बात का उसके भाड़े के टट्टू सरीखे ख़ुशामदी गवाह इज़हार कर रहे हैं!! पर इस पर एक प्रतिवादी कहता है—

प्रश्न—विनय-पत्रिका के उक्त वचन से यह तो नहीं सिद्ध होता कि गोसाईं जी का विवाह ही नहीं हुआ; वरन् इतना ही सिद्ध होता है कि वे विवाह करना नहीं चाहते थे।

सिद्धान्ती—तुम्हारा लिखा जीवन-चरित ठीक है वा "पत्रिका" के वाक्य का तुम्हारा उक्त अर्थ है? यदि जीवनचरित ठीक है तो तुलसीदास से बढ़कर विवाहाकांक्षी तथा स्त्री-लोलुप दूसरा कोई न होगा; क्योंकि आप स्त्री के नैहर भाग जाने पर स्वयं भी पीठ ठोंक कर ससुराल जा धमके, जिस पर आपकी स्त्री ने आपकी अच्छी तरह ख़बर ली। तुम्हारी दोनों बातों के परस्पर विरोधी होने के कारण कोई भी मानने योग्य नहीं।

प्र०—विवाह की इच्छा न रहते भी गोसाईं जी ने विवाह किया!

सि०—यह सम्भव नहीं; क्योंकि आप ख़ुदमुख़्तार थे। विवाह के लिए आप पर दबाव डालने वाला कोई न था।

प्र०—गुरु जी ने आपको पढ़ा-लिखा, योग्य बना विवाह करने की आज्ञा दी होगी?

सि०—गोसाईं जी का विद्वान् होने पर सांसारिक माया से विरक्त हो जाना ही अधिक सम्भव है। इसके अतिरिक्त जो गुरु स्वयं गार्हस्थ्य के दुर्भेद्य जाल में न फँसा हो वह एक विद्वान् शिष्य को उसकी इच्छा के विरुद्ध उसमें फँसाने का प्रयत्न करे, यह विश्वसनीय नहीं। चाहे इस प्रश्न पर किसी भी पहलू से विचार करो, गोसाईं जी का विवाह करना सिद्ध नहीं होता। आपको स्त्री-जाति के प्रति, जैसा कि आपके लेखों से मालूम पड़ता है, एक स्वाभाविक घृणा थी; आप उसके चङ्गुल में क्यों फँसने लगे! अतः आपको अविवाहित रह कर विरक्त हुआ मानना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि गोसाईं जी ब्राह्मण अवश्य थे, पर आपको ब्राह्मणत्व का अभिमान न था और आपने जो अपने को दीन, हीन, अजाति, मङ्गन आदि लिखा है, वह केवल अपनी नम्रता दिखाने तथा स्वगर्व-परिहार के लिए ही लिखा है। पर यहाँ पर विचारना यह है कि ब्राह्मण-कुल में अनेक कवि हो गए हैं, पर आज तक किसी ने भी अपनी जाति को मङ्गन-कुल नहीं लिखा। यदि स्वगर्व-परिहारार्थ कुछ लिखा भी तो

* यह तुलसीदास का लड़कपन का नाम है।

केवल अपनी विद्या-बुद्धि की ही तुच्छता लिखी। यदि अपनी तुच्छता और भी दिखानी हुई तो अपने को पापी, पाखण्डी आदि लिखा; पर यह कदापि न लिखा कि मैं अजाति हूँ, ज़ुठखोर हूँ, इत्यादि। सारांश यह कि अपनी जाति पर झूठ-मूठ का धब्बा नहीं लगाया। यदि कहो कि गोसाईं जी उक्त कोटि के कवियों में से न थे, वे तो एक पूर्ण ब्रह्मज्ञानी परमहंस थे, जिनकी दृष्टि में सारा ब्रह्माण्ड "सिया राममय" हो रहा था; वहाँ पर न कोई ब्राह्मण था, न कोई शूद्र, तो तुम्हारी यह कल्पना केवल ख़्याली पुलाव है जो गोसाईं जी के जाति-भेद-पोषक उद्गारों से टकरा जाता है। आपके हृदय के ये उद्गार कि "पूजिए विप्र शील गुण हीना, शूद्र नाहिं गुण ज्ञान प्रवीना; विप्र वंश की अस प्रभुताई, अभय होय जो तुमहिं डेराई; शापत ताड़त पुरुष कहन्ता, विप्र पूज्य अस गावहिं सन्ता; शूद्र द्विजहिं उपदेशहिं ज्ञाना, मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना; बादहिं शूद्र द्विजन सन, हम तुमते कछु घाट, जाने ब्रह्म सो विप्रवर, आँख दिखावहिं डाटि; शूद्र करहिं जप-तप व्रत-नाना, बैठि वरासन कहहिं पुराना" आदि आपके बनावटी ब्रह्मज्ञान का भण्डाफोड़ कर देते हैं; क्योंकि ये तो इस बात का साक्ष्य देते हैं कि आप से बढ़कर जात्यभिमानी, पक्षपाती, जाति-पाँति के कट्टर समर्थक एवं जाति को ही सब कुछ, पर गुण को कुछ भी नहीं मानने वाला ब्राह्मण कोई दूसरा न था। यह कैसी घृणित चालबाज़ी है कि स्वयं तो बाहर से दीन, हीन, जाति-पाँति-विषयक भेदभाव-शून्य होने का स्वाँग रचें और अपने लेखों के द्वारा इसी बनावटी वेश में छिपे-रुस्तम बन, अपनी जाति का पूरा सिक्का, चाहे वह किसी भी गिरी से गिरी दशा में क्यों न हो, हिन्दू-जाति पर सदा के लिए जमाए रखने का—नहीं-नहीं, अब्राह्मणों को अपनी जाति का पूर्णतः ग़ुलाम बनाए रखने का—कुत्सित प्रयत्न करें। दोमुँहें साँप की तरह एक ओर तो जाति-पाँति कोई चीज़ नहीं, ऐसा उदार उपदेश देने का ढोंग रचें और दूसरी ओर ठीक इसके प्रतिकूल केवल जाति-पाँति के ही आधार पर किसी को सर्वथा अयोग्य होने पर भी पूज्य एवं किसी को सर्वथा योग्य होने पर भी ताड़न के अधिकारी बतला परस्पर फूट, कलह, जातिद्वेष आदि नारकीय विचारों का विष उगलें। समकालीन जनता, जो आपकी जाति के विषय में सदा सन्दिग्ध रहकर अण्ड-बण्ड बोला करती थी, उससे आप मन ही मन अवश्य कुढ़ते थे; पर बाहर से "खट्टी अङ्गूर कौन खाए" के न्याय से जाति-पाँति के प्रति अपनी उदासीनता दिखलाते थे। पर आपके ही कथन "उघरे अन्त न होहि निबाहू, कालनेमि जिमि रावण राहू" के अनुसार आपकी सारी मुरादाबादी क़लई खुल गई और "रामचरित-मानस" के उत्तर-काण्ड में पहुँचते-पहुँचते आपने अपना सारा ब्रह्मज्ञान भाड़ में झोंक कर सभी जातियों को वर्णसङ्कर * बना अपने जले दिल की आग ठण्ढी की! धन्य हो भगवन्! ब्राह्मण माने जाने से तो आप अपने उक्त सङ्कुचित विचारों के कारण जनता की दृष्टि में और भी गिरे जाते हैं। पर किसी-किसी का यह अनुमान है कि आप ब्राह्मण अवश्य थे, नहीं तो ब्राह्मण-जाति की इतनी प्रशंसा नहीं करते। पर यह अनुमान सरासर ग़लत है। प्रशंसा करने के कारण निम्न-लिखित भी हो सकते हैं:—

(१) गोसाईं (अथीथ) होने के कारण आप अपने को भी ब्राह्मण समझते होंगे; जैसा कि श्रोत्रिय पण्डित छोटेलाल शर्मा के लेखानुसार अथीथ जाति भी अपने को ब्राह्मण ही बतलाती है; और ब्राह्मण की प्रशंसा में अपनी जाति की भी प्रशंसा समझते होंगे।

(२) आपको अपने "रामचरित-मानस" पर इसके कतिपय अंशों के शास्त्र-प्रतिकूल होने के कारण, ब्राह्मण-विद्वानों के द्वारा इसके समूलोच्छेदकारी आक्रमणों की भारी आशङ्का हुई होगी; अतः आपको ब्राह्मणों के ख़ुशामद वश इतनी चापलूसी करनी पड़ी।

(३) आपका भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि नरसिंह (नरहरि) दास नामक एक ब्राह्मण-महात्मा के द्वारा हुआ था। अति बाल्यकाल से ब्राह्मण के आश्रित बने रहने के कारण आप पर ब्राह्मण जाति का प्रभाव बेहद पड़ा होगा, यहाँ तक कि इस जाति का जैसे हो

---

* भए वरन सङ्कर सकल, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज शोक वियोग॥

आश्चर्य है, जिसकी अपनी ही जाति का ठिकाना नहीं वह अन्य सभी को वर्णसङ्कर लिख मारने का दुःसाहस करे।

—लेखक

वैसे गुण गाना ही आपने अपना कर्त्तव्य समझा होगा। आपका हाल वही हुआ होगा जैसे कोई अनाथ बच्चा मिशनरियों के द्वारा पाले-पोसे जाने पर अपने पालक के समाज का ही महत्व वर्णन करने लग जाता है। यदि बात ऐसी ही हुई तो आप पर "जिसका खाएँ उसका गाएँ" वाली कहावत पूर्ण रीति से घटती है।

सारांश यह कि केवल प्रशंसा करने से ही प्रशंसक को प्रशंसित का सजाति मान बैठना भारी भूल है। प्रशंसा कितने अन्य अभिप्रायों से भी की जाती है।

ज़रा गोसाईं जी के प्रचलित जीवन-चरित पर भी विचार कर लेना परमावश्यक है, जिसमें हमें मालूम होजाय कि वह आपके निजी लेखों से कुछ मिलता है कि नहीं। यह जीवन-चरित प्रायः निम्न-लिखित चार ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है—

(१) बेनीमाधवदास कृत—गोसाईं-चरित्र

(२) नाभादास कृत—भक्तमाल

(३) प्रियदास कृत—उक्त भक्तमाल की टीका

(४) रघुवरदास कृत—तुलसी-चरित्र

गोसाईं जी के परिचय दिलाने वाले अन्य ग्रन्थ पूर्वोक्त चार ग्रन्थों के ही आधार पर अवलम्बित तथा अति ही नवीन हैं। इनमें मौलिकता कुछ भी नहीं। उक्त चार ग्रन्थों के अवलोकन से हम आपके वंशादि विषयक दो मतों पर पहुँचते हैं—

गोसाईं जी का जन्म राजापुर, ज़िला बाँदा, परगने मऊ में संवत् १५८९ में हुआ। आपके पिता का नाम आत्माराम दुबे, माता का हुलसी तथा अपना रामबोला था जो वैरागी होने पर तुलसीदास हुआ। आपका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ, जिससे आपको तारक नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ।

(२) गोसाईं जी का जन्म तरी नामक स्थान में संवत् १५५४ में हुआ। आपके पिता का नाम रुद्रनाथ मिश्र तथा अपना तुलाराम था जो वैरागी होने पर तुलसीदास हुआ। आपके तीन विवाह हुए। तीसरी स्त्री लक्ष्मण उपाध्याय की कन्या बुद्धिमती थी, जिसने आपको ज्ञान का उपदेश दिया था। इस विवाह में आपको ६०००) रुपयों का दहेज भी मिला था।

तुलसीदास विषयक उक्त दोनों मत परस्पर एकदम भिन्न होने के कारण आपसे आप एक दूसरे का उच्छेद कर देते हैं तथा इसमें से कोई भी आपके निजी लेखों से समर्थित नहीं होता; अतः दोनों ही मिथ्या और कपोल-कल्पित हैं। दोनों मत आपका जन्मस्थान, जन्म-संवत् पिता का नाम, आपका पहला नाम, विवाह-संख्या, ससुर और स्त्री के नाम तथा आपके परिवार की आर्थिक स्थिति भिन्न-भिन्न बतलाते हैं। यदि किसी मुक़दमे में भिन्न-भिन्न गवाह भिन्न-भिन्न प्रकार की गवाहियाँ देवें तो न्यायाधीश किसी की भी बात न मान मुक़दमा ख़ारिज कर देता है। वैसे ही उक्त दोनों मत एक दूसरे के विरोधी होने के कारण एक साथ ही त्याज्य हैं। कोई-कोई कहते हैं कि तुलसीदास की उपाधि "गोसाईं" होने से, यह आवश्यक नहीं है कि वे जाति के अथीथ हों; ब्राह्मणों में भी "गोसाईं" की उपाधि होती है। पर यदि उक्त दोनों मतों में से कोई भी सत्य होता तो तुलसीदास को "गोसाईं जी" न कह "दुबे जी" वा नहीं तो "मिश्र जी" कहते। आपकी परम्परा से चली आती "गोसाईं" उपाधि भी उक्त दोनों मतों के साथ-साथ आपके ब्राह्मणत्व का भी खण्डन कर देती है।

अब रह गई केवल अपनी स्त्री से आपकी ज्ञान-प्राप्ति की बात, यह भी वन्ध्यापुत्रवत् मानने योग्य नहीं; क्योंकि जब विवाह हुआ ही नहीं, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, तो ज्ञान देने वाली स्त्री कहाँ से आई? यदि सचमुच आपकी ज्ञान-प्राप्ति अपनी या किसी अन्य की स्त्री से हुई होती तो आप अपने लेखों में इसका उल्लेख अवश्य किए होते। यह कोई साधारण अतः उपेक्षणीय घटना न थी। जीवन-चरित्र के अनुसार स्त्री से ज्ञान-प्राप्ति की घटना आपके जीवन-प्रवाह का रुख़ फेर देने वाला विन्दु (Turning Point) थी। जिन्होंने अपनी माता हुलसी तथा अपने गुरु नरसिंहदास का उल्लेख किया है; जिन्होंने अपनी दरिद्रता, अनाथता आदि का वर्णन किया है, वे तुलसीदास एक ऐसी प्रसिद्ध घटना का किञ्चित् सङ्केत-मात्र भी न करें, जो आपकी भावी आध्यात्मिक उन्नति का मूलमन्त्र था, यह कब मानने की बात है। एक बात और भी विचारने योग्य है। यदि आपको किसी भी स्त्री से ज्ञानोपदेश रूपी उपकार हुआ रहता तो, आप कम से कम कृतज्ञता के ख़्याल से स्त्रियों की

(शेष मैटर ३३५ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

भारतीय साहित्य और दूसरे देश के विद्वान्

[ले० श्री० अवध उपाध्याय जी]

जर्मन-देश के प्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ हरमनग्रिम ने लिखा है कि इसमें सन्देह नहीं कि इस संसार में बहुत कवि हो गए हैं; परन्तु यदि मुझसे कोई पूछे कि ऐसे कितने कवि हैं, जिनकी गणना संसार के कवियों में की जा सकती है, तो मैं निस्सङ्कोच भाव से कहूँगा कि केवल चार ही कवि ऐसे हैं जो वास्तव में सारे संसार के कवियों में गिने जा सकते हैं। इनके नाम होमर, दाँते, शेक्सपियर और गेटे हैं। बेचारा हरमन नहीं जानता था कि भारतवर्ष में भी कुछ ऐसे कवि हो गए हैं जो संसार के कवियों में स्थान पाने के योग्य हैं। यदि हरमनग्रिम की आत्मा आज स्वर्ग से उतर कर भारत में आती तो उसके सिर पर महाकवि कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास के ग्रन्थों के ज़ोर से पटकने से उसे विश्वास हो जाता कि भारतवर्ष में भी कुछ ऐसे कवि हो गए हैं, जिनकी समानता—किसी-किसी अंश में—संसार का कोई दूसरा कवि नहीं कर सकता। यदि हरमन की आत्मा आज यहाँ आती तो विवश होकर उसे इन कवियों की महत्ता स्वीकार करनी पड़ती और उसे अपनी बात को वापस लेना पड़ता। यदि किसी कारण से हरमन अपनी बात वापस न भी लेता, तो उसे उक्त नामावली में कुछ भारतीय नामों को अवश्य ही जोड़ना पड़ता।

हरमन ने ऊपर जितने लोगों का नाम लिया है उनमें केवल एक गेटे जर्मनी का है; शेष तीन उसके देश के निवासी नहीं हैं। होमर यूनान का, दाँते इटली का और शेक्सपियर इङ्गलैण्ड देश का रहने वाला है। इसलिए इस सम्बन्ध में उसके—हरमन के—देश के निवासी गेटे की सम्मति का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। जब गेटे ने महाकवि कालिदास की शकुन्तला का अङ्गरेज़ी अनुवाद पढ़ा तो उसका हृदय आनन्द के मारे नाच उठा, वह साहित्य-सागर में बेतरह डूबने-उतराने लगा और उसके मुँह से निम्नलिखित पद निकल गया :—

Wouldst thou see spring blossoms and the
fruits of its decline,
Wouldst thou see by what the souls enraptured
feasted fed;
Wouldst thou have this earth and heaven in
one sole name combine,
I have thee oh Shakuntla ! and all atonce is said.

इस पर भी हमें स्मरण रखना चाहिए कि गेटे ने शकुन्तला नहीं पढ़ा था, किन्तु उसका अनुवाद। वह भी अपनी भाषा जर्मन में नहीं, किन्तु अङ्गरेज़ी में। इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शकुन्तला में कालिदास के काव्य की उस प्रौढ़ता का अस्तित्व नहीं है, जो रघुवंश में पाया जाता है। महाराजा अज के स्वयम्बर आदि और इन्दुमति के विलाप में कालिदास की प्रौढ़ कविता है। उसके सामने शकुन्तला, बाल-कालिदास अथवा युवक-कालिदास की शकुन्तला लड़कों का खेल है!

(३३४ पृष्ठ का शेषांश)

इतनी निन्दा न करते। अथवा सभी स्त्रियों को एक-सा निन्दनीय नहीं समझते, जैसा कि आपके लेखों से स्पष्ट है। ऐसा करने वा समझने से आपके सारे गुणों पर एक अक्षम्य कृतघ्नता पानी फेर देती है।

अन्त में यह निवेदन कर इस लेख का उपसंहार करते हैं कि परम पूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी जाति के ब्राह्मण हों वा अथीथ; चाहे बड़े हों वा छोटे; उनकी जाति-पाँति तथा उनकी त्रुटियों की, त्रिभुवन-तापहारी चन्द्रबिम्ब के कलङ्कों तथा अनन्त रत्नराशि हिमालय के हिमसङ्घातों की तरह, उपेक्षा कर उनके गुणों का ही आदर करना चाहिए; क्योंकि महाभारत हमें उपदेश करता है कि—"न जाति दृश्यते राजन्, गुणाः कल्याणकारक:।"

* * *

गेटे का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'फ़ास्ट' है। इसी ग्रन्थ पर उसकी कीर्ति अवलम्बित है। उसी 'फ़ास्ट' के प्रारम्भ में गेटे ने शकुन्तला की भूमिका की नक़ल की है और अब सभी लोग इस बात को स्वीकार करने लगे हैं। कर्ल-फ्रेडर्न ने लिखा है—इस संसार में केवल एक ही ऐसी कविता है, जो दाँते की कविता की समानता कर सकती है और वह गेटे का 'फ़ास्ट' है। बेचारा कर्ल यह नहीं जानता था कि गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण इन सबों से, महाकाव्य (Epic) की दृष्टि से कई अंशों में श्रेष्ठ है। गेटे के 'फ़ास्ट' के सम्बन्ध में सर थियोडोर मारटिन ने लिखा है—Those who want strong human interest must go elsewhere. They will not find it here. The whole action lies within "the limits of the sphere of dream." It is his (Goethe's) imagination, not his heart that is on fire.

इसका भावार्थ यह है—"जो लोग मनुष्य के हित, कल्याण और श्रेय की इच्छा करते हैं, उन्हें दूसरे स्थान पर जाना चाहिए—उन्हें वे सब बातें यहाँ नहीं मिल सकतीं। फ़ास्ट के सब काम स्वप्न-लोक के मालूम होते हैं। गेटे की कविता में कल्पना की प्रधानता है, हृदय की नहीं।"

इसके विरुद्ध हम लोग जानते हैं कि रामायण में गोस्वामी जी का हृदय खोल कर रक्खा हुआ है और उसमें मनुष्यों के कल्याण, हित और श्रेय की भी पर्याप्त सामग्री है।

इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि 'फ़ास्ट' में कुछ है ही नहीं अथवा 'फ़ास्ट' हर तरह से रामायण से घट कर है, किन्तु केवल यह कि हिन्दी-साहित्य की रामायण एक बार उससे टक्कर ले सकती है और कई अंशों में उसे पछाड़ सकती है।

'फ़ास्ट' की अन्तिम पंक्तियाँ वास्तव में मनोहर हैं:—

All we see before us passing
Sign and symbol is alone
Here, what thought could never reach to
Is by semblance made known ;
What man's words may never utter
Done is act—in symbol shown
Love, whose perfect type is woman
The divine and human blending
Love for ever and for ever,
Wins us onward still ascending.

महाकाव्य-लेखकों में गोस्वामी जी का स्थान

संसार के साहित्य में बहुत महाकाव्य-लेखक हो गए हैं। परन्तु इस बात को सब लोग अब मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि रामायण और महाभारत संसार के सबसे अधिक प्राचीन महाकाव्य (Epic) हैं। इसके बाद होमर का इलियड और ओडिसी लिखा गया। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ लोगों का विचार है कि यूनान में इलियड के पहले भी महाकाव्य लिखे गए थे और उन्हीं के आधार पर होमर ने अपने महाकाव्य की सृष्टि की। इस प्रकार संस्कृत के विद्वानों तथा कई प्रसिद्ध अङ्गरेज़ों ने भी सिद्ध किया है कि पहले-पहल रामायण और महाभारत प्राकृत में लिखे गए थे। उसके बहुत दिनों के बाद वे संस्कृत में लिखे गए। इन सब विवाद-ग्रस्त बातों के विचार करने पर भी भारतीय महाकाव्य प्राचीन ठहरते हैं। इसके अतिरिक्त भारत में और भी महाकाव्य लिखे गए थे, जो आजकल पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ईसामसीह के जन्म के ३० वर्ष पहले वरजिल ने Bellum Punicum के आधार पर 'अनीड' नामक महाकाव्य की रचना की थी। प्राचीन काल में रोम और कार्थेज में कई लड़ाइयाँ हुई थीं। ये सब प्यूनिक युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस समय भी कई महाकाव्य लिखे गए थे, परन्तु उनमें से किसी को सफलता नहीं मिली। चौथी शताब्दी में क्लाडियन ने भी कई महाकाव्यों की सृष्टि की थी। सत्रहवीं शताब्दी के रोलैण्ड नामक महाकाव्य में गीति-काव्य का अंश अधिक है। तब भी यह उस शताब्दी का सर्व-श्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। स्पेन देश में भी कई महाकाव्य लिखे गए थे। इनमें सिड (११३९-७९) का ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। पुर्तगाल वालों का 'ल्यूसिएड' नामक महाकाव्य अधिक प्रसिद्ध है। अङ्गरेज़ों का, स्पेन्सर का 'फ़ेयरीक्वीन' और मिल्टन का 'पैरेडाइज़ लॉस्ट' अधिक प्रसिद्ध है। इसमें सन्देह नहीं की फ़्रान्स में बड़े-बड़े कवि हो गए हैं, परन्तु कोई प्रसिद्ध महाकाव्य-लेखक नहीं हुआ है। इटली में अनेक महाकाव्य लिखे गए हैं। उनमें दाँते

का महाकाव्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। फ़ारसी का शाहनामा भी प्रसिद्ध ही है। जर्मनी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य गेटे का 'फ़ास्ट' है। संसार के और भी महाकाव्यों के नाम लिए जा सकते हैं। परन्तु यहाँ पर इतने ही नाम पर्याप्त होंगे।

यदि इन सब महाकाव्यों का अध्ययन किया जाय तो गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान इन महाकाव्य-लेखकों में बहुत ऊँचा ही नहीं, परन्तु किसी-किसी अंश में सर्व-श्रेष्ठ भी ठहरता है। यदि महाकाव्य की परीक्षक कसौटियों पर इन सब महाकाव्यों की परीक्षा की जाय, तो गोस्वामी जी के रामायण का स्थान बहुत ऊँचा ठहरेगा। इन सब बातों का वर्णन वास्तव में बहुत मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। परन्तु यहाँ पर स्थानाभाव के कारण ऐसा नहीं किया जा सकता ; तथापि इनके सम्बन्ध में दो-एक बातों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

जहाँ पर संसार के काव्य-मर्मज्ञों ने महाकाव्यों का वर्णन किया है, वहाँ पर इन लोगों ने महाकाव्य को जातीय वस्तु माना है। महाकाव्य सम्पूर्ण जाति के लिए लिखा जाता है और जाति में जितना ही इसका प्रचार हो, उतना ही यह सफल समझा जाता है। इस दृष्टि से गोस्वामी जी की रामायण के समान कोई भी ग्रन्थ सर्वप्रिय नहीं हुआ है। इसकी प्रशंसा में सन् १८९४ ई० के Calcutta Review में एक अङ्गरेज़ ने लगभग ९४ पृष्ठों का एक भारी लेख लिखा है। रामायण के सम्बन्ध में ग्रिफ़िथ साहब ने लिखा है :—

The Ramayan of Tulsidas is more popular and more honoured by the people of the North Western Provinces than Bible is by the corresponding classes in England.

अर्थात्—"इङ्गलैण्ड में बाइबिल का उतना प्रचार नहीं है जितना तुलसीदास जी की रामायण का प्रचार भारत के पश्चिमोत्तर देश में है। इतना ही नहीं, रामायण की प्रतिष्ठा भी इन लोगों में उससे अधिक है जितनी इङ्गलैण्ड में बाइबिल की है।" इस रामायण की सहायता से भारतवर्ष अपनी कल्पना के वैभव तथा भीषण उत्कर्ष को सिद्ध करता है।

रामायण के सम्बन्ध में ग्रियर्सन साहब ने लिखा है :—

Tulsidas is a genious whose name will, some day, be inserted by universal consent in the list of the great poets of the world.

इसका भावार्थ यह है—"गोस्वामी तुलसीदास वास्तव में बहुत प्रतिभाशाली थे। इनका नाम एक दिन संसार के सर्व-श्रेष्ठ कवियों में अवश्य लिया जायगा और सब लोग इस बात को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार कर लेंगे कि गोस्वामी जी संसार के शिरोमणि कवियों में से एक हैं।"

सर जॉर्ज ग्रियर्सन साहब ने फिर रामायण के बारे में लिखा है :—

The work of great man abounds in infinite pathos. I still think that Tulsidas is the most important figure in the whole of Indian Literature. In its own country it is supreme above all other literature and exercises an influence which it would be difficult to exaggarate.

भावार्थ—"रामायण एक महापुरुष की कीर्ति है। यह अनन्त प्रेम तथा करुणा के उल्लेख से भरा है। मैं अभी तक यही स्वीकार करता हूँ कि समस्त भारतीय साहित्यज्ञों में तुलसीदास जी सर्व-श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। भारत के समस्त साहित्य-क्षेत्र में रामायण का सबसे ऊँचा स्थान है और उसके प्रभाव के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाय, सब थोड़ा है ; क्योंकि इस सम्बन्ध में अतिशयोक्ति हो ही नहीं सकती।"

रामचरित-मानस के अङ्गरेज़ी अनुवादक ग्रोस ने लिखा है :—

With this small and solitary exception (of the professional Sanskrit Pandits) the book is in every one's hand, from the court to the cottage, and is read or heard and appreciated alike by every class of Hindu-community whether high or low, rich or poor, young or old. The purity of its moral sentiments, and absolute avoidence of the slightest approach to any pruriency of idea, which the author justly advances among his distinctive merits, render it a singularly un-exceptionable text book for native boys. ×××It will, I think, be admitted that a poem of such manifold interest should no longer be with-held from the English reader.

भावार्थ—"कुछ टकापन्थी संस्कृत-पण्डितों के अतिरिक्त तुलसीकृत रामायण राजमहल से लेकर भिखमङ्गों के झोपड़े तक प्रत्येक के हाथ में रहती है। बालक या वृद्ध, ऊँच या नीच, अमीर अथवा फ़क़ीर—प्रत्येक इस पुस्तक (रामायण) का पठन-पाठन, श्रवण तथा अभिनन्दन करता है। इस पुस्तक के भावों की पवित्रता विचित्र है और इसमें अश्लीलता की गन्ध भी नहीं आती। इस पुस्तक के अन्य असाधारण गुणों में यह भी एक प्रधान गुण है कि नैतिक विचारों की दृष्टि से यह अत्यन्त पवित्र है। भारतवर्ष के बालकों के लिए यह एक उत्तम पाठ्य-पुस्तक है।× × ×इस रामायण की कविता कई विचारों से सर्व-श्रेष्ठ है। अतएव इसका प्रचार अङ्गरेज़ी भाषा के जानने वालों में भी अब अवश्य ही होना चाहिए।"

ग्रोस साहब अपनी तुलसीकृत रामायण की प्रस्तावना में लिखते हैं :—

The Hindi poem is the best and most trustworthy guide to the living faith of the Hindu race, a matter of not less practical interest than the creed of their remote ancestors.

भावार्थ—"यह रामायण वर्त्तमान हिन्दुओं के लिए सर्व-श्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रामाणिक पथ-दर्शक का काम दे सकती है। यह बात हिन्दुओं के प्राचीन धर्मों की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टि से कम महत्व की नहीं है।"

स्मिथ साहेब ने 'अकबर दी ग्रेट मुग़ल' नामक पुस्तक के ४१६ वें पृष्ठ में लिखा है :—

It is certain that the theology of Tulsidas approaches so closely to that of Christianity that many passages might be applied to Christian uses by simply substituting the name of Jesus for that of Rama. Greerson cites a long prayer, which as he justly observes, might be printed in a Christian prayer book.

भावार्थ—"यह तो निश्चय है कि तुलसीकृत रामायण के पारमार्थिक तत्व, ईसाई-धर्म के पारमार्थिक तत्वों से बहुत ही अधिक मिलते हैं। इन दोनों में इतनी समानता है कि यदि राम के स्थान पर ईसा का नाम रख दें तो उससे ईसाइयों का भी काम चल जायगा। ग्रियर्सन साहब ने एक लम्बे-चौड़े स्तोत्र को उद्धृत किया है और तब कहा है कि यही स्तोत्र ईसाई प्रार्थना-पुस्तकों में प्रकाशित किया जा सकता है।" ग्रियर्सन साहब का यह कथन बहुत ही सत्य है।

"Ram sums up chivalry and valour, masterly insight and general comradeship and his gigantic passionateness in the conflict with demonic powers reduced the swift footed Achilles to a comparatively tame figure. Not that I depreciate Homer, but the vigour of Ramayan is enormous and India fed from childhood on such poetry can meet Europe without any sence of poetry of imagination. The Hindus may respect the Bible; but it is impossible, they should ever barter their native Epics for the book of Jonah or the legends of Moses or Jesus. They will ever retain the story of Ramayan, as a national heritage and a symbol of their peculiar intellectual and moral genious.

भावार्थ—"रामचन्द्र जी में वीरता, शूरता, व्यापक-बुद्धि तथा विश्व-बन्धुता आदि सब गुण पाए जाते हैं। महाकवि होमर ने एचलिस की कथा का वर्णन किया है। रामायण में रामचन्द्र जी ने राक्षसों का सामना किया। परन्तु रामचन्द्र जी की अलौकिक निश्चलता की तुलना में एचलिस बहुत ही घट कर तथा न्यून है। मेरे इस कथन से यह नहीं समझना चाहिए कि मैं होमर का मूल्य घटा रहा हूँ। रामायण वास्तव में अगाध है। इसका ओज प्रशंसनीय है। ऐसी कविता के बल पर भारत, कल्पना के मैदान में भी यूरोप को तुलना के लिए ललकार सकता है। भारत को इस अंश में यूरोप के सामने नत-मस्तक नहीं होना पड़ेगा। सम्भव है कि हिन्दू लोग बाइबिल का सत्कार करें, परन्तु वे अपनी रामायण के बदले में जोना, मूसा तथा ईसामसीह की कथाओं को ग्रहण नहीं कर सकते। हिन्दू लोग रामायण को राष्ट्र का परम्परागत ऐश्वर्य तथा नैतिक और बौद्धिक अभ्युदय का प्रमाण ही समझेंगे। वे रामायण को एक जातीय जागीर समझते हैं।"*

---

* Literary Guide (June 1st 1909) p. 85.
लिटेरेरी-गाइड प्रथम जून १९०९, पृष्ठ ८५

दाँते के ग्रन्थ और रामायण

इसमें सन्देह नहीं कि दाँते के ग्रन्थ भी कई दृष्टि-कोण से अत्यन्त ही महत्व के हैं। परन्तु उन्हें बहुत ही कम लोग पढ़ते हैं। जिस प्रकार गोस्वामी जी श्रीराम-सीता से प्रेम करते थे, उसी प्रकार दाँते अपनी प्रेमिका 'बीए ट्राइस' को प्यार करता था। जिस पवित्र प्रेम का दाँते ने चित्र खींचा है, वह संसार के साहित्य में दुर्लभ है। जिस प्रकार से गोस्वामी जी को श्रीराम-सीता के गुणों के वर्णन करने में आनन्द आता था, उसी प्रकार से बीए ट्राइस के गुण-गानों से दाँते को बड़ी शान्ति मिलती थी, जैसा कि नीचे लिखी हुई पंक्तियों से प्रकट होगा :—

Ladies that have inteligence in love
Of mine own lady I would speak with you.
Not that I hope to count her praises through.
But telling what I may, to ease my mind,
And I declare that when I speak thereof
Love sheds such perfect sweatness over me
That if my courage failed not, certainly.

* * *

जिस प्रकार गोस्वामी जी की कविता से स्पष्ट मालूम होता है कि ये श्रीसीता-राम की हर एक अदाओं पर क़ुरबान हो जाते थे, उसी प्रकार दाँते अपने वास्तविक जीवन में बीए ट्राइस पर मर-मिटने और निछावर हो जाने के लिए तैयार रहता था। जब दाँते की अवस्था केवल ९ वर्ष की थी, तभी इसने अपनी आठ वर्ष की प्रेमिका बीए ट्राइस को देखा था। जब बीए ट्राइस मर गई तो उसकी मृत्यु के स्थान को वह रात के समय घण्टों देखा करता था और वहीं चित्र की तरह खड़ा रहता था। हमें स्मरण रखना चाहिए कि दाँते के प्रेम में वासना का अंश बिलकुल नहीं था। वह प्रेम को एक स्वर्गीय ज्योति समझता था। बीए ट्राइस के प्रेम के बारे में लिखा है :—

She turned her eyes thither where I stood sorely abashed and by her un-speakable courtesy saluted me with so virtuous a hearing that I seemed then and there to see the limits of all blessedness.

जिस प्रकार गोस्वामी जी अपने हृदय के अन्तस्तल में समझते थे कि वह एक अपूर्व ग्रन्थ लिख रहे हैं, उसी प्रकार दाँते भी अपनी सृष्टि की श्रेष्ठता में ख़ूब विश्वास करता था। उसने इस सम्बन्ध में कई स्थानों पर उल्लेख किया है। इन दोनों महाकवियों के जीवन में कई विषमताएँ और समानताएँ हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्मिथ ने लिखा है कि अकबर के दरबार में इनको कोई जानता भी नहीं था। परन्तु यही बात दाँते के बारे में नहीं कही जा सकती। वह अपने समय का एक भारी राजनीतिज्ञ था और राजनैतिक दार्शनिक भी। दाँते राजनीति में सदा भाग लिया करता था। इसी झगड़े में उसे अपने देश फ़्लॉरेन्स से सदा के लिए भाग जाना पड़ा। कवि की निम्न-लिखित उक्ति दाँते के सम्बन्ध में ठीक उतरती है :—

Heaven opened wide its doors to him
While his door city drove him from her own.

अर्थात्—"स्वर्ग ने उसके लिए अपना फाटक अच्छी तरह से खोल दिया, परन्तु उसकी परम प्यारी नगरी ने उसे मार कर बाहर भगा दिया।"

दाँते का अन्तिम जीवन बड़ा ही करुणाजनक तथा मर्मस्पर्शी है। इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामी जी को भी भारत के लोगों ने बहुत तङ्ग किया था। गोस्वामी के सम्बन्ध में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। गोस्वामी जी ने रामायण में इन दुष्टों की अव्यक्त रूप से ख़ूब निन्दा की है। परन्तु दाँते के अपमान के सामने गोस्वामी जी के ये सब अपमान नहीं के बराबर हैं। जब राजनैतिक क्षेत्र में दाँते की पराजय हो गई तो संसार के प्रत्येक बड़े मनुष्यों की तरह दाँते अकेला ही अपने पक्ष पर हिमालय पहाड़ की नाईं डटा रहा। अन्त में उसे अपने प्यारे देश फ़्लॉरेन्स को छोड़ कर भाग जाना पड़ा। रेवेना वालों ने दाँते का बड़ा सत्कार किया और वहाँ पर भी उसने अपनी राजनैतिक प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ के राजा ने उसे राजदूत बना कर वेनिस भेजा भी था। रेवेना में ही दाँते ने अपने अमर-काव्य की सृष्टि की। वहीं पर दाँते अपने देश—फ़्लॉरेन्स—के लिए आँसू बहाया करता था। उसे कोसता था और अमर कविता की

सृष्टि भी करता था। उसे आशा थी कि एक दिन उसके देश वाले उसकी कविता पर मुग्ध होंगे और उसे फ़्लॉरेन्स बुलाएँगे, परन्तु उसके कृतघ्न देश ने उसकी प्रतिभा का कुछ भी मूल्य नहीं समझा और उसके जीवन-काल में उसकी प्रतिष्ठा नहीं की। विदेश में ही, सन् १३२१ ई० में रेवेना में दाँते मर गया, और बड़े समारोह के साथ उसी देश में—विदेश में—गाड़ दिया गया। उसके मर जाने के बाद उसके देश के निवासियों ने दाँते का महत्व समझा और उसकी हड्डी को अपने देश में लाने का विचार किया। परन्तु रेवेना वालों ने उसकी हड्डी को देना अस्वीकार कर दिया। उसके बाद लगभग ६०० वर्ष तक दाँते के देश वाले उसकी हड्डी को अपने देश में लाने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु उन्हें कभी सफलता नहीं प्राप्त हुई। अन्तिम बार उन्होंने सन् १८६४ ई० में दाँते की हड्डी माँगी थी, परन्तु रेवेना वालों ने नहीं दिया, नहीं दिया, नहीं दिया।

नेपोलियन के मरने के लगभग सौ वर्ष बाद उसकी हड्डी फ़्रान्स में लाई गई और गाड़ी गई थी। विक्टर ह्यूगो के मर जाने के एक वर्ष के बाद उसका नाम फ़्रान्स की एकेडमी के सदस्यों में लिखा गया था। नेपोलियन और विक्टर ह्यूगो के इतिहास का यह अंश बड़ा मनोहर तथा मनोरञ्जक है। परन्तु उसके लिए यहाँ स्थान नहीं है।

होमर और महाभारत

इसमें सन्देह नहीं कि संसार भर में कई महाकाव्य लिखे गए हैं, परन्तु प्रचार की दृष्टि से रामायण प्रथम है। इस दृष्टि से दूसरा नम्बर होमर के ग्रन्थों को प्राप्त है। पाश्चात्य देश में इसका ख़ूब प्रचार है, और लोगों का विचार है, कम से कम पाश्चात्य देश में जितना प्रचार होमर का है उतना और किसी दूसरे महाकाव्य का नहीं है। होमर की कथा और महाभारत की कथा में बहुत समानता है। डायन क्रिसोसटम (Dion Chrysostom) ने लिखा है कि भारतवर्ष के लोग भी होमर के काव्य को अपनी भाषा में गाते हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि डायन का अभिप्राय महाभारत से है। होमर के ग्रन्थों और महाभारत में इतनी समानता है कि सब लोगों को मानना पड़ता है कि या तो महाभारत के आधार पर होमर ने अपने ग्रन्थों की सृष्टि की हो अथवा होमर के आधार पर महाभारत लिखा गया हो। वास्तव में यह विवादपूर्ण प्रश्न है। कुछ लोग महाभारत को मौलिक मानते हैं और कुछ लोग होमर को। परन्तु अकाट्य प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि महाभारत होमर के ग्रन्थों से बहुत पहले बना था।

लैसन साहब ने सिद्ध किया है कि महाभारत मौलिक ग्रन्थ है और महाभारत में धृतराष्ट्र के स्थान पर होमर में प्रायम हैं। इन दोनों ग्रन्थों में चरित्रों की बहुत समानता है, जो निम्न-लिखित बीजगणितीय सूत्र से दिखलाई जा सकती है :—

व्यास	... ...	होमर
महाभारत के पात्र	...	होमर की इलियड के पात्र
धृतराष्ट्र	... ...	प्रायम
गान्धारी	... ...	एण्ड्रोपेची
द्रौपदी	... ...	हिक्यूबा
अर्जुन	... ...	एचिलिस
कर्ण	... ...	हेक्टर

इसके अतिरिक्त कई प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि होमर के ग्रन्थों से महाभारत अधिक प्राचीन है। यदि दोनों ग्रन्थों को मौलिक और एक दूसरे से स्वतन्त्र मान लें तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है। यदि दोनों ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय, तो यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो सकती है कि महाभारत इलियड से अच्छा है। महाभारत का चरित्र-चित्रण इलियड के पात्रों के चरित्र-चित्रण से कहीं श्रेष्ठ है। महाभारत के भीतर गीता है। इलियड का कोई ऐसा भाग नहीं है जो गीता की समानता करने का साहस कर सके। महाभारत की श्रेष्ठता कई प्रकार से सिद्ध की जा सकती है। परन्तु ऐसा करने के लिए यहाँ न तो समय है और न आवश्यकता ही। *

*यह लेख लेखक महोदय ने अपने उस भाषण के आधार पर लिखा है, जो बलिया में चौथी मई को होने वाली हिन्दी-प्रचारिणी सभा के सभापति की हैसियत से दिया था।

—स० 'चाँद'
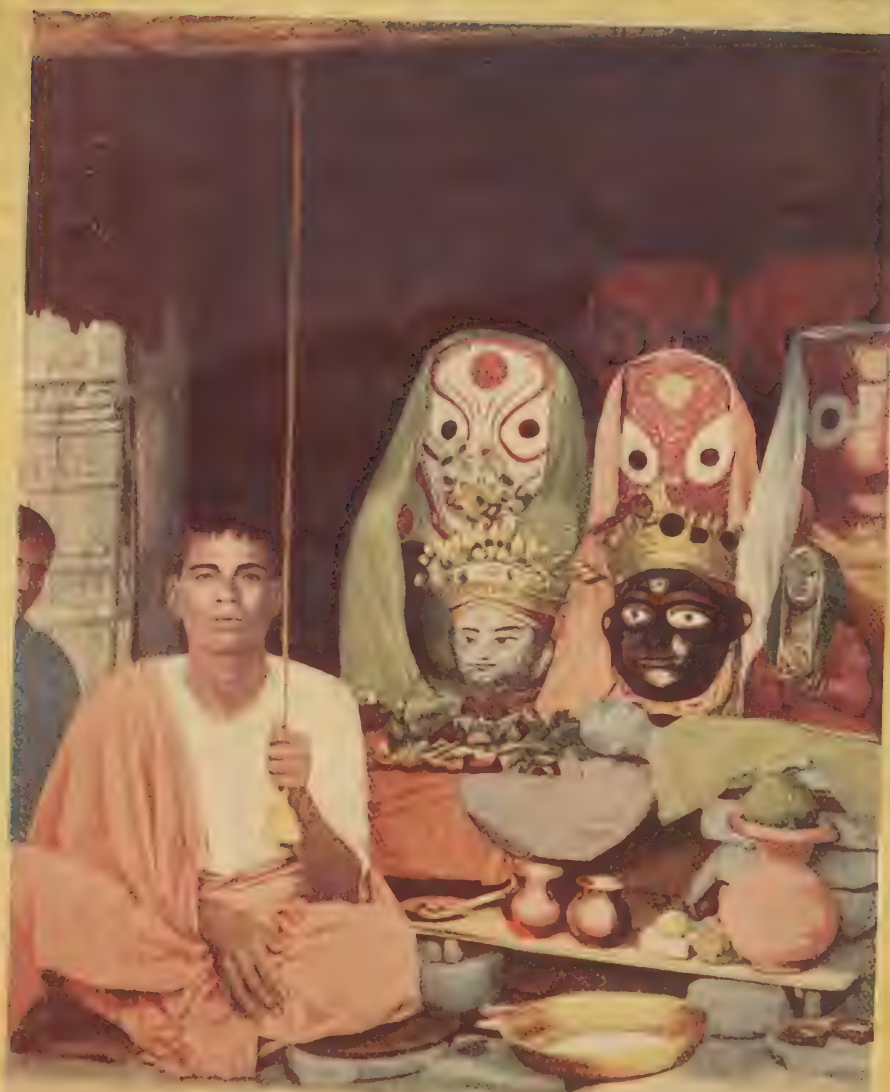
हिन्दी-प्रेमी-मण्डल मैसूर के उत्साही सदस्य तथा उनके माननीय अतिथिगण सन् १६२६ ई०

कुरसी पर बैठे हुए बाईं ओर से—

(१) श्रीमती कालम्मा, (२) श्रीमती वेङ्कट सुब्बम्मा, (३) श्रीमती गुण्डम्मा, (४) श्रीमती नागम्मा एम० ए०, एल० टी०, (५) श्रीयुत डब्लू० रां० इग्नेशिश [प्रचार-मन्त्री], (६) श्रीयुत जे० सी० रोलो एम० ए०, (७) श्रीयुत ए० आर० वाडिया, बी० ए०, बार-ऐट-लॉ, (८) सेठ जमनालाल बज़ाज़, (६) श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, (१०) श्रीमती के० डी० रुक्मिणी अम्मा बी० ए०, (११) श्रीमती सुन्दरी बाई, (१२) श्रीमती कनक लक्ष्म्मा एम० ए०, (१३) श्रीमती रत्नअम्मा, (१४) श्रीमती चम्पाबाई।

बैठी हुई पंक्ति में बाईं ओर से—

(४) श्रीयुत एम० वी० जम्बूनाथन, एम० ए०, बी० एस्-सी० [मन्त्री], (६) श्रीयुत जमुनाप्रसाद श्रीवास्तव [हिन्दी-प्रचारक]

नारी-रहस्य

एलिज़ाबेथ रॉबिन्स (Elizabeth Robins) नामक एक पाश्चात्य देशीय महिला ने बङ्गलोर से निकलने वाली 'प्रेम' नामक एक उच्च कोटि की अङ्गरेज़ी त्रैमासिक पत्रिका में स्त्रियों की परिस्थिति के विषय में एक बड़ा ही मार्मिक और उत्तेजना-पूर्ण लेख लिखा है। स्त्रियों में सामाजिक क्रान्ति की कितनी भयङ्कर भावना आ गई है, यह इस लेख से स्पष्टतः प्रकट हो जाता है। लेख इस क्रान्तिकारी महिला के जलते हुए हृदय का उद्गार है। पाठक-पाठिकाओं की जानकारी के लिए हम यहाँ इस लेख का अनुवाद नीचे देते हैं :—

यद्यपि यह ठीक है कि स्त्रियों का आन्दोलन एक निश्चित रूप को प्राप्त कर सकता है, तथापि इसका एक सामयिक रूप, जो बहुत कम ही देखने में आता है, ऐसा है जिस पर कुछ लोगों को दुःख होता है। यह मानी हुई बात है कि पुरुषों ने जान-बूझ कर उन सारे अन्यायों को उत्पन्न कर रक्खा है जिन्हें स्त्रियों को सहना पड़ता है। इससे मालूम होता है कि पुरुष पहले से ही अधिक शक्तिशाली हैं और बुराइयों से भरे हैं।

जहाँ तक मैं जानती हूँ, अधिकांश सुधारिकाएँ, जब स्त्रियों को ऐसी चर्चा करते सुनती हैं मानों पुरुष उनके विरुद्ध षड्यन्त्र में लगे हों, तो बहुत दुःख के साथ चौंक उठती हैं। जब हम उन दलीलों को सुनती हैं, जिनसे स्त्रियाँ प्रकाश की परियाँ और पुरुष अन्धकार की मूर्तियाँ बन जा सकते हैं, तो अपनी अपूर्णताओं को अनुभव करते हुए हम कुछ लज्जित सी हो जाती हैं।

जहाँ तक हम देख सकती हैं वहाँ तक तो पुरुषों और स्त्रियों के बीच यही भेद पाती हैं कि जहाँ पुरुष प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध लड़ सकने की उम्मीद करते हैं वहाँ उन लोगों ने स्त्रियों के लिए ऐसा न करना ही प्रधान गुण बना रक्खा है।

जब हम यह विचारने लगती हैं कि जिस परिस्थिति में हम पड़ी हैं उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई, तो यह विश्वास कभी नहीं होता कि पुरुष किसी समय एकत्र होकर इस बात का निश्चय किए हों कि—"चलो स्त्रियों को ग़ुलाम बना लें!" इसके विपरीत इस बात में भी सन्देह करना कठिन होता है कि हम सबों ने बाधा न डालने के मार्ग का ही अनुसरण किया और यह कि इस मार्ग ने स्त्रियों को युद्ध-क्षेत्र के अन्दर शारीरिक बल के व्यवहार में इतनी निकम्मी बना दिया कि जिस काम में उन्होंने हाथ डाला उसी काम में वे परास्त हुईं।

जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी वैसे-वैसे स्त्रियों के हाथ कोमल और छोटे होते गए और पुरुषों के हाथ बड़े और कड़े होते गए, क्योंकि उन्होंने किसी को पकड़ने और चोट पहुँचाने का अभ्यास किया। इन दो जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध के बनने में किसी एक को यश या अपयश नहीं दिया जा सकता। असभ्यों से यही सब से अच्छा प्रबन्ध हो सकता था। इसमें आज एक कठिनाई यही मालूम होती है कि इस सम्बन्ध का उद्देश्य

बहुत दिन पहले ही पूरा हो चुका और अब यह निकम्मा हो गया है। हम सभी स्त्री और पुरुष अब उस हालत में पहुँचे हैं जहाँ कुछ अच्छा उपाय निकालना होगा। पर हम लोग तब तक भूतकाल को अच्छी तरह नहीं समझ सकते और न भविष्य की सुधार-योजना तक पहुँच सकते हैं, जब तक स्त्रियाँ इस बात का अनुभव नहीं करतीं और स्पष्ट रूप से इसे स्वीकार नहीं कर लेतीं कि पुरुष भी उन्हीं की तरह परिस्थिति के ही शिकार बने हुए हैं।

इन पंक्तियों के लिखने के दो उद्देश्य हैं। एक तो ऐसी दलील का पेश करना—अगर ऐसा करने की अनुमति दी जाय—जो कि बहुत दिनों की नासमझी को हटा सके। दूसरा उद्देश्य है हम सब जिस परिस्थिति में बहुत दिनों से पड़े हैं उसका प्रधान कारण बताना और यह दिखाना कि—"इसका कारण भूतकाल में स्त्रियों की अस्पष्टवादिता है।"

जब मैं स्त्रियों को अस्पष्टवादिनी कहती हूँ तो इस बात को भूलती नहीं कि वह बहुत दिनों से वाक्चपल जाति कही जाती हैं! बहुत लोगों की तो यह दृढ़ धारणा है कि उनमें किसी बात को गुप्त रखने की योग्यता है ही नहीं। तथापि स्त्रियों ने रहस्य की जैसी रक्षा की है वैसी रक्षा किसी ने न की, जैसा कि उन लोगों ने, जिन्होंने उन्हें एक पहेली की वस्तु समझा है, कहा है।

प्रत्येक भाषा में, संसार की उन्नति की भिन्न-भिन्न दशाओं में हम सबों ने नज़र के सामने के सभी विषयों पर पुरुषों के विचार देखे हैं। इन विषयों में 'स्त्री' भी एक विषय है। स्त्रियों ने इन विषयों पर क्या सोचा, इस बात पर प्राचीन ध्वस्त नगरों की खुदाई या प्राचीन लेखों ने कभी प्रकाश नहीं डाला। इतिहास, सङ्गीत, शिला-लेख, कहानी—ये सब संसार के सुसज्जित लेख-रत्न चाहे किसी कार्य अथवा भावना के द्योतक हों—कुल पुरुषों के मस्तिष्क के प्रतिबिम्ब हैं।

भारत से लेकर मिश्र तक और यूनान से लेकर युक्रेन तक विद्वान् लोग बीती बातों को प्रकाश में लाने की चेष्टा कर रहे हैं। सारे सभ्य संसार में लोग पुरानी खोई हुई सुन्दर वस्तुओं के आविष्कार के विषय में सुनने की बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वे एक मिनियन निवासी के अपने मुख से—दूसरे के मुख से नहीं—अपने विषय में कुछ कहने की बात सामुद्रिक तार द्वारा सुनते हैं तो चकित हो जाते हैं। सारी सभ्य दुनिया इस बात को सुनने की इन्तज़ारी कर रही है कि मिनियन सभ्यता के व्यक्ति क्या विचारते और क्या अनुभव करते थे। लेकिन वर्तमान काल की वस्तुएँ तब तक पड़ी रहें जब तक वे भी धूल में नहीं मिल जायँ! जब तक उनकी यह छोटी ज़िन्दगी है तब तक वे संसार की सभी भाषाओं की पुस्तकों को पढ़ जायँ, मिट्टी के बर्तन और पत्थर के लेखों का अध्ययन करें। पर वे आधी बातें ही जान सकेंगे! स्लीमेन छः भिन्न नगरों की गहराई में एक के बाद दूसरे ट्रॉय का पता लगावें, पर वे हेलेन के विचारों का हाल नहीं जान सकते। सारी आवाज़ जो आज बन्द नहीं है, बरन् गूँज रही है, पुरुषों की ही है।

कुछ लोग इसका मतलब स्त्रियों का अपमान लगावेंगे, क्योंकि इसमें वे स्त्रियों के अपने भाई पुरुषों के साथ सभ्य-समाज में एक सतह पर खड़ा होने के पुराने हक़ की उपेक्षा देखते हैं। परन्तु इतिहास के इस प्रकार के अध्ययन से पुरुषों के कामों की उतनी ही कम जानकारी होगी जितनी कि स्त्रियों के कामों की।

अगर मैं उस प्रबल जाति की होती तो, मैं समझती हूँ, मुझे यह निश्चय नहीं रहता जैसा कि बहुत से अच्छे आदमियों को है, कि वे स्त्रियों के लिए कुछ कहने में सुदक्ष हैं। अगर मैं एक पुरुष रहती और अपने रहने की दुनिया को जानने की परवा करती तो सोचती हूँ, संसार के आधे भाग की इस लम्बी चुप्पी से मुझे बड़ी बेचैनी रहती। मेरी यह बेचैनी और भी अधिक रहती यदि मैं पुरुष होकर यह अनुभव करती कि स्त्रियाँ अपनी पुरानी बातों पर दृढ़ बनी हुई हैं। जब मैं स्त्रियों को बकझक करते सुनूँ तो, मैं सोचती हूँ, उनके इतनी बातें करने पर भी कुछ नहीं कहते देख कर मुझे दुःख नहीं हो। यदि पुरुष हम सबों से अधिक जानकारी रखते हैं तो इससे क्या? और यदि वे अपनी इतनी जानकारी के कारण अपने रहस्य को छिपा सकते हैं तो कौन बड़ी बात है? कोई इस बात को न सोचे कि स्त्रियों की वह पुरानी कपटता अब भी बढ़ी-चढ़ी है।

उस अथाह चुप्पी की गहराई का कुछ पता हम तब पाती हैं, जब हम देखती हैं कि स्वतन्त्रता के इस युग

में भी स्त्रियों के विचार और अनुभव संसार के विशाल रङ्गमञ्च पर कितना कम अपना प्रकाश फैलाते हैं।

हम लोग याद रक्खें कि यह बिलकुल कल की बात है कि स्त्रियाँ, चाहे उनकी संख्या जो हो, सार्वजनिक प्रेसों में कुछ लिखने लगी हैं। परन्तु लेखनी उठाने में उन्होंने अपना कर्तव्य क्या विचारा? क्या अपने या दूसरी स्त्रियों के वास्तविक विचार और भावनाओं को प्रकट करने के लिए? नहीं, इससे वे बिलकुल दूर रहीं। उनका कर्तव्य—जैसा कि उन्होंने इसे स्वभावतः और निःसन्देहपूर्वक समझा—केवल पुरुषों की रीतियों का पूरा अनुकरण करना था। उन्होंने अपनी कहानियाँ वैसे ही लिखीं और उसी कारण लिखीं जैसी कि उन्होंने अपने गाउन की सजावट पसन्द की और अपनी रहन-सहन बनाई। साहित्य में भी उन्होंने केवल उस भूले हुए उस्ताद—प्रथम जातीय कहानी लेखक और "पुरुष की नारी" (The man's woman) के आविष्कर्त्ता के पद-चिन्ह का अनुसरण किया है।

अनुकरण करने में उन्हें कोई दुर्दमनीय कठिनाई नहीं हुई, जैसा कि बहुत सी सुदक्ष और सुप्रसिद्ध उपन्यास-कारिकाओं की कृतियों से ज़ाहिर होता है। तथापि उनकी किसी प्रकार अधिक प्रशंसा नहीं की जाती; क्योंकि पुरुष मुश्किल से उन्हें स्त्रियों की रचना समझ कर उनके लिए यश देते हैं। वे अपनी असाधारण योग्यता दिखला सकती थीं, पर उन्हें अपना ज्ञान छिपाए रखने के मज़बूत कारण थे। यद्यपि वे सदा से सचेत थीं, तथापि पुरानी कहानियों की प्रतिध्वनि करने में ही उन्हें सन्तुष्ट रहना पड़ा! वे पुरुष-शासित संसार में कठपुतली की तरह रहीं, ठीक वैसे ही जैसे कि बहुत से जीवों को प्रारम्भ से पुरुषों की कृपाओं का भिखारी रहना पड़ा है।

सार्वजनिक विचारों के विरुद्ध अपने वास्तविक विचारों को प्रेसों में प्रकाशित करना स्त्री-उपन्यास-कारिकाओं तथा पत्र-कारिकाओं के लिए एक ऐसी चीज़ है जिसे वे शीघ्र ही करने का साहस नहीं कर सकतीं। प्रेस में प्रकाशित करने के लिए भी उन्हें सब स्थानों में—जब तक वे बिलकुल लापरवा न हो जायँ—सदा अपने पुरुष भाइयों को ख़ुश रखने का अवसर ढूँढ़ने की चेष्टा करनी पड़ती है। उनके प्रकाशक तो स्त्री हैं नहीं। फिर प्रकाशकों के सलाहकार और पाठक तो पुरुष ही हैं। समालोचक भी तो पुरुष ही हैं। धन, यश, ये सब पुरुषों को ही प्राप्त हैं। अतः यदि वे कभी पुरुषों से कुछ आगे बढ़ जाती हैं तो उन्हें बड़ा सचेत होकर चलना पड़ता है, क्योंकि उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं पुरुष अधिक नाख़ुश न हो जायँ। परन्तु मैं इन बातों को पुरुषों के सामने रखती हूँ; क्या विश्वासपात्र इतिहासकारों का यही भाव होना चाहिए? क्या यह उन प्रसिद्ध झूठे और ख़ुशामदी लोगों के भावों के सदृश नहीं है जो पिछले दिनों में अपने शक्ति-सम्पन्न आश्रय-दाताओं के सामने नीचतापूर्वक दिखलाए जाते थे, जिन्हें जान कर हमें हँसी या लज्जा आती है? जूता चाटने वाली विद्वान् पुरुष-मण्डली के द्वारा राजों-महाराजों के विषय में हम जितना कम निर्णय कर सकती हैं, पुरुष स्त्रियों के सूत कातने की परियों की कहानी द्वारा स्त्रियों के विषय में उससे शायद ही ज़्यादा जान सकते हैं। स्टेफ्रेन्शन के कथनानुसार सूत कातने वाली चाहे कितना ही मुँह क्यों न बनाए और स्टेफ्रेन्शन चाहे ऐसा ही क्यों न कहें "अब मैं कितना यथार्थदर्शी हूँ।"

अभी जो वास्तव में वे कर रही हैं वह केवल पुरुषों का कार्य कर रही हैं और देख रही हैं कि वे इस तरह बिलकुल पुरुषों की भाँति कार्य कर सकती हैं या नहीं। जो काम वे कर रही हैं वे पुरुष के हैं—इस विषय को वे इतना अच्छी तरह से जानती हैं कि वे अपने नाम के आगे उनके नाम लगा लेती हैं। वे ऐसा करती हैं इसलिए नहीं कि बड़ी-बड़ी बातें हाँकने और कभी-कभी डींग मारने में उन्हें इससे साहस मिले, वरन् इसलिए कि इसके द्वारा पुरुषों को वास्तविक बात का पुनर्विश्वास हो जाय। वे बतलाती हैं कि ये बातें तुम्हारी ही लाइन पर हैं; देखो मेरा नाम भी 'जॉर्ज' है!

उनका यह रूप बदलने का भाव बहुत ठीक है। क्योंकि सब लोग यही विचारते हैं कि किसी स्त्री की पुस्तक तो उसके छोटे व्यक्तित्व के बढ़ाने के लिए एक साधारण सा प्रयत्न है। हम साधारणतः पुरुष-रचित नायकों को ग्रन्थकार के साथ मिलान नहीं करती हैं। जब कोई पुरुष चरित्र के एक वृत्तखण्ड पर या नाटक की परिस्थिति पर विचार करने बैठता है और बड़ी प्रतिभा के साथ अगर वह झुकावों पर चलता हुआ पूरे वृत्त को

समाप्त कर डालता है तो जीवनी के उस काल्पनिक ढाँचा की बड़ी तारीफ़ होती है। उसका समालोचक कहता है—"वाह! यह आदमी कैसी अच्छी कल्पना-शक्ति रखता है!"

परन्तु अगर एक स्त्री इस कार्य को करती है—जो कठिन आत्म-संयम और गणितिक दुरुस्ती का काम है—और वह अपने काम में सफल होती है तो उसका समालोचक किसी तरह उसकी पीठ तो ठोंकता है, परन्तु सोचने लगता है कि इसे आत्म-अनुभव है या नहीं। या वह यह भी विचारने नहीं लगता—वह यह कह कर ही सन्तोष कर लेता है कि यह वास्तविकता के इतना निकट है कि यह ज़रूर किसी ऐसे व्यक्ति का लिखाया हुआ होगा जिसकी स्मरण-शक्ति बड़ी अच्छी रही हो। यह सजीव चित्र अवश्य आत्म-चरित्र है। लेखिका ही इस पुस्तक की नायिका है और जैसा वह ख़ुद सोचने की इच्छा रखती है वैसे ही नायिका से दिखलाती है और जैसा अपने होने की उम्मीद रखती है वैसा ही उससे पूर्व-कथन कराती है। इस चरित्र के विचार और इच्छाएँ ज़रूर उपन्यासकारिका की अपनी हैं।

परन्तु जब उसकी कई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और उनकी नायिकाएँ भावों, विचारों और बाहरी आकृतियों में परस्पर भिन्न रहती हैं तो उन्हें भी वे तुच्छ वस्तु समझ कर ध्यान नहीं देते। हाँ, अगर पुस्तक में कोई नायिका नहीं हो तो लेखिका क्योंकर कहानी का नायक होने चले। तब वह सोचता है—हाँ, ज़रूर उसे कल्पना-शक्ति है, परन्तु वह किसी काम की नहीं।

अगर स्त्री ने 'मैकवेथ' (Macbeth) लिखा होता तो यह ठीक है कि उसने ज़रूर अपने पति को मार दिया होता। या अगर वह उसका पति नहीं रहता तो यह और भी लज्जा की बात होती!

जब तक समाज भिन्न रूप से नहीं बनता तब तक कोई इस बात की आशा न करे कि साधारण स्त्रियाँ अपनी पुस्तकों में सच्ची बातों के उल्लेख करने का कुछ भी साहस करेंगी।

पुरानी पीढ़ियाँ इस बात की शिकायत कर सकती हैं कि झूठी साक्षी के अभिशाप ने तुम्हें ढक लिया है, परन्तु अन्त में उन्हें अपनी असत्यता पर विश्वास हो जायगा।

युवती और स्पष्टदर्शिनी स्त्रियाँ भी अपने महान् और नवीन कर्त्तव्य के आगे लज्जित होकर खड़ी रह सकती हैं और दूसरी पीढ़ियों के लिए एक दूसरे परदे को तैयार करने के हेतु पुस्तकें लिख सकती हैं, जब तक कि वे अपनी रोटियाँ—या शायद अपनी चपातियाँ बनाती रहेंगी।

यदि सत्य कहने की योग्यता भी ख़ुद एक गुण है, जैसा कि कहा जाता है, तो वर्तमान आदर्श को फिर सामने रखने का हमारी बुद्धि का काम बहुत आसान है। इसपर अधिक ज़ोर नहीं दिया जा सकता है कि हम सभों को जो कुछ भी विशेष ज्ञान था, विद्वान्-जगत् के लिए जो कुछ भी नया था, या व्यक्तिगत जीवन के लिए जो कुछ भी बेचैनी पैदा करने वाला था—उसमें स्त्री-लेखिकाओं ने वैसी ही सफलता प्राप्त की जैसी कि मिश्र की स्त्रियों ने; जो तीस शताब्दी पूर्व उन क़ब्रों के नीचे गाड़ दी गईं जिन पर पुरुषों ने उनकी कहानियों का वर्णन किया है।

एक प्रकार की प्रशंसा में पुरुष बड़े सावधान होते हैं। स्त्रियों को नम्र स्वभाव देने को सदा तैयार रह कर उन्होंने साधारणतः हँसी का एक अपवाद बना रक्खा है। कुछ लोग इसमें निर्दोषता दिखलाते हैं जो दो कारणों से उनमें है। यदि सच कहा जाय तो हास्य का मूल बहुत साधारण है। इसकी उत्पत्ति हुई है निर्दयता से या उस सुख से जो दूसरे के दुःख या अपमान में होता है, जिसकी उपमा निष्ठुर पशु-युद्ध से दी जा सकती है। मालूम पड़ता है कि स्त्रियों की स्वाभाविक सहानुभूति और दया-भाव ने ही उन्हें सुखान्त कार्यों के नीच विचारों में भाग लेने से रोका है, जो कि हमारे पिछले दिनों में युहूदियों के समय मनोविनोद के कारण थे। स्त्रियों का आश्चर्य करना क्षम्य है, अगर वे उस जाति के—जिसने उन्हें हास्य-रहित प्रसिद्ध कर रक्खा है—हास्य के ख़ज़ाने को अपने कोमल स्वभाव से नहीं जान सकती हों।

इन रोशनी के दिनों में जब कम अस्पष्टवादिनी स्त्रियों को—जिन्हें पुरुष 'अपवाद स्त्रियाँ' कहते हैं—हास्य का यह भेद, जो बहुत दिनों से रुका रक्खा था, व्यवहार करने के लिए इजाज़त मिली है, तब उन्होंने अपनी 'अपवादता' को यहाँ भी धरोहर की तरह ग्रहण किया है।

क्योंकि अपनी जाति की अधिक जानकारी भी, स्त्रियों के उपार्जनों में, सबसे नई चीज़ है। प्रायः प्रत्येक स्त्री कुछ पुरुषों को ख़ूब अच्छी तरह जान गई है। अन्य स्त्रियाँ तो ख़ुद अपने लिए भी एक वैसे ही पहेली की वस्तु हैं जैसे कि वे पुरुषों के लिए।

अब हम यह देखना प्रारम्भ करती हैं कि यह हास्य का भाव—"एक छोटा अस्त्र" हलका, और नाज़ुक हाथों के व्यवहार करने योग्य—स्त्री-शस्त्रागार में एक साधारण तलवार मालूम पड़ता है, बनिस्बत उस विशाल शस्त्र-भवन के जहाँ पुरुष-जाति के बड़े-बड़े तीर-तोप सजे पड़े हैं।

परन्तु चूँकि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर रहा और इस कारण हज़ारों वर्ष पहले उसने वहाँ उस हास्य का पता लगा रक्खा है जो बड़े कठिन नियमों के अन्दर ही सफलता ला सकता है। उसने इसे अपने स्वामी के न झुकने के चिन्ह को समझ कर अपनाया है। उसने पेलिकन पक्षी की तरह अपने हृदय-प्रदान की क्रिया से उसमें भी इसका सञ्चार कर दिया है। उसने स्वामी के आनन्द के लिए अपने को समर्पण कर पारिवारिक सुख की वृद्धि की है।

उसने अवश्य ही पहले देखा होगा कि जब धनुष हाथ में हो, और वाण उनका (पुरुष का) पता लगाता हो तो विन्दु छोटा मालूम पड़ते हुए भी वह किस प्रकार निशाना छोड़ देने में ख़ुश थी।

अगर उसे अपनी चातुर्यहीनता की अफ़वाह के फल-स्वरूप सान्त्वना की आवश्यकता थी तो यह उसे इस कथन में मिली कि—"कोई आदमी अपने निकटतम सम्बन्धी में, कम से कम अपने प्राणेश्वरी में, हास्य का इच्छुक नहीं सुना गया है।"

यह भाव कि स्त्रियों में यह गुण नहीं है, उन अनेक तरीक़ों में सिर्फ़ एक है, जिनके द्वारा पुरुष स्त्रियों की मानसिक प्रक्रियाओं को उनके अपने बनाए रखने में, उनकी सफलता—शायद ग़ुलामों की पूर्णता—बतलाते हैं। अवश्य ही स्त्रियों ने कुछ सबक़ सीखा है।

इसमें आश्चर्य नहीं कि हम लोगों का यह युग दूसरे युग की अपेक्षा मुख्य और क्रान्तिकारी है। कारण, सभ्यता के आगमन के समय से यह पहला ही वक़्त है जब कि संसार को मालूम होना प्रारम्भ हुआ है—सिर्फ़ प्रारम्भ ही हुआ है—कि मानव-जाति का गुप्त अर्द्धभाग वास्तव में क्या सोचता है और क्या अनुभव करता है।

* * *

बुढ़िया पुराण

धार्मिक अन्धविश्वास के कारण तथा रूढ़ियों की उपासना में, अपनी शोचनीय आर्थिक स्थिति होते हुए भी, अधिकांश भारतीय महिलाएँ किस प्रकार अपने धन तथा पौरुष का अपव्यय करती हैं तथा किस प्रकार गृह-कलह के कारण उनका पारिवारिक जीवन अशान्त एवं असङ्गठित हो जाता है, इस पर खेद प्रकट करते हुए सहयोगी 'आज' ने अपने मिति सौर १६ मार्गशीर्ष स० १६८५ के अङ्क में एक विचार-पूर्ण अग्र-लेख लिखा था, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है :—

गतपूर्व सोमवार को दिन के १० बजे के क़रीब विश्वनाथ जी के मन्दिर में बरामदे वाले शिवलिङ्ग के चारों ओर घी के पचीस-तीस दीए जलते देखने में आये। एक-एक दीए में इकट्ठी तीस-तीस, चालीस-चालीस बत्तियाँ रही होंगी। बहुत सी स्त्रियाँ पास बैठी मानों चिराग़ ताप रही थीं। दिन दोपहर को साक्षात् सूर्य भगवान् के मौजूद रहते खुले मैदान या आँगन में इस तरह चिराग़ जला कर घी-तेल को बर्बाद करना और सूर्य को दीया दिखाने वाली मूर्खता का पात्र बनना हिन्दुओं में न जाने कितने दिनों से जारी है। विश्वनाथ जी के मन्दिर में यह चिराग़-लीला देख कर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ और जिन आँखों ने ज्ञान की गद्दी पर बैठे हुए मठ-विशेष के शङ्कराचार्य जी को दिन दोपहर को मशाल जला कर दलबल-सहित अपनी सवारी ले जाते देखा है (कारण पूछने पर एक भक्त ने बताया कि स्वामी जी ज्ञान का प्रकाश करते जा रहे हैं!) उनको, बेचारी अज्ञान स्त्रियों को इस तरह दीए जलाते देख कर क्यों कर आश्चर्य हो सकता है? परन्तु यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि आज क्या है कि मूसल ऐसी बत्तियाँ जलायी जा रही हैं। एक स्त्री से मालूम हुआ कि आज वैकुण्ठ-चतुर्दशी है, आज एक-

एक स्त्री हज़ार-हज़ार, पाँच-पाँच सौ बत्तियाँ जलाती हैं। घड़ी दो घड़ी रात से ही इन बत्तियों का जलाया जाना आरम्भ हुआ है और आज दिन भर यही कारख़ाना जारी रहे तो कुछ आश्चर्य नहीं। इसका रहस्य यह है कि स्त्री अगर मासिक स्नान भूल से शुक्रवार को करले तो सङ्कटा जी को दोष पहुँचता है, सनीचर को करे तो सनीचर महाराज को और सोमवार को करे तो विश्वनाथ जी को दोष पहुँचता है! इस भूल के प्रायश्चित्त में आज ये बत्तियाँ जलाई जा रही हैं। हज़ार-हज़ार बत्तियों के लिए हज़ार-हज़ार दीए और जगह चाहिए, इसीसे एक-एक दीए में सौ-सौ, पचास-पचास बत्तियाँ इकट्ठे जला कर यह प्रायश्चित्त बैकुण्ठ-चतुर्दशी को किया जाता है, ताकि बैकुण्ठ-प्राप्ति में दोष आ गया हो तो वह जर जाय। मालूम नहीं, यही कारण है या और कुछ, और यह बुढ़िया-पुराण है या पण्डित-पुराण। जो कुछ हो, इस प्रकार के कल्पित दोष हिन्दुओं में और ख़ास करके स्त्रियों में बहुत माने जाते हैं और उनके लिए प्रायश्चित्त भी बहुत किया जाता है, मगर असली दोषों की कुछ परवा नहीं की जाती, जैसे बीमार पशु भी अगर खूँटे से बँधा हुआ मर जाय तो उसके लिए लाञ्छन लगाया और गाँव-गाँव भीख मँगवा कर प्रायश्चित्त कराया जाता है, मगर जान-बूझ कर क़साई के हाथ गाय-बकरी बेचने में कुछ दोष नहीं माना जाता। रविवार मङ्गलवार को नीम की दतवन करने या सोमवार शनिवार को हजामत बनवाने में दोष माना जाता है, मगर चर्बी मिला घी बेचने में कुछ दोष नहीं गिना जाता। इसी तरह स्त्रियाँ वृहस्पतिवार को तेल लगाने, शनिवार को गोबर से घर लीपने, इतवार, मङ्गल को बैंगन भूनने या आँवला छूने और पूरब मुँह चूल्हा रखने में बड़ा दोष मानती हैं।

स्त्रियों का ऐसी बातों में दोष मानना और प्रायश्चित्त करना देखकर हमारे जी में कुछ प्रश्न उठे हैं जिनको हम अपनी बहिनों के सामने उनके पति-पुत्रों की मार्फ़त पेश करने की ढिठाई करते हैं। वे कृपा करके बतावें, कल्पित दोष के प्रायश्चित्त में तो आप सूर्य भगवान् तक का अपमान करने से भी नहीं हिचकतीं, परन्तु घड़ी-घड़ी सकारण अकारण पुत्र-वधुओं के "भाई-बाप खाने" का प्रायश्चित्त आप क्या करती हैं? अपनी लड़की पहाड़ समान भूल कर दे तो भी साँस न लेने और भोलीभाली पतोहू की तिनका बराबर भूल के लिए महाभारत मचा देने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं? पुत्र का ब्याह जब तक नहीं होता तब तक तो 'कब बहू आवेगी, कब बहू आवेगी' की चिन्ता में सूख कर काँटे हुई जाती हैं, परन्तु बहू के आते ही उसे सताने लगने, अपने ही मन की सब कुछ चाहने और बहू रात-दिन काम करती रहे तोभी उसे दूसते ही रहने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं? बच्चों को भूख न रहने पर भी ठूस-ठूस कर खिलाने और फलस्वरूप उनके बीमार पड़ जाने पर अपना दोष न सोच कर मुहल्ले भर की स्त्रियों को जादू-टोना करने वाली मान लेने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं? अपना लड़का बहू को लेकर अलग न हो जाय, मगर दामाद आपकी लड़की के लिए अपने माँ-बाप को छोड़ दे, इस शुभ-कामना के लिए प्रायश्चित्त करने को भला कौन कह सकता है? मगर राह चलते, गङ्गा-स्नान करते दो-चार पञ्च के जमा होते ही गोतिनियों, पड़ोसिनों की निन्दा करने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं? हमारी बहिनें यह बताने की कृपा करें कि औक़ात और आमदनी का ख़्याल न करके दूसरों की देखा-देखी ज़ेवर के लिए पति की जान खाते रहने का प्रायश्चित्त वे क्या करती हैं? गोतिनियों से ज़रा-ज़रा सी बात के लिए लड़ने और भाई-भाई को मेल से न रहने देने के लिए झूठी-सच्ची बातों से पति के कान भरने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं? गमख़ोर सास-ससुर को भरपेट भोजन के लिए तरसाने और पति की कमाई से मायके वालों को मौज उड़ाने देने का प्रायश्चित्त क्या किया करती हैं? श्रीरामचन्द्र या ध्रुव ऐसा सज्जन सौतेला लड़का हो तोभी उसे बनवास दिलाने के लिए सैकड़ों प्रपञ्च रचने का प्रायश्चित्त क्या किया जाता है? हमको भी एक दिन दूसरे घर जाना और सास-ननद के साथ निबाहना है, यह निश्चय रहने पर भी भौजाई के लिए बाघिन ननद बनने का प्रायश्चित्त क्या किया जाता है? स्त्रियाँ जब दूसरों से कुरूप होने पर भी अपने ही बच्चे का लाड़-प्यार करती हैं तब अपने देश के खद्दर या स्वदेशी कपड़े के ज़रा मोटा या भद्दा होने से उससे नाक सिकोड़ कर विदेशी मख़मली धोती क्यों मँगाती हैं और स्वदेश का रुपया विदेश भेजने का प्रायश्चित्त क्या करती हैं?

जो बहिनें इन सब बातों का विचार रखतीं और

सबके साथ मधुर व्यवहार करके परिवार को सदा शान्तिमय बनाए रखने का प्रयत्न करती हैं, वे धन्य हैं, उनकी जितनी सराहना की जाय थोड़ी है। जिनको ऐसी लक्ष्मी प्राप्त हुई हैं वे सौभाग्यशाली हैं। जो स्त्रियाँ स्वयं कष्ट सह कर भी पति को कुछ जानने नहीं देतीं, जो सास-ससुर को खिला कर स्वयं भूखी रह जाने से भी नहीं घबरातीं, जो समझती हैं कि जिनके जन्माये हुए पुत्र से हम राज रजती हैं उनकी सेवा करना हमारा धर्म है, जो सोने-चाँदी के आभूषण से शील-सौजन्य को अधिक मूल्यवान् समझती हैं, जो आमदनी का ख़्याल रखकर किफ़ायत के साथ गृहस्थी चलाना जानती हैं, जो संयुक्त परिवार में रहने पर भी उसी तरह घर चेतती हैं जिस तरह अलग रहने पर, जो सदा स्वयं हँसमुख बनी रह कर दूसरों को भी ख़ुश रखती हैं, जो समझदारी से काम लेना जानती हैं, वे नमस्य हैं। उनके प्रताप से ग़रीबी में भी सुख मिलता है, रोग में भी शान्ति मिलती है, काम-काज की भीड़ में भी निश्चिन्तता रहती है, और भीतर-बाहर प्रसन्नता तथा शान्ति विराजती है। ऐसी स्त्री-रत्नों के लिए हमारे प्रश्न नहीं हैं। हम तो ऐसी लक्ष्मी घर-घर देखना चाहते हैं, मगर उनकी संख्या बहुत कम पाकर दुखी होते हैं और चित्त में प्रश्न उठता है कि हमारे देश की स्त्रियाँ तुच्छ और खोखली बातों को अधिक महत्व देकर उपयोगी बातों को क्यों भूल जाती हैं और कलह की आग बढ़ने, घर-गृहस्थी चौपट होने और अपने तथा सगे-सम्बन्धियों का जीवन अशान्तिमय बन जाने के कारण दूर करने का सच्चा प्रयत्न क्यों नहीं करतीं।

* * *

पर्दे को फाड़ डालो !

पर्दे की कुप्रथा के विरुद्ध कुछ दिन हुए महात्मा गाँधी ने एक बड़ा प्रभावशाली लेख अपने 'यङ्ग इण्डिया' में लिखा था, जिसका सारांश भारतीय बहिनों के विचारार्थ नीचे दिया जा रहा है :—

जिस समय 'पर्दा' चलाया गया था उस समय उसका जो भी फल हुआ हो, परन्तु अब यह सर्वथा बर्बरतापूर्ण और भयानक हानिकारक हो गया है। १०० वर्ष से हमें जो शिक्षा मिल रही है उससे भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा और शिक्षित घरों में भी अभी पर्दा बना हुआ है, क्योंकि पाशविक रिवाजों को तोड़ने को शिक्षित तैयार नहीं हैं। मैं सैकड़ों स्त्रियों की सभाओं में गया हूँ, पर हल्ले-गुल्ले के कारण कहीं भी ठीक ढङ्ग से भाषण न कर सका। मेरा विश्वास है कि जब तक स्त्रियों को घर और आँगन के पींजड़े से मुक्त न किया जायगा तब तक कोई भलाई न होगी, क्योंकि एक साथ जमा होने पर वे वक्ता का भाषण सुनना तक भी नहीं जानतीं, क्योंकि स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस लेने की उन्हें आदत ही नहीं होती। मैं ख़ूब जानता हूँ कि सैकड़ों बहिनों की शिक्षा-दीक्षा बहुत उत्तम होती है और वे इतनी योग्य होती हैं कि पुरुषों की समानता कर सकें और कभी-कभी वे बाहर भी जाया करती हैं। अफ़सोस की बात है कि हमारा स्त्री-वृन्द भी पुरुष-वृन्द के समान स्वतन्त्र होकर स्वच्छ हवा में स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरण न कर सके ? मुझे अत्यन्त लज्जा और कष्ट होता था जब कि दरभङ्गा तथा अन्य कई स्थानों में मेरे इस दौरे के समय सभाओं के समय मुझसे उन महिलाओं के बीच भाषण करने को कहा जाता था जो कि पुरुषों के समूह से एक ऊँची पर्दे की दीवार की बग़ल में जमा थीं और जिन्हें सभा में तब तक मैं न देख सकता था, जब तक कि मेरा ध्यान उस ओर न दिया गया।

पातिव्रत्य गर्म-गर्म कोठरी में नहीं उत्पन्न होता, न दूसरे के ज़बरदस्ती लादने से पातिव्रत्य-धर्म निबाहा जा सकता है। पर्दा या चहारदीवारी भी सतीत्व की रक्षा हरगिज़ नहीं कर सकते। पातिव्रत्य का सम्बन्ध है अन्तरात्मा की प्रेरणा से, और उसकी अन्तरात्मा से उत्पत्ति होनी चाहिए तथा वह सतीत्व-वृत्ति इतनी ज़बरदस्त हो कि किसी भी तरह के बहकावे से भङ्ग न हो सके, जिस तरह कि सीता माता की थी। यदि मनुष्यों की दृष्टि के पड़ने से ही पातिव्रत्य-धर्म काफ़ूर हो जाता है तो ऐसा पातिव्रत्य तो हेय है, और उसकी कोई भी ज़रूरत नहीं। यदि आदमी वास्तव में पुरुष बनना चाहते हैं तो उन्हें अपने रमणी-वर्ग पर उसी तरह विश्वास करना होगा जिस तरह कि स्त्रियों को मर्दों पर विश्वास करने के लिए

मजबूर किया जाता है। अपने एक अङ्ग को सम्पूर्णतया या अंशतः अशक्त बना कर हमें नहीं रहना होगा। यदि रामचन्द्र जी के समान ही सीता जी भी पूर्णतया स्वतन्त्र और स्वाधीन न होतीं तो संसार में रामचन्द्र जी को आज तक कोई भी न जानता। परन्तु ससत्व स्वाधीनता का और भी उत्तम उदाहरण द्रौपदी जी हैं। सीता जी तो नम्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थीं, वे कोमल कुसुम-कली थीं। उनकी तुलना में द्रौपदी जी थीं भीम कठोर शीशम का वृक्ष। द्रौपदी ने शक्तिशाली भीम को भी अपनी दर्पपूर्ण इच्छा के सामने झुका दिया। भीम समस्त संसार के लिए तो भीम थे, परन्तु द्रौपदी की इच्छा-शक्ति के सामने वे अजापुत्र के समान थे। द्रौपदी को पाण्डवों में से किसी की भी रक्षा की आवश्यकता नहीं थी। आज हम भारत के रमणी-समाज की स्वतन्त्र उत्पत्ति और उन्नति में बाधक बनने की चेष्टा करते, हुए हम स्वतन्त्र और स्वाधीन भाव में पगे हुए पुरुषों की उत्पत्ति में बाधक हो रहे हैं। हम अपने रमणी-समाज के साथ तथा अपने अछूतों के साथ जो अन्याय कर रहे हैं वह सहस्रगुणा ज़ोर के साथ हमारे सिर पर गिर रहा है। हमारी कमज़ोरी, अनिश्चितता, सङ्कीर्णता और लाचारी का यही कारण है। अभी भी हमें पर्दे को एकदम ही पूर्ण ज़ोर लगा कर फाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

* * *

विधवा के अन्तर्वाक्य

जैनियों में कुछ कट्टरता है ज़रूर, सनातनत्व में अन्धभक्ति है सही, अर्वाचीन समाज-प्रगति से कुछ अरुचि है अवश्य; पर धीरे-धीरे उनमें तर्कशीलता आती जाती है, दूरदर्शिता का आविर्भाव हुआ जाता है। पुरानी लकीर के फ़क़ीरों को तो ऐसी समस्याएँ खटकेंगी ही, और खटकना स्वाभाविक है भी। देश तथा समाज से उनका सम्बन्ध उतना नहीं, जितना उनकी सन्तानों का है। अपने देश तथा समाज को समयानुकूल बनाने के लिए प्राचीन धर्म तथा आचार-विचारों में न्यूनाधिक परिवर्तन होना अनिवार्य है; अवश्यम्भावी है। वायु जिस दिशा की ओर बहती है पेड़ तथा पौधों का भी तद्दिशानुकूल झुकना प्राकृतिक है। जो दृढ़ और अनम्रशील होते हैं, वायुप्रवाह के अनुसार नहीं झुकते वे आप तो उन्मूलित होते ही हैं, आस-पास की नन्हीं-नन्हीं दुर्बल द्रुम-लताओं को भी ले बीतते हैं। अस्तु—

श्रीमती गुलाबबाई एक जैनी विधवा थीं। कोटा राज्य के इकलेरा ग्राम निवासी श्री० लाला सूरजमल जी अजमेरा जैन के साथ इन्होंने अपना शुभ-विवाह किया है। विवाह में उपस्थित सम्बन्धियों तथा सज्जनों के सम्मुख इन्होंने जो अपने आन्तरिक भाव प्रकट किए हैं, वह 'जाति-प्रबोधक' के गत मार्च अङ्क में प्रकाशित हुए हैं। हम भी उन्हें अपनी विधवा बहिनों के विचारार्थ यहाँ प्रकाशित करते हैं। हमें विश्वास है कि इन भावों को अनुभव कर हमारी अभागिनी विधवा बहिनों के हृदय में साहस का सञ्चार एवम् कर्मण्यता का अधिकाधिक विकाश होगा:—

"मेरी बहिनो और भाइयो! आज मेरे पुनर्विवाह के अवसर पर आप सबने यहाँ पधार कर इस कार्य में जो सहयोग दिया है, इसके लिए मैं आपकी बहुत ही कृतज्ञ हूँ। मैं आज आपके सामने यह कारण निवेदन कर देना चाहती हूँ कि मैंने यह कार्य (पुनर्विवाह) क्यों किया। बात यह है कि मेरी प्रथम शादी मेरे माता-पिता ने मेरी सिर्फ़ ९-१० वर्ष की उम्र में कर दी थी। दुर्भाग्य से शादी के तीन-चार महीने बाद ही मैं विधवा हो गई। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि मैं सिर्फ़ फेरों की ही चोर हूँ। आप देखते हैं कि मेरी उम्र इस वक़्त २०-२१ वर्ष की है। बड़े-बड़े लोगों में मानसिक कमज़ोरियाँ पाई जाती हैं, तो समाज के वर्तमान दूषित वातावरण में मुझ जैसी अबलाओं का ऐसी कमज़ोरियों से सुरक्षित रहना सहज बात नहीं है। प्रसङ्गवश यह कह देना भी अनुचित न होगा कि मेरी बड़ी बहिन तीजूबाई भी विधवा हो गई थीं। झालरापाटन छावनी

के पास नाहड़ी गाँव के रहने वाले एक मुसलमान महाशय के साथ उनका प्रेम हो गया। वह आठ-दस वर्षों से उसी के घर रहती हैं। मैंने सुना है, अब उस मुसलमान से उन्हें कई सन्तानें उत्पन्न हुई हैं। ग़रज़ यह कि वे अपने पवित्र अहिंसामय जैन-धर्म को छोड़ कर अन्य धर्म में दीक्षित हो गईं। कौन कह सकता है एक रोज श्री पार्श्वनाथ और श्री महावीर के नाम की माला जपने वाली मेरी बहिन अभक्ष्य वस्तुओं से बची हुई होंगी? युवावस्था में वह अपने आपको नहीं सँभाल सकीं। अतः समाज में स्थिति कारण का कोई उचित उपाय न दीखने पर जो मार्ग उनको आसानी से सूझ गया, वही उन्होंने ग्रहण कर लिया। इस घटना से शिक्षा लेते हुए अपने आगामी जीवन को पतित न बनने देने तथा कई प्रकार की बुराइयों से अपने आपको सुरक्षित रखने की शुभ भावना से प्रेरित होकर मैंने आज श्री० लाला सूरजमल जी अजमेरा जैन, इकलेरा (कोटा राज्य) निवासी के साथ अपना विवाह किया है।

मैं जानती हूँ कि कई बहिनें बेसमझी के कारण गुप्त-गुप्त कई प्रकार के दूषित कार्य करती रहती हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि उच्च कहाने वाली जातियों ने उनके वास्ते कोई उचित मार्ग नहीं खोल रक्खा है, जब कि पुरुष तो साठ वर्ष की उम्र में भी कई विवाह करते रहते हैं। जिन भाइयों ने हम स्त्री-जाति पर दया करके पुनर्विवाह का मार्ग खोला है, उन्होंने स्त्रियों को कई प्रकार के पापों से बचा कर धर्म की सच्ची रक्षा की है। अगर देश में विधवाओं के पुनर्विवाह का पुनीत आन्दोलन न होता तो मेरा भी यह साहस नहीं होता। और क्या आश्चर्य है कि मुझे भी बुरे-बुरे मार्ग सूझते!

इस अवसर पर मैं अपनी विधवा बहिनों से भी निवेदन करती हूँ कि आपको अपना जीवन कई प्रकार की बुराइयों से बचाना है; और दिन-रात के संक्लेशित परिणामों से अपनी आत्मा की रक्षा करनी है तो आपके लिए इस राजमार्ग के ग्रहण कर लेने में ही भलाई है। जिनकी आत्मा बलवान् है, उनसे ऐसा करने के लिए कहने का मैं साहस नहीं कर सकती।

अन्त में, अब आप सबसे प्रार्थना करती हूँ कि आप हम दोनों को आशीष दें कि जिससे हमारा आगामी गृहस्थ-जीवन सुखी, पवित्र एवम् धार्मिक बने।

मैं पुनः आप सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई अपने स्थान पर बैठने की आज्ञा चाहती हूँ।

यही एक आदर्श हिन्दू-विधवा के अन्तस्तल की अन्तर्ध्वनि है। वास्तव में सत्य का अविकृत रूप कितना दिव्य, कितना प्रभावशाली, कितना सहज-सरल और सात्विक होता है? 'हेठी' हो जाने के भय से हठभगत एवं जड़भरत हिन्दू हृदय पर हाथ रख कर क्या यह कहने की हिम्मत कर सकता है कि उपर्युक्त वक्तृता का कोई भी वाक्य अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता से छू भी गया है? हम तो इसे एक सनातनी पर्दे का चल-चित्र (Bioscope) ही कहेंगे।

निरीह विधवाएँ युगों से अन्ध परम्परागत अधर्म-धर्म के अन्धकार-गह्वर में अपने प्रतारणामय जीवन की शेष घड़ियाँ गिन रही थीं, पर अब विस्मृति के बादल फाड़ कर प्रेम-चन्द्रोदय हुआ है। धीरे-धीरे वे अपनी स्थिति को समझ रही हैं। कोई अविश्वास के सीख़चों से बने हुए निरी धर्मपरायणता एवं आत्मगौरव के काग़ज़ी क़िले को सत्य की चिनगारी से बचाए रखने की जी-तोड़ कोशिश भले ही करे; पर एक न एक दिन वह जाग्रति के भूकम्प-भीषण विस्फोट के साथ उड़ जायगा।

हम युगल दम्पति को हृदय से बधाई देते हैं, और साथ ही उन्हें अनुरोध करते हैं, वे इस नवयुग आन्दोलन को सफलीभूत बनाने की शक्ति भर चेष्टा करें।

आशा है, हमारी दुखी विधवा बहिनें श्रीमती गुलाब बाई के उपरोक्त वाक्यों को हृदयङ्गम कर अपनी विपत्ति तथा सङ्कटों की शृङ्खला से उन्मुक्त होने का भगीरथ-परिश्रम करेंगी।
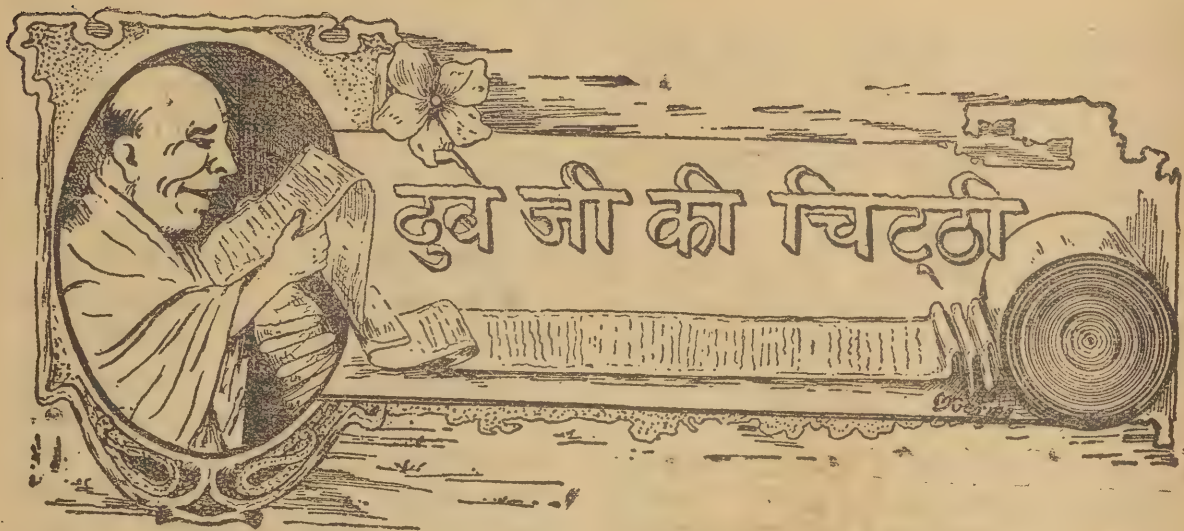
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

मैंने सुना है कि आप "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" की ज़ब्ती के सम्बन्ध में यू० पी० सरकार के विरुद्ध मुक़दमा दायर करने वाले हैं। क्या यह सच बात है? भाई शेर-बकरी की लड़ाई है—ज़रा हाथ-पैर बचाए रहना। मेरी तो राय यह है कि पहले आप अपनी जन्म-पत्री दिखवा लो। यदि उसमें ग्रहों का योग ठीक हो और किसी बलवान् ग्रह की दशा हो तब तो दावा दायर करो—अन्यथा टाल जाओ। मुफ़्त में 'आ बैल मुझे मार' वाला काम करके ज़िल्लत उठाना बुद्धिमानी नहीं है। यह काम आप अवश्य करें। साथ ही यदि ईश्वर न करे आपको दावा दायर ही करना पड़े तो मुहूर्त्त दिखा कर दावा दायर कीजिएगा। शुभ मुहूर्त्त में दावा दायर किया जायगा तो निश्चय फ़तह होगी, अन्यथा देखिए ज्योतिषी जी क्या कहते हैं:—

यह मैं अपनी ओर से नहीं, वरन् अपने एक ज्योतिषी मित्र की सलाह से लिख रहा हूँ। यद्यपि कल उनकी मेरी बोलचाल बन्द हो गई है। बोलचाल बन्द होने का कारण केवल यही है कि मेरी उनकी कहा-सुनी हो गई। कहा-सुनी होने का कारण केवल यही था कि ज्योतिषी जी जन्म-पत्री और मुहूर्त्त देखने के पक्ष में थे और मुझे इस पर विश्वास नहीं। यद्यपि ज्योतिषी जी ने विश्वास दिलाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु "मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" वह जैसे ही जैसे अपनी बात के पक्ष में दलीलें पेश करते थे वैसे ही वैसे मेरा विश्वास और भी दुर्बल होता जाता था। अब ज़रा ज्योतिषी जी की दलीलें सुनिए। मैंने पूछा—क्यों भई, जन्म-पत्री और मुहूर्त्त दिखाना क्यों आवश्यक है?

ज्योतिषी जी बोले—आवश्यक इसलिए है कि ज्योतिष-शास्त्र में लिखा है कि विवाह में, यात्रा में, रण-यात्रा में, वाद-विवाद आरम्भ करने में जन्म-पत्री और मुहूर्त्त दिखाना अत्यन्त आवश्यक है। ज्योतिष के आचार्यों की ऐसी ही आज्ञा है।

इस दलील को सुन कर ज्योतिष के प्रति मेरा विश्वास उतना ही दुर्बल हो गया जितना कि दुर्भिक्ष का मारा हुआ मनुष्य।

मैंने पुनः इस आशा से कि कदाचित् इस बार ज्योतिषी जी की दलील मेरे मरते हुए विश्वास के लिए चन्द्रोदय का काम करे, प्रश्न किया—परन्तु ऐसी आज्ञा क्यों निकाली गई?

ज्योतिषी जी बोले—इसलिए कि अशुभ मुहूर्त्त में कार्यारम्भ करके मनुष्य व्यर्थ की हानि न उठावें।

"तो क्या अशुभ मुहूर्त्त में कार्यारम्भ करने से हानि होती है?"

"बेशक!"

"और शुभ मुहूर्त्त में काम करने से लाभ होता है?"

"निस्सन्देह!"

तब तो आपको सदैव लाभ ही लाभ होता होगा हानि कभी न होती होगी?"

इस प्रश्न से ज्योतिषी जी कुछ सिटपिटाए, परन्तु आदमी बड़े चलते हुए हैं, अतएव तुरन्त सँभल कर बोले—हानि बहुत कम होती है और जब कभी होती है तो वह हमारे आलस्य के कारण होती है।

"आलस्य के कारण कैसे?"

"आलस्य में पड़ कर जब कभी बिना मुहूर्त्त देखे काम कर बैठते हैं तो हानि हो जाती है।"

"तो आप आलस्य को पास क्यों फटकने देते हैं?"

"आलस्य तो तुम जान लेओ मनुष्य का स्वभाव ही है।"

"और जन्म-पत्र दिखाने से क्या होता है?"

"जन्म-पत्र दिखाने से मनुष्य को अपने भविष्य का ज्ञान हो जाता है?"

"विवाह के पूर्व जो वर-कन्या का जन्म-पत्र मिलाया जाता है, इसका कारण क्या है?"

"जन्म-पत्र मिलाने से वर-कन्या में परस्पर प्रीति रहती है।"

"हिन्दुओं में—विशेषतः सनातनधर्मियों में—जन्म-पत्र मिल कर विवाह करने की प्रथा है—तो उनमें दम्पति में परस्पर प्रीति ही रहती है?"

"हाँ और क्या।"

"क्षमा कीजिएगा, एक प्रश्न करता हूँ—आपका विवाह जन्म-पत्र मिला कर हुआ था या नहीं?"

"हुआ क्यों नहीं था।"

"तब आप में और पण्डिताइन में बहुधा जो जूती-पैज़ार हुआ करता है उसका क्या कारण है?"

"अरे भई यह तो घर-गृहस्थी में लगा ही रहता है—यह बात दूसरी है। ऐसा लड़ाई-झगड़ा अधिक महत्व नहीं रखता।"

"तो कदाचित् लड़ाई-झगड़े से आपका तात्पर्य यह है कि एक दूसरे का ख़ून कर डाले या घर छोड़ कर भाग जाय?"

"हाँ, पूरा लड़ाई-झगड़ा तो ऐसा ही होता है।"

"तब तो आपका जन्म-पत्र मिलाना सुफल है। यदि जन्म-पत्र मिला कर आपका विवाह न हुआ होता तो अब तक या तो पण्डिताइन आपका ख़ून कर डालतीं या आप घर छोड़ कर भाग जाते। क्यों न?"

"पण्डिताइन मेरा ख़ून क्यों कर देतीं और मैं घर छोड़ कर क्यों भाग जाता?"

"इसलिए कि अभी जो उनमें आप में झगड़ा होता है तो उसमें बहुधा विजय पण्डिताइन की ही होती है। इससे प्रकट है कि पण्डिताइन आप पर ज़बर पड़ती हैं। ऐसी दशा में यदि जन्म-पत्र न मिलाया गया होता तो या तो आप गृह-युद्ध में काम आ जाते और या भाग खड़े होते, क्योंकि कमज़ोर आप ही हैं।"

"दुबे जी, आप मूर्ख ही रहे—बात करने का सलीक़ा न आया। ऐसा कहीं हो सकता है। हम कमज़ोर किस बात में हैं? बात केवल यह है कि हम पुरुषों को स्त्रियों के मुँह लगना शोभा नहीं देता। इसलिए ग़म खाते हैं।"

"तो आपके जन्म-पत्र में यह लिखा होगा कि आप सदा ग़म ही खाते रहेंगे—चाहे जितने बेभाव के पड़ें?"

"आप से बात करना व्यर्थ है—आपकी ज़बान में लगाम नहीं है।"

"क्या ज़बान में लगाम होना आवश्यक है?"

"आवश्यक क्यों नहीं है—इसके बिना तो काम ही नहीं चलता।"

"तब आपने पण्डिताइन के मुँह में दहाना क्यों न चढ़वाया—उनकी ज़बान तो बहुत खुली हुई है?"

"मैं कहता हूँ कि आप घूम-फिर कर पण्डिताइन को बीच में क्यों ले आते हैं। बड़े विचित्र आदमी हैं आप।"

"अरे भाई आपकी और उनकी जन्म-पत्री के सम्बन्ध में वार्तालाप हो रहा है कि नहीं—कहो हाँ।"

"मैं आप से बात नहीं करना चाहता।"

"अच्छा जाने दीजिए, मैं यह प्रसङ्ग ही छोड़े देता हूँ। अब यह बताइए कि जन्म-पत्र मिलाने से और क्या लाभ होता है?"

"कुछ लाभ नहीं होता।"

"ऐसे ख़फ़ा हो गए?"

"आप बातें ही वैसी करते हैं।"

"उसके लिए तो क्षमा-याचना कर चुका। हाँ, तो जन्म-पत्री मिलाने से और क्या लाभ होता है?"

"जन्म-पत्री मिलाने से कन्या के असमय विधवा अथवा वर के विधुर होने का खटका नहीं रहता।"

"अच्छा, क्या यह बात भी है?"

"हाँ, और क्या—यही तो सबसे बड़ी बात है।"

पण्डित जी की एक बीस वर्षीया विधवा कन्या थी। मैंने सोचा उसके सम्बन्ध में कुछ कहूँ या न कहूँ, क्योंकि अब पण्डित जी मार बैठेंगे। अन्त में मुझसे न रहा गया। मैंने ज़रा दूर हट कर, जिससे कि यदि पण्डित जी आक्रमण करें तो मैं भाग खड़ा होऊँ, पूछा—पण्डित जी, आपने मालती की जन्म-पत्री मिलाई थी कि नहीं?

पण्डित जी बड़े दुखी होकर बोले—मिलाई क्यों नहीं थी; परन्तु जान पड़ता है लड़के की जन्म-पत्री भ्रष्ट थी—इष्ट-काल ठीक नहीं था, इससे यह गड़बड़ हो गया।

"परन्तु वैधव्य योग तो लड़की की जन्म-पत्री में होगा—लड़के से उसका क्या सम्बन्ध?"

"लड़के का अल्पायु योग होने से कन्या का वैधव्य योग होता है।"

"तो मालती की जन्म-पत्री में वैधव्य योग नहीं है?"

"जब मैंने जन्म-पत्री मिलाई थी तब तो था नहीं।"

"तो सम्भव है, उसके पश्चात् उत्पन्न हो गया हो। ऐसा होता है या नहीं?"

"दुबे जी, आज तो आप बेतरह मेरे पीछे पड़े हैं—मैंने कौन सा अपराध किया है?"

"पीछे-वीछे तो कुछ नहीं पड़ा हूँ, अपना सन्देह दूर कर रहा हूँ।"

"आपका सन्देह त्रिकाल में भी दूर नहीं हो सकता। ब्रह्मा भी आपका सन्देह दूर नहीं कर सकता।"

"क्यों-क्यों, ऐसा क्यों?"

"आपके हृदय में विश्वास नहीं। जब तक विश्वास नहीं होता तब तक फल नहीं मिलता।"

"क्या यह बात भी है?"

"हाँ, विश्वास मुख्य है।"

"तब फिर क्या चिन्ता है। अब तो मैं विश्वास कर ही नहीं सकता। जन्म-पत्र और मुहूर्त्त पर विश्वास करके व्यर्थ में एक बला मोल ले लेने में कौन सी बुद्धिमानी है। यह आपने अच्छा बता दिया।"

पण्डित जी मुँह फुला कर चल दिए। उस दिन से मुझसे बोलना बन्द कर दिया।

सम्पादक जी, सनातनधर्मियों में विवाह पर जन्म-पत्र मिलाने की प्रथा बड़ी हानिकर है। लाभ तो इससे रत्ती भर भी नहीं है। नित्य असंख्य कन्याएँ विधवा होती हैं—नित्य घरों में लड़ाई-झगड़े होते हैं। हानि इससे अलबत्ता बहुत बड़ी होती है। बहुधा बड़े-बड़े अच्छे सम्बन्ध जन्म-पत्र न मिलने के कारण रुक जाते हैं और जन्म-पत्र मिल जाने से बड़े बुरे-बुरे सम्बन्ध हो जाते हैं। हमारे मुहल्ले में एक सज्जन रहते हैं। उनकी कन्या का सम्बन्ध एक ऐसे लड़के के साथ होता था जो सब तरह से अच्छा था। पढ़ा-लिखा भी काफ़ी था, अच्छे ख़ानदान का, नख-शिख का सुन्दर, धनाढ्य—सब बातें अच्छी थीं। परन्तु सम्बन्ध नहीं हुआ—क्यों? इसलिए कि जन्म-पत्र नहीं मिला। मैंने जो उनसे कहा कि आप जन्म-पत्र के चक्कर में मत पड़िए, तो वह कहते क्या हैं—वाह साहब! हमारे यहाँ आज तक कोई विवाह जन्म-पत्र मिलाए बिना हुआ ही नहीं, तब यह विवाह कैसे हो सकता है!

मैंने कहा—महाराज आप बड़े ज्ञानी आदमी हैं। आप ही जैसे आदमी उन्नति तथा सुधार का गला रेतते रहते हैं।

इसके प्रतिकूल एक सज्जन अपनी लक्ष्मी-स्वरूपा कन्या का विवाह एक महा अयोग्य लड़के के साथ करने पर आमादा थे। मेरे प्रश्न करने पर बोले—क्या करें दुबे जी, कहीं जन्म-पत्री ही नहीं मिली। बड़ी कठिनता से इस लड़के से मिली है तो अब ऐसा अवसर क्यों छोड़ूँ?

मैंने पूछा—आप जन्म-पत्र ही देखते हैं या लड़की का भविष्य भी देखते हैं?

यह सुन कर वह बड़ी निश्चिन्ततापूर्वक बोले—जब जन्म-पत्र मिल गया तो भविष्य अच्छा ही है।

इस मूर्खता का कुछ ठिकाना है। जो बात प्रत्यक्ष देख रहे हैं उस पर विश्वास नहीं। सरासर देख रहे हैं

(शेष मैटर पृष्ठ ३५९ के पहले कॉलम में देखिए)

मामा परमानन्द

[ले० श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० (कॉम)]

Strongest minds are often those of whom the noisy world hears least.

जिनकी समाज-सेवा, कर्तव्य-जाग्रति, विचार-गम्भीरता और विद्वत्ता आदि गुणों के कारण सत्सङ्ग करने की हर एक की इच्छा होती थी, जिनके आगे रानाडे, भाण्डारकर, तैलङ्ग, मलबारी के अतिरिक्त स्वयं राममोहन राय तक श्रद्धा और अत्यन्त आदर-भाव प्रकट कर नत-मस्तक होते थे, जिन्होंने समाचार-पत्र के सम्पादन का अनुकरणीय मार्ग बतलाया, किसी भी महत्वपूर्ण कार्य के लिए किस प्रकार आन्दोलन करना—यह जिन्होंने बतलाया, वह आधुनिक काल के महापुरुष श्रीयुत नारायण महादेव उर्फ़ मामा परमानन्द थे।

सावन्तवाड़ी के नज़दीक माणगाँव में सन् १८३८ की तीसरी जुलाई को नारायणराव का जन्म हुआ था। रामकृष्ण भाण्डारकर इनकी अपेक्षा एक ही वर्ष बड़े थे। नारायणराव दो वर्ष के थे कि उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उस समय उनका और उनकी तीन बहिनों के पोषण का भार उनकी विधवा माँ पर पड़ा। उनके घर की स्थिति आरम्भ से ही शोचनीय थी। उन चार बालकों का पोषण उस विधवा ने कैसे किया, इसका अनुमान करना कठिन है। ऐसी ग़रीबी की हालत में बम्बई जैसे शहर में पढ़ाना, उस देवी के लिए साहस का कार्य था।

नारायणराव पहले अपने मामा के पास पढ़ते रहे, किन्तु दुर्दैव से उनका भी स्वर्गवास हो गया। फिर तो पढ़ना-लिखना छूट गया और उनकी माँ को कहीं आश्रय मिलने का ठिकाना नहीं रहा। यह अवस्था देख कर नारायणराव अपनी बहिन से भेंट करने के लिए बम्बई चले आए। आज विलायत जाना तो आसान हो गया है; किन्तु उस समय गाँवों से बम्बई आना बहुत ख़र्च तथा कठिनाई का काम था।

बम्बई आने पर नारायणराव अपनी बहिन के यहाँ रह कर पढ़ने लगे। दो वर्ष में ही उन्होंने मराठी का शिक्षणक्रम समाप्त कर दिया और सन् १८५० में सरकारी सेन्ट्रल स्कूल में पढ़ने लगे। यहाँ की शिक्षा उन्होंने चार ही वर्षों में पूरी कर ली, और उच्च शिक्षा के लिए कॉलेज में प्रवेश किया। कॉलेज में बी० ए० तक पढ़ कर उन्होंने पूर्ण यश प्राप्त किया। उस समय सारे वज़ीफ़े नारायणराव को मिले। सर अलेक्ज़ेण्डर ग्रेण्ट और प्रोफ़ेसर ह्यूलिंग्स नारायणराव के अङ्गरेज़ी भाषा के अधिकार पर अत्यन्त प्रसन्न थे। नारायणराव का अङ्गरेज़ी भाषा और गणित दोनों पर इतना अधिकार था कि विदेशी विद्वान् चकित होते थे।

घर की स्थिति ग़रीब होने के कारण आगे उन्होंने नहीं पढ़ा। इसलिए वह बम्बई के एल्फ़िन्स्टन हाई-स्कूल में पढ़ाने लगे। वहाँ अध्यापक होने पर नारायणराव के विशेष गुणों का अनुभव होने लगा। उनका सौजन्य, कर्तव्य-निष्ठा, छात्रों पर लक्ष्य, सिखाने की पद्धति, अङ्गरेज़ी भाषा पर अधिकार और शान्त व गम्भीर स्वभाव का विद्यार्थियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि कुछ विद्यार्थियों ने जीवन-पर्यन्त उनका साथ दिया। ऐसे ही विद्यार्थियों में तैलङ्ग थे। हाईस्कूल की सोसाइटी में वे बराबर अपने गम्भीर लेख पढ़ कर सुनाते थे। यहाँ से वह अधिक वेतन पर सिन्ध-हैदराबाद चले गए। परन्तु वहाँ स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण बम्बई लौट आए। बम्बई आकर वे 'इन्दुप्रकाश' के अङ्गरेज़ी विभाग का सम्पादन करने लगे। पर सन् १८६४ में "नेटिव ओपीनियन" साप्ताहिक अङ्गरेज़ी पत्र के सम्पादन का समस्त भार उन पर आकर पड़ा। नारायणराव ने "नेटिव ओपीनियन" को चमका दिया। उनकी लेखन शैली सुबोध, स्फूर्तिदायक और मार्मिक होती थी। संक्षेप में—किन्तु निश्चयात्मक रूप में—वह अपने मनोभावों को अपने लेखों में स्पष्ट कर देते थे, जिससे उनके लेख सबको पसन्द होते थे। दूसरी बात यह कि किसी भी

विषय पर लिखने पर, उसका सब प्रकार से विचार कर, समतौल बुद्धि से लेख लिखते थे। जो विषय विवाद-ग्रस्त होता, उस पर वह गम्भीर विवेचन के उपरान्त लिखते। जिस विषय पर उनका विरोध होता था, उस पर विरोधी भाव प्रकट करते समय उनकी विवेचन-पद्धति ज़ोरदार होने पर भी उनकी मर्यादा के अनुकूल होती थी। उनके विचार, विवेचना व अन्तिम निर्देश जानने के लिए विरोधी भी आतुर रहते थे। उनके लेखों में छिछोरापन और असभ्यता कभी भी नहीं होती थी।* उनके प्रभावशाली और ज़ोरदार लेखों से "नेटिव ओपीनियन" पत्र की इतनी ख्याति हुई कि उस समय के गवर्नर सर बार्टलफ़्रियर परमानन्द के विचारों को जानने के लिए पत्र के ग्राहक हुए। इस पत्र की ओर सबका लक्ष्य था। वे देशी राज्यों की भी कड़ी टीका-टिप्पणी करते थे। कच्छ के महाराज पर इन टिप्पणियों का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने नारायणराव को अपने स्टेट के सुधार के लिए नायब दीवान का पद देने को आमन्त्रित किया। नारायणराव दीवान हो गए। वहाँ उनका बहुत मान-सम्मान हुआ; किन्तु फिर भी अधिक काल तक न रह सके। उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल वह सब काम नहीं था। इसलिए वहाँ से त्यागपत्र देकर फिर बम्बई चले आए।

बम्बई आने पर हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार सर विलियम वेडरवर्न ने उन्हें डिप्टी-रजिस्ट्रार बना दिया और उसके थोड़े दिन उपरान्त जब वेडरवर्न सरकार के सेक्रेटरी हो गए, तब उन्होंने नारायणराव को अण्डर-सेक्रेटरी के पद पर बुला लिया। उसके बाद वह जनरल विभाग के सुपरिन्टेण्डेण्ट पेन्शन लेने के समय तक बने रहे। स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण सन् १८८६ में, थोड़े ही समय में उन्होंने पेन्शन ले ली। इसके उपरान्त दश वर्ष तक वे बिछौने पर ही लेटे रहे। उन्हें बैठना मुश्किल हो गया। ऐसी कमज़ोर हालत में वे क्या काम कर सकते थे। किन्तु फिर भी चारपाई पर लेटे-लेटे देश और समाज की सेवा में अपने कर्त्तव्य का उन्होंने पालन किया। इस अवधि में मामा ने बड़ी अनुपम सेवा की। वे बिछौने पर पड़े-पड़े काग़ज़-पेन्सिल लेकर लिखते। शक्ति रही तब तक स्वयं लिखते रहे। वे कहते थे कि स्वयं लिखने पर विचारपूर्वक शब्द-योजना होती है और लेख आँखों के सामने रहने पर हृदय को समाधान होता है। मामा अपने विचार प्रकट करते समय वाक्य-रचना और शब्द-योजना पर बहुत ध्यान देते थे। इस रुग्णावस्था में पड़े-पड़े लिखना मामा के अपूर्व साहस और देश तथा समाज के प्रेम का परिचायक था।

लिखते-लिखते हाथ में शक्ति नहीं रही—शरीर काँपने लगा। तब दूसरों को अपने समीप बिठाकर लिखाने लगे। कभी-कभी इतनी कमज़ोरी आ जाती कि लिखने वाले को अपने कान मुँह के पास ले जाकर सुनना पड़ता। ऐसी अवस्था देख कर उनके एक मित्र ने एक दिन उनसे कहा कि—"इतने कष्ट में आप लेख न लिखाइए।" इस पर मामा ने कहा कि, "नहीं, जब तक शक्ति है, तब तक अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।" इस प्रकार उन्होंने दस वर्ष तक सुबोध-पत्रिका, इण्डियन स्पेक्टेटर और टाइम्स आदि पत्रों में लेख लिख कर समाज और देश की सेवा की। इस सम्बन्ध में "इण्डियन स्पेक्टेटर" के सर्वस्व, प्रसिद्ध समाज-सुधारक पारसी विद्वान् मलबारी स्वयं लिखते हैं:—

"In a very short time he came to be the best contributor to the columns of the INDIAN SPECTATOR. I could trust him entirely, whether in town or out of it. With all his increasing ailments Mama continued to write so long as he could hold his pen. He then took to scribbling in pencil; gave that up for dictating and when voice and hand both failed, he resorted to pencil jottings. Very valuable were his hints to me; but for hints, or paragraphs or articles it was always a struggle to get him or to disclose his ownership or to accept a modest honorarium."

इस भीष्म की योग्यता कितनी महान् थी, वह कितने महान् थे—इतना कहने से ही हृदय को समाधान नहीं होता। उनकी विचार-जाग्रति असामान्य थी। अपने देश की अवस्था का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनकी विचार-पद्धति इतनी सही होती थी कि किसी भी विषय पर सलाह लेने के लिए देश और समाज के बड़े-बड़े नेता

* Mr. Parmanand's style was terse and pithy; he had a keen sense of honour and wrote with sobriety on the public questions of the day.—MALBARI.

उनके पास आते थे। इस प्रकार के सलाह लेने वालों में भाण्डारकर, तैलङ्ग, रानाडे प्रभृति सभी सामयिक नेता थे। बीमार होने पर भी मामा की चारपाई के पास समाज-सुधारक और देश के नेताओं की भीड़ रोज़ लगी रहती थी।* मामा कहते थे, नवीन शिक्षा से जो जाग्रति हुई है उससे वह समाज की सर्वांङ्गरित † उन्नति होना ज़रूरी समझते थे। यह उनका निश्चयात्मक विचार था। वे कहते थे कि शिक्षा और समाज-सुधार देश के अभ्युदय के लिए सबसे पहले आवश्यक हैं। मामा विलक्षण राजनीतिज्ञ होते हुए भी, इन विचारों के लिए बड़े दृढ़ थे। इसका पता श्रीयुत मलबारी के इन वाक्यों से चलता है:—

"As a publicist Mama was a whole man. To him political progress was not the be-all and end-all of all our existence. Politics claimed only a part of his homage and yet which of our exclusive Politicians surpassed Parmanand in sagacity and force of character."

उनकी चित्त-वृत्ति इतनी शान्त थी कि दस वर्ष तक लगातार बीमार पड़े रहने पर भी किसी को यह नहीं मालूम था कि वे बीमार हैं। बीमारी के समय में वे बड़े ही परहेज़ से रहते थे।

मामा के धर्म-सम्बन्धी विचार कितने उज्ज्वल थे, उनकी कल्पना—उनके एक लेख के दो-चार शब्दों से इस प्रकार की जा सकती है:—

"एकेश्वर और धर्म भिन्न होने पर भी उस पुरुष को एक दिखलाई पड़ते हैं, जो निराकार परमात्मा की खोज में है। वह व्यक्ति अपना सारा ज्ञान अपने कार्यों में प्रदर्शित करता है। अपनी अन्तर-दृष्टि से वह अपने मनोभाव को सत्य और गुण की ओर लगाता है। वह विनम्र-पवित्र आत्मा होना ही सबसे श्रेय समझता है। मन, वचन और कर्म से वह सत्य का पालन करता है। सत्य ही उसके लिए सब कुछ होता है। किसी सांसारिक अनुराग की आशा से नहीं; किन्तु अपनी कर्त्तव्य-बुद्धि से वह सत्य स्वीकार करता है। उसके लिए यह अधीनता स्वेच्छा-रूप में होती है, न कि बाध्य रूप में। वह सब में सत्य देखता है, वह मृत्यु के उपरान्त मुक्ति की राह नहीं देखता—उसकी मुक्ति यहीं से ही आरम्भ हो जाती है और बलवती आशा से बढ़ती जाती है। वह संसार के अन्य सब प्रपञ्चों में न पड़ कर, सत्य ही में ईश्वर-दर्शन करता है। विनम्र और सत्य पथ पर प्रेरित आत्मा को ही अपनी सम्पत्ति मानकर निश्चल हृदय से उसकी प्रार्थना करता है। जिससे और जिसके द्वारा और जिसके लिए सब वस्तुएँ हैं। (From whom and through whom and for whom are all things) यही व्यावहारिक धर्म है। (This is practical religion)".

इस प्रकार मामा ने धर्म का सच्चा मार्ग बतला कर वर्तमान रूढ़ियों के तोड़ने का बड़ा उद्योग किया। उनके स्फूर्तिदायक लेख पढ़कर विरोधियों की आवाज़ बन्द हो जाती थी।

कौटुम्बिक चिन्ता, शारीरिक कष्ट और अन्यान्य अड़चनें आने पर भी वह संसार से दुःखी नहीं हुए—कर्त्तव्य-पराङ्मुख नहीं हुए। मामा जीवन की अन्तिम घड़ी तक समाज और देश की सेवा करते रहे। उनकी यह सेवा कितनी ज़बर्दस्त थी, वह न्यायमूर्त्ति रानाडे के शब्दों में सुनिए:—

"We miss our Political Rishi, Mr. N. M. Parmanand confined to his bed for ten years and more of one continuous suffering, and yet a friend from whom we never heard a word of complaint or of sorrow. In matters of religious and social or Political elevation a purer life and purer soul never lived with us and never worked with us till the last breath left him."

समाज के शिक्षित नवयुवकों को मामा भावी भारत का गौरव मानते थे। पर जब नवयुवक शिक्षा प्राप्त कर नौकरियाँ करने लगे, तब उन्हें दुख हुआ। वे चाहते थे कि हमारे नवयुवक अपना उद्योग करते हुए भी शिक्षा और समाज-सुधार में अपनी शक्ति लगावें।

* The constant presence by his bedside of someone friend or other dearest at every hour of the day during the last ten years of his life talking to him of things passing on outside his darkened chamber and ungrudgingly receiving light from him showed what love and confidence he inspired in those who knew him.

† He was one of those who early perceived that India needed reform in all directions. It was this conviction which made him work with zeal and earnestness to the last in the cause of not only political reform, but of social and religious reform as well.—MALBARI.

सरकार और मिशनरियों के ऊपर ही हमारी शिक्षा का भार नहीं है। वे कहते थे कि शिक्षित नवयुवकों का कर्तव्य है कि जाति के अभ्युदय के लिए मूर्खतापूर्ण जात्यभिमान—अर्थात् ऊँच-नीच का भेद—अनिष्ट रूढ़ियाँ और धार्मिक आडम्बरों को तोड़ने में पूर्ण शक्ति लगावें। वे कहते थे कि बिना इन सुधारों के राजनैतिक सुधारों के लिए देश आगे नहीं बढ़ सकता।* वे इस बात से बड़े दुःखी और व्याकुल होते थे कि राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वाले लोग सामाजिक और धार्मिक सुधार की उपेक्षा करते हैं। ऐसे महान् से महान् राजनैतिक नेता के दब्बूपन और कमज़ोरी से मामा को खेद होता था।

मामा ने अपने सार्वजनिक सेवा के २५ वर्ष तक बम्बई के प्रार्थना-समाज की निरन्तर सेवा की। वे इसके स्थापन करने वालों में से थे। उसका कोष उन्हीं के पास रहता था। मामा के विचारों ने हिन्दू-जाति में धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिए प्रार्थना-समाज को जन्म दिया। उन्होंने अपनी सारी शक्ति इस संस्था के निर्माण में लगा दी। उन्होंने अङ्गरेज़ी और मराठी साप्ताहिक पत्र 'सुबोध-पत्रिका' का कई वर्ष तक सम्पादन किया। उसके पहले अङ्क में "हमारे सम्बन्ध में" लिखते हुए सम्पादकीय स्तम्भ में उन्होंने लिखा था :—

"We shall try to avoid as much as possible all debate. But when we cannot avoid it, we shall try to discuss principles and not personalities. The unfortunate subject of race feeling we mean to discard carefully from our columns but when occasion requires we shall not be afraid to speak the truth without fear or favour. The Patrika represents a religious body and religion means a spirit and not a school".

मामा ने इन शब्दों का सदैव पालन किया। ब्रह्म-समाज की ओर उनका विशेष लक्ष्य था। अनेक ब्रह्म-समाज के सुधारक कार्यकर्ता उनके पास आकर विचार-विनिमय करते थे। मुस्लिम बहिनों का सन्देश उन्होंने ही ब्रह्म-समाज में पहुँचाया था और पत्रिका में भी ज़ोरदार लेख लिखे थे। जब ब्रह्म-समाज के संस्थापक केशवचन्द्र सेन की पुत्री का विवाह कूचबिहार के अल्पवयस्क महाराज से होने की बात प्रकट हुई, तब उन्होंने केशवचन्द्र सेन को ख़ूब आड़े हाथ लिया। उनके लेखों से बङ्गाली समाज में तहलक़ा मच गया। "हिन्दू पेट्रियट" ने केशव बाबू का पक्ष लेकर कहा कि वस्तुतः यह चर्चा केशव बाबू की कुटुम्ब-सम्बन्धी है, उसे सार्वजनिक रूप देकर ब्रह्म-समाज के नेता के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी फैलाना किसी प्रकार ठीक नहीं है। यह वकालत देखकर मामा ने उत्तर दिया:—

"We are humbly of opinion that though the marriage of one's child is a man's private affair, the position and attitude of Keshav Babu in regard to the Brahma Samaj do justify the members of that body in feeling an interest in the present case and in expressing the ground of their disapproval of it and of their apprehension as to its results."

अन्त में, जब कूचबिहार में पुरानी पद्धति से विवाह हुआ, तब केशव बाबू को अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। उस खेदजनक भाव को जब "इण्डियन मिरर" ने प्रकट किया, तब पत्रिका ने भी ख़ूब ही लिखा :—

"The Mirror says Keshav was distressed to see in the wedding hall symbols of idol worship and thought of breaking up the match. *We wish he had done so,* while yet, though late, it was not impossible to retrace his steps, alike in the movement he leads and for the future well being of his child. Our brother . . . finds a ray of consolation in that the principal Brahma rites were preserved intact. But we confess that it is at best a poor consolation in the case of one who holds before him a high ideal.

मामा कहते थे कि "धार्मिक क्रान्ति ही सामाजिक जाति-भेद नष्ट करती है। युवा पुरुषों को इस क्रान्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए। अपनी-अपनी जाति में ही वे इसका बीजारोपण करें और अपने यहाँ से ही सामाजिक सम्बन्ध और बिना जाति-भेद के विवाह

* In Political matters while sympathising with the legitimate aspirations of his countrymen and endeavouring by his pen to urge their claims, he strongly held that moral, social and religious improvement alone could fit them to a higher Political life.—SUBODHA PATRIKA.

करना आरम्भ करें। निस्सन्देह नवयुवकों को उन बातों के त्याग के लिए नहीं कहा जायगा, जो सुधार के विरुद्ध नहीं हैं। इन सुधारों से युवाओं की हिन्दू-जातीयता नष्ट नहीं होगी—वे हिन्दूपन को क़ायम रक्खेंगे। वे तब सच्चे हिन्दू कहलावेंगे।" भावी समाज के सदस्यों के लिए उन्होंने कहा कि—"उनके सब आचार-व्यवहार, विवाह आदि संस्कार एकदम नवीन पद्धति से होने चाहिएँ। लोकमत में फेरफार होने की राह न देखते हुए आगे बढ़ें। अगर अलग हो जाना पड़े, तो हो जाना चाहिए। जाति-भेद सूचक खान-पान व यज्ञोपवीत आदि जो भी काम हों, युवा उन सबका त्याग करें।"

जो युवा सुधारक घर या कुटुम्ब के लोगों के कारण किसी रूढ़ि-संस्कार को स्वयं करता था या उसमें शामिल होता था, मामा उसे आचरणहीन और नामर्द कहते थे। सन् १८७४ से १८८१ तक कई पत्रों में मामा ने धारावाही रूप से लेख लिखे। मामा विचार-सुधारकों के लिए कहते हैं—"हम देखते हैं कि वह समय आ ही गया है कि अब उस पुराने ख़्याल को हटा दें कि—कोई व्यावहारिक सुधार तभी करे, जब कि उसमें कुछ लोग सुधारकों के साथ शामिल हों। यह तो केवल आत्म-वञ्चना है। ऐसा व्यक्ति अपने तईं यह सोचता है कि वह अमुक-अमुक सुधार करने को तो प्रस्तुत है, किन्तु क्या करे, दूसरे लोग भीरु हैं—कायर हैं—वे उसका साथ ही नहीं देते हैं। अगर वह व्यक्ति दृढ़ता से यह सोचता है कि अमुक क्षेत्र में सुधार करना आवश्यक है और वह उसके परिणामों को सहने के लिए तैयार है तो उसे तुरन्त ही उन्हें कार्य-रूप में परिणत करना चाहिए।

"अगर इतनी तैयारी न हो तो सुधार करने के सम्बन्ध में और दूसरे उसमें शामिल हों—इस विषय में वह जितना ही थोड़ा बोले, उतना ही सबके लिए अच्छा है। सम्प्रति हममें कितने ही ऐसे लोग हैं कि जिन्हें जाति-बहिष्कार का भय है। उनका कहना है कि 'जाति-बहिष्कार की आपत्ति हम पर बिलकुल न आने दो। अलग स्वतन्त्र जाति बनाने के झगड़े में भी हम न पड़ें। क्योंकि इस प्रकार से हम अलग होने लगे तो समस्त हिन्दू-जाति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। आज जो असंख्य जातियाँ हैं, उसी प्रकार हमारी भी एक नई जाति हो जायगी।' ऐसा जिनका मत है, उन्हें अपने कुटुम्ब, अपनी जाति और जिन समाजों में उनका प्रभाव पड़ता हो, उन सब में जिस प्रकार भी हो, सुधार का बीजारोपण करना चाहिए। पुराने विचार के लोग बिगड़ेंगे तो बिगड़ने दो, पर जाति-बहिष्कार निश्चय ही मुर्दा हो जायगा। इस प्रकार सुधार करते हुए इष्ट ध्येय को प्राप्त करना चाहिए। पर सब कुछ दूसरों के भरोसे पर छोड़ कर—ख़ुद स्वस्थ होकर बैठ जायँ, यह नीति सर्वपरिघातक है।"

सुप्रसिद्ध सुधारक मामा परमानन्द

मामा अन्तिम श्वास लेते समय तक एकनिष्ठ समाज-सेवक रहे। अन्त-काल समीप आ गया, तब भी देश-हित, समाज-सुधार की चिन्ता नहीं भूली! शरीर में कुछ नहीं रहा था, बार-बार बेसुध हो जाते थे। मृत्यु के ठीक समय एक सार्वजनिक कार्यकर्ता से उस समय के आन्दोलन के सम्बन्ध में विचार प्रकट कर बोले—"Now I must say goodby to you." बस, शरीरान्त हो गया। इस आधुनिक काल के एक ऋषि ने इहलोक की यात्रा समाप्त कर दी।
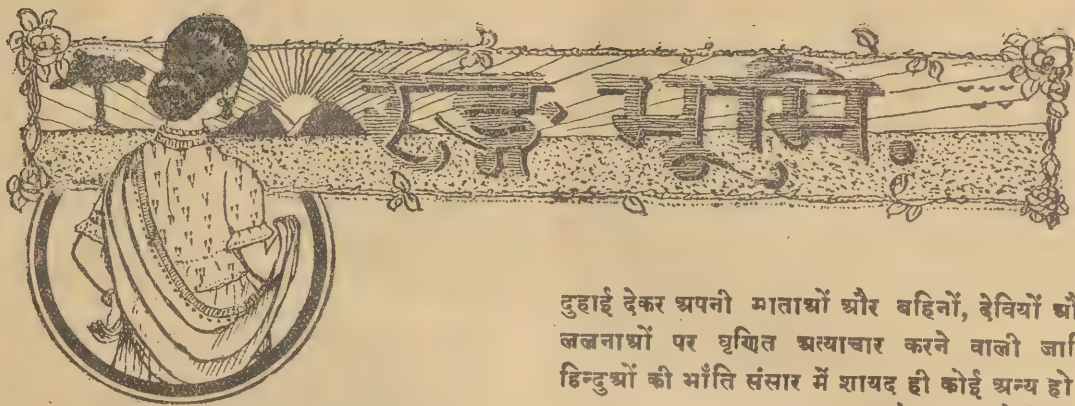
मातृ-मन्दिर की पुकार

हिन्दू-जाति की जन-संख्या भयङ्कर वेग से ह्रास की ओर अग्रसर हो रही है। भारत में बसने-वाली अन्य जातियों की जन-संख्या जहाँ धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित गति के साथ उन्नति कर रही है वहाँ हिन्दुओं की संख्या में प्रति वर्ष कुछ न कुछ कमी अवश्य हो जाती है। हिन्दू-जाति व्यर्थ धार्मिकता का ढोंग रच कर अपने ही हाथों अपने गृह की लक्ष्मी को निर्वासित और अपनी सन्तान की हत्या कर रही है। हम लोगों ने विधवाओं का जीवन किस प्रकार नरक की घोर यन्त्रणा में परिणत कर रक्खा है, यह किसी भी विचारवान् हिन्दू से छिपा नहीं है। समाज में चारों ओर भोग-विलास के विषाक्त वायु-मण्डल के रहते हुए भी हम अपनी नवयौवना और यौवन के उमङ्ग से भरी हुई विधवा बहिनों को आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए बाध्य करते हैं। सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि पुरुषों की इन्द्रिय-लोलुपता और उच्छृङ्खलता पर कोई भी अङ्कुश न रख कर हिन्दू-समाज ने विधवाओं के जीवन और उनकी पवित्रता को सब प्रकार लम्पट पुरुषों की कृपा पर अरक्षित छोड़ दिया है। गुण्डों के द्वारा बहकाई जाकर भोली-भाली और अशिक्षित विधवाएँ जब चरित्र-भ्रष्ट और धर्म से पतित कर दी जाती हैं, तब निर्लज्ज हिन्दू समाज अपराधी गुण्डों को दण्ड न देकर असहाय विधवाओं पर भाँति-भाँति के अत्याचार करना आरम्भ कर देता है। धर्म के नाम पर, धर्म की आड़ में और धर्म-शास्त्रों की दुहाई देकर अपनी माताओं और बहिनों, देवियों और ललनाओं पर घृणित अत्याचार करने वाली जाति हिन्दुओं की भाँति संसार में शायद ही कोई अन्य हो। यह अत्याचार इतना भयङ्कर, क्रूर और असह्य है कि इस चूकमय जीवन में एक बार भी चूक जाने पर स्त्रियों का सारा जीवन नष्ट कर दिया जाता है। इस अमानुषिक अत्याचार से तङ्ग आकर कितनी ही अभागिनी विधवाएँ घर छोड़ कर भाग निकलती हैं और स्थान-स्थान की ठोकरें खाने के बाद अन्त में गुण्डों के जाल में फँस कर वेश्या-वृत्ति स्वीकार करने या विधर्मी होने के लिए बाध्य की जाती हैं। हिन्दू-जाति की इस कलुषित मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप हिन्दुओं का गार्हस्थ्य-जीवन पाप और व्यभिचार का केन्द्र बन गया है। हमारे तीर्थ-स्थान अपने कठोर वक्षस्थल में असंख्य अभागिनी विधवाओं का मूक हाहाकार वहन करते हुए उनके द्वारा होने वाले भ्रूण-हत्या और शिशु-हत्या के पाप से निरन्तर हिन्दू-जाति की मृत्यु की उपासना कर रहे हैं। कौन कह सकता है कि जो जाति जान-बूझ कर इस प्रकार अपनी सन्तान की हत्या और अपनी गृहदेवियों को लाञ्छित और निर्वासित कर रही है, वह संसार में अधिक दिनों तक जीवित रह सकेगी?

हिन्दू-जाति के इस भयङ्कर ह्रास को रोकने के लिए इस बात की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होती है कि देश में शीघ्रातिशीघ्र कुछ ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया जाय जिनमें रह कर अनाथा विधवाएँ शिल्प और कला के द्वारा अपना निर्वाह करते हुए आदर्श जीवन व्यतीत कर सकें और गर्भिणी विधवाएँ सुगमता-पूर्वक बच्चे पैदा करके समाज के उत्पीड़न और अत्याचार से बच सकें। इन विधवाओं को यदि उचित ढङ्ग से शिक्षा दी जाय तो इनके द्वारा देश का अनन्त कल्याण हो

सकता है। इस प्रकार के संरक्षण-गृह खोलने के सम्बन्ध में हमारे पास प्रति सप्ताह एक न एक करुणापूर्ण पत्र आया ही करते हैं। हाल ही के आए हुए कुछ पत्रों के नमूने ये हैं :—

(३५२ पृष्ठ का शेषांश)

कि लड़का कुरूप है, पढ़ा-लिखा भी कुछ नहीं, परन्तु इसकी उन्हें कुछ चिन्ता नहीं—जन्म-पत्र मिल गया बस, सब ठीक है।

एक बड़े दिग्गज ज्योतिषी से इस सम्बन्ध में बातचीत हुई तो वह बोले—आजकल शुद्ध जन्म-पत्र बनते कहाँ हैं? जन्म-काल का ठीक पता तो लगता ही नहीं। घड़ियों से जन्म-काल देखा जाता है। घड़ियाँ ठीक रहतीं नहीं, तब जन्म-पत्र की विधि कैसे मिल सकती है?

मैंने कहा—जब ठीक जन्म-पत्र बनते ही नहीं, तब उनका मिलाना भी व्यर्थ है।

उन्होंने कहा—हाँ, यह कथन आपका उचित है; परन्तु मिलाना ही पड़ता है, न मिलावें तो बनता नहीं।

यह दशा है। एक ओर यह भी कहते हैं कि जन्म-पत्र ठीक नहीं बनते, दूसरी ओर बिना मिलाए काम नहीं चलता। पुरानी लकीर पीटना आवश्यक है—चाहे उसमें कुछ सार हो या न हो।

और सुनिए—बहुधा लोग विवाह करने के लिए नक़ली जन्म-पत्र बना लेते हैं। जब देखा कि असली जन्म-पत्र नहीं मिलता तो ऐसा नक़ली जन्म-पत्र बना लेते हैं जो मिल जाता है। भला इससे क्या लाभ? यदि जन्म-पत्र का झगड़ा ही दूर कर दें तो क्या हर्ज है? परन्तु यह न करेंगे—नाक जो कट जायगी। जन्म-पत्र मिलना अवश्य चाहिए, चाहे जैसे मिले—चाहे नक़ली मिले या असली। अपने आपको धोखा देने का इससे बढ़िया उदाहरण और क्या हो सकता है। सम्पादक जी, हिन्दू-जाति में सनातनधर्मी लोग जन्म से लेकर मरण तक अपने आपको धोखा देने में ही लगे रहते हैं। किसी जाति का पतन इससे अधिक और क्या हो सकता है?

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

* * *

(१)

कासगञ्ज से एक सज्जन एक गर्भिणी विधवा की मर्मभेदी कहानी इस प्रकार लिखते हैं :—

कासगञ्ज
११।५।१६२६

श्रीमान् जी, नमस्ते!

सेवा में निवेदन है कि एक विधवा के ८ मास का गर्भ रह गया है। आप कृपा कर किसी समीपवर्ती संर-

श्रीमती सी० सी० भारतन

आप हाल ही में मालाबार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट एजुकेशनल काउन्सिल की सदस्या नियुक्त हुई हैं। इसके पहले आप कालीकट तालुक बोर्ड की सदस्या थीं।

क्षण-गृह का पता बता दें। वहाँ बच्चा भी ले लिया जाय तो बड़ी अच्छी बात हो। विधवा अगरवाल जाति की है और बहुत ही ग़रीब है। उसके पास ज़्यादा ख़र्च भी नहीं है। आप जो मुनासिब समझें वह किया जाय। × × × आप कोई उपयुक्त राय बता देंगे तो बेचारी विधवा पर बड़ी कृपा होगी। हमने उसे बहुत

समझा-बुझा कर और तसल्ली देकर आत्महत्या करने से रोका है। कृपा कर उसके लिए कोई ऐसा उपाय बतलावें जिससे वह सामाजिक बहिष्कार से बच जाय × × ×।

* * *

सौभाग्यवती मलन्दकर

आप बम्बई में म्युनिसिपल गाइड का कार्य सम्पादन करती हैं। बम्बई म्युनिसिपल स्कूल्स-कमिटी की ओर से आप गाइड्स एण्ड टीचर्स कॉन्फ्रेन्स के आगामी अधिवेशन में सम्मिलित होने वाली हैं।

(२)

नहटौर (ज़िला बिजनौर) निवासी एक सज्जन एक गर्भिणी विधवा के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं :—

१३। ५। १९२९

श्रीयुक्त पूज्य सम्पादक जी,

सादर नमस्ते !

सेवा में निवेदन है कि 'चाँद' में संरक्षण-गृह के सम्बन्ध में जो लेख निकला था, तदनुसार कोई संरक्षण-गृह अभी तक स्थापित हुआ या नहीं ?

मैं एक २२ वर्षीया गर्भिणी ब्राह्मणी विधवा को संरक्षण-गृह में जाने की अनुमति दे चुका हूँ और प्रति मास उसकी यथाशक्ति सहायता भी कर सकता हूँ। परन्तु सामाजिक बन्धन के कारण मैं यहाँ पर उसकी कोई व्यवस्था करने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

अतः नम्र निवेदन है कि इस पत्र का शीघ्र उत्तर देकर अबला की रक्षा का उपाय बतावेंगे। अब मुझे केवल आप पर ही भरोसा है। ५ मास का गर्भ हो चुका है। उत्तर शीघ्र दीजिए और दो प्राणियों की जीवन-रक्षा कीजिए।

* * *

श्री० सरस्वतीबाई दिवे

आप बम्बई की इन्फ़ैण्ट वेलफ़ेयर सोसाइटी में काम करती हैं। आपकी सेवाओं से प्रसन्न होकर हर एक्सेलेन्सी लेडी साइक्स ने हाल ही में आपको एक पदक प्रदान किया है।

हमारे पास इस प्रकार के करुणापूर्ण पत्र नित्य ही

आया करते हैं, जिसमें गर्भिणी विधवाओं की रक्षा करने में हमसे सहायता माँगी जाती है, पर बिना किसी उपयुक्त संस्था के हम व्यक्तिगत रूप से कर ही क्या सकते हैं। आज तक व्यक्तिगत रूप से हमसे जो कुछ हो सका है, हमने अभागिनी बहिनों की सेवा की है। अनेक महिलाओं को हमने श्रद्धेय मोहता जी के द्वारा स्थापित कराँची तथा बीकानेर के संरक्षण-गृहों में जाने की सलाह दी है। स्त्रियों का सर्वस्व यों तो समस्त भारत में लम्पट पुरुषों के द्वारा अपहरण किया जाता है, पर दुर्भाग्य से युक्तप्रान्त में इसका विशेष आधिक्य है। मिर्ज़ापुर, झाँसी, कानपुर, प्रयाग अथवा काशी की ऐसी अभागिनी स्त्रियों से यह आशा करना कि वे ७-८ मास का कलङ्क पेट में लेकर इतनी दूर की यात्रा करेंगी, दुराशा मात्र है। एक और भी कारण है। एक बार ऐसा विकट धोखा खाकर स्त्रियाँ सहसा किसी का विश्वास भी नहीं करतीं, उनका ऐसा करना नितान्त स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि प्रयाग में एक विशाल संरक्षण-गृह की नितान्त आवश्यकता है, जिसमें कम से कम १००-१५० स्त्रियों के रहने का तथा आदर्श जीवन व्यतीत करने का समुचित प्रबन्ध हो सके। इस कार्य के लिए कम से कम एक लाख रुपयों की आवश्यकता है, परन्तु फ़िलहाल २५ हज़ार रुपए मिल जाने से भी हम संरक्षण-गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कर देंगे। अब तक हमें १३७००) के वचन तथा २००।=) नक़द प्राप्त हुए हैं। दानी सज्जनों की नामावलि समय-समय पर 'चाँद' में प्रकाशित होती रही है।

इसी प्रकार के हमें दो-चार और भी वचन मिले हैं। अतएव देशवासियों की इस असाधारण जागृति ने हमें एक बार फिर आशा का आलोक दिखा दिया है और हृदय की सारी सञ्चित शक्ति लगा कर भी हमने इस संस्था को चलाने की प्रतिज्ञा कर ली है। हमें पूर्ण आशा है, प्रत्येक विचारशील देशवासी यथाशक्ति दान भेज कर हमारे इस पवित्र अनुष्ठान को सफल करने में हमारा सहायक होगा। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति १ पैसे से लाख रुपए तक इस प्रस्तावित संरक्षण-गृह के सहायतार्थ भेज सकता है। जिन लोगों का ५००) अथवा इससे अधिक दान आएगा, उनके दान से संरक्षण-गृह का एक कमरा बनवाया जायगा और उस पर दानी सज्जन अथवा देवी के नाम की पटरी लगाई जायगी। किसी अवसर पर दान देते समय अथवा शादी-विवाह के उत्सवों पर दानी सज्जनों को इस संस्था की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

इस प्रस्तावित संरक्षण-गृह का नाम 'मातृ-मन्दिर' रक्खा जायगा, और भवन-निर्माण के लिए जमुना नदी के उस पार एक बहुत रमणीक और विस्तृत स्थान लेने का प्रबन्ध हो रहा है। ज़मीन स्थानीय एग्रिकलचरल इन्स्टीट्यूट (Agricultural Institute) के समीप है।

कुमारी जयकला देवी, एम० ए०

आपको यू० पी० सरकार ने शिक्षा की पाश्चात्य प्रणालियों का अध्ययन करने के लिए २४० पौण्ड सालाना की छात्रवृत्ति प्रदान की है।

और इस संस्था के प्राण सुविख्यात अमेरिकन, मिस्टर हिग्गिनबॉटम (Mr. Sam Higginbottam) ने सपरिवार इस उद्योग में हमारी सहायता करने का वचन दिया है। प्रयाग की अनेक शिक्षित महिलाओं ने सब प्रकार संस्था की सहायता करने का विश्वास दिलाया है, अच्छे-अच्छे पुरुष तथा लेडी डॉक्टरों ने भी पूर्ण सहयोग का वचन दिया है। श्रीमती विद्यावती सहगल स्वयं 'मन्दिर'

में रहने वाली महिलाओं की देख-भाल करेंगी और उन्हें शिक्षा देंगी। इस संस्था का उद्देश्य निम्न-लिखित होगाः—

उद्देश्य

(१) निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की हर प्रकार की सहायता करना।

(२) ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर, काम के क्षणिक वेग के उन्माद में प्रवाहित होकर अपना सर्वनाश कर चुकी हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना—चाहे वे समाज से ठुकराई जाकर वेश्या ही क्यों न हो गई हों।

डॉक्टर सुशीलाबाई जागीरदार, एल० सी० पी० एण्ड एस० (बम्बई) एल० एम० (डबलिन)

(विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए)

(३) असहाय तथा अनाथ विधवाओं की सेवा (उपकार नहीं) करना।

(४) जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीतादि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

(५) जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(६) ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे हों तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

(७) यदि कुमार्ग द्वारा उत्पन्न हुए बच्चे सड़क या पेड़ के नीचे पड़े हुए मिलें, तो उन्हें लाकर उनका पालन-पोषण करना तथा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(८) जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही विवाह करना चाहती हों और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

(९) गर्भवती स्त्रियों की विशेष रूप से सहायता करना, चाहे वे कुमारी हों अथवा विधवा। उनके प्रसव का समुचित और सुचारु रूप से प्रबन्ध करना और उनको सामाजिक लाञ्छनाओं से बचाना।

(१०) इस प्रकार उत्पन्न हुए बालकों की उचित देख-भाल, उनका लालन-पालन तथा शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

हम इस अपील की ओर 'चाँद' के विशाल परिवार का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं और आशा है, २-३ मास के भीतर पूरे १ लाख रुपए एकत्र हो जायँगे, ताकि शीघ्र से शीघ्र 'मातृ-मन्दिर' की नींव डाली जा सके। दान अथवा वचन निम्न-लिखित पते पर भेजना चाहिए :—

श्रीरामरखसिंह सहगल, नियोजक 'मातृ-मन्दिर'
२८, एडमॉन्स्टन रोड, इलाहाबाद।

R. SAIGAL, Esq.,
Organiser, Mattri Mandir,
28, Edmonstone Road, Allahabad.

रुपए मिलने पर यहाँ से छपी हुई रसीद दानी सज्जनों की सेवा में भेजी जायगी और प्रत्येक मास के 'चाँद' में दाताओं की नामावली भी धन्यवाद-सहित प्रकाशित होती रहेगी।

इस अपील की ओर हम देश के समस्त पत्र-पत्रिकाओं का ध्यान भी आकर्षित करना चाहते हैं और उनके सहयोग की आशा करते हैं।

* * *

'चाँद' पर नया प्रहार

पिछले सात वर्षों से 'चाँद' विशुद्ध सेवा-भाव से प्रेरित होकर भारत की अशिक्षित और गँवार जनता में ज्ञान का प्रचार और सामाजिक कुप्रथाओं के उन्मूलन का प्रयत्न करता आ रहा है। समाज के लिए हमारी सेवाओं की आवश्यकता और उपयोगिता को स्वीकार करके सरकार ने 'चाँद' को सरकारी स्कूलों और पुस्तकालयों में जारी कर रक्खा था; परन्तु हाल ही में संयुक्त-प्रान्त के डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन की एक गश्ती चिट्ठी पाकर हम अवाक् रह गए। इस चिट्ठी के द्वारा डाइरेक्टर ने प्रान्त के सभी स्कूलों और गर्ल्स स्कूलों के इन्स्पेक्टरों को हिदायत की है कि अब से 'चाँद' का सरकारी स्कूलों और पुस्तकालयों में जाना बन्द कर दिया जाय। पत्र में इस कठोर आज्ञा का कोई भी कारण नहीं बताया गया है।

इसके पहले सरकार ने जिस निन्दनीय और अनुचित प्रकार से 'चाँद' का फाँसी-अङ्क ज़ब्त कर लिया था वह पाठकों पर विदित ही है। हाल में इस कार्यालय से "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" नाम की एक बहुत ही खोजपूर्ण और आदि से अन्त तक प्रतिष्ठित अङ्गरेज़-लेखकों के प्रमाणों से भरी हुई ऐतिहासिक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। यू० पी० सरकार ने उसके प्रकाशित होने के चार ही दिन बाद बिना कोई कारण बताए उसकी सभी अवशिष्ट प्रतियों को ज़ब्त कर लिया। कहना न होगा कि हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में यह ज़ब्ती क्रूरता और निर्दयता में अपना सानी नहीं रखती है। अभी इस गहरी क्षति से हम सँभलने भी न पाए थे कि 'चाँद' का सरकारी स्कूलों और पुस्तकालयों में जाना बन्द करके सरकार ने हमारे ऊपर तीसरा प्रहार कर दिया है। हमें सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि बार-बार पूछने पर भी सरकार हमें यह बताने का सौजन्य नहीं दिखाती है कि उक्त पुस्तक का कौन सा अंश आपत्तिजनक होने के कारण वह इतनी जल्दीबाज़ी के साथ ज़ब्त कर ली गई है। सरकार हमारे ऊपर अविराम एक के बाद दूसरा प्रहार करती चली जा रही है और हम अनेक बार अपने ही हृदय में अपने अपराधों को ढूँढ़ने का असफल प्रयत्न करके किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति निश्चेष्ट हो रहे हैं।

* * *

अछूतोद्धार का स्वाँग

राष्ट्रीय सङ्गठन के कार्य में समाज-सुधार का क्या महत्व है, इसे हमारे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं ने अभी तक भली-भाँति नहीं समझा है। कॉङ्ग्रेस ने अपने

डॉक्टर इन्दुमता बलराम सेनजित
एम० बी० बी० एस०

आप हाल ही में लाहौर के लेडी एटचिसन हॉस्पिटल में हाउस सर्जन नियुक्त हुई हैं।

जन्मकाल से ही इस कार्य की मूर्खतापूर्ण अवहेलना की है। विगत ४३ वर्षों के लम्बे समय के बाद जब उसे अपनी भूल मालूम भी हुई है तब भी उसने इस अत्यावश्यक कार्य को अपने कार्यक्रम में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं

दिया है। अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा-समिति की पिछली दिल्ली वाली बैठक में अस्पृश्यता को दूर करने के लिए दो सज्जनों की एक उप-समिति बनाई गई थी, जिसके सदस्य सेठ जमनालाल बज़ाज़ और पण्डित मदनमोहन मालवीय हैं। जहाँ तक हमें मालूम है, इस उप-समिति ने अभी तक कोई ठोस कार्य नहीं किया है। आधा साल बीत जाने पर समिति ने एक अपील

पण्डित रामचन्द्र जी सारण तथा आपकी नव-विवाहिता धर्मपत्नी श्रीमती रामप्यारी

(परिचय अन्यत्र देखिए)

प्रकाशित करके अछूतों की दशा सुधारने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किए हैं; पर उस अपील से इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता कि उन विचारों को कार्यरूप में लाने के लिए समिति किन उपायों का अवलम्बन कर रही है। जहाँ तक देखने में आया है, शायद इस कार्य की पूर्ति के लिए व्याख्यान देना सबसे अधिक उपयोगी समझा गया है।

समिति के सदस्य पण्डित मदनमोहन मालवीय ने हाल ही में दक्षिण भारत की यात्रा की थी। इस यात्रा में पण्डित जी ने अछूतोद्धार के नाम पर व्याख्यानों की झड़ी लगा दी। सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इन व्याख्यानों में पण्डित जी ने अपने दक़ियानूसी विचारों को प्रकट करके अछूतोद्धार-आन्दोलन को आगे बढ़ाने के बदले हिन्दू-समाज की उन विशृङ्खलता-जनक रूढ़ियों का पोषण किया है जिनका अस्पृश्यता एक अवश्यम्भावी फल है। मद्रास के समुद्र-तट पर जो सभा हुई थी उसमें मालवीय जी ने इस बात पर हर्ष प्रगट किया कि अछूतों की संख्या जितनी बतलाई जाती है वह वास्तव में उससे बहुत ही कम है और बहुत से आचार्य अछूतों को पवित्र मन्त्रों की दीक्षा भी दिया करते हैं। पण्डित मालवीय जी एक ही साँस में जाति-भेद का समर्थन और अन्तर्जातीय विवाहों का विरोध भी कर गए। अन्त में यह कहकर कि अस्पृश्यता-निवारण के प्रयत्न में प्रेम और समझौते से काम लेना चाहिए, पण्डित जी ने अछूतों के प्रति अपनी उदासीनता और अपने विचारों का खोखलापन दोनों को प्रमाणित कर दिया। अछूतों ने प्रेम और समझौते से काम लेने के अतिरिक्त आज तक और किया ही क्या है? सदियों से उच्च वर्ण के हिन्दुओं द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होकर भी उन्होंने हिन्दू-धर्म के प्रति अपना प्रेम नहीं छोड़ा है। आज भी वे अपने को हिन्दू और ब्राह्मण को पूज्य कहने में अपना गौरव समझते हैं। क्या इतने पर भी उन्हें प्रेम और समझौते से काम लेने का उपदेश देने की आवश्यकता थी? जिस जात-पाँत और छुआछूत के कारण हिन्दू-समाज अनेक विभागों में बँटकर शक्तिहीन और राष्ट्रीयता से शून्य हो गया है, उसी का पण्डित मालवीय जी अछूतोद्धार के नाम पर समर्थन कर रहे हैं। जिस धर्मान्ध समुदाय ने वर्णाश्रम-धर्म के वास्तविक उद्देश्य को नष्ट करके हिन्दू-समाज में कृत्रिम जाति-भेद और छुआछूत की अन्धपरम्परा प्रचलित कर रक्खी है, उसी समुदाय के ऊपर भारत के ७ करोड़ अछूतों की वर्त्तमान दुर्दशा का उत्तरदायित्व भी है। मालवीय जी ने जात-पाँत का समर्थन और अन्तर्जातीय विवाहों का विरोध करके वास्तव में उस धर्मान्ध समुदाय और उसके द्वारा सम्पन्न होने वाली अछूतों की दुर्दशा का समर्थन किया

है। मालवीय जी कहते हैं कि बहुत से आचार्य नीच से नीच व्यक्ति को भी पवित्र मन्त्रों की दीक्षा दिया करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि भारतवर्ष में कौन सा आचार्य है जो अछूत-बच्चों को वेद-मन्त्र की दीक्षा देकर उन्हें शिष्य-रूप से ग्रहण कर सकता है और उनके हाथ का दिया हुआ 'अन्नं फलं पुष्पं तोयम्' दक्षिणा-स्वरूप स्वीकार कर सकता है। स्वयं मालवीय जी ने हाल ही में काशी और प्रयाग में अछूत-बच्चों को 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो नमः शिवाय' का मन्त्र-दान देने का नाटक बड़ी सफलता-पूर्वक अभिनीत किया था, पर उन्हें भी अपने अछूत शिष्यों के हाथ का दिया हुआ एक ग्रास अन्न खा लेने अथवा एक घूँट जल पी लेने का साहस नहीं हुआ। यदि मालवीय जी मन्त्रों की दीक्षा और शास्त्रों की दोहाई देने का ढोंग न रच कर मनुष्य की विचार-बुद्धि को जाग्रत करते, हिन्दुओं के मन को शास्त्रों की ग़ुलामी से मुक्त करके उसमें ज्ञान का बीज बोते और अपने अछूत शिष्यों को गङ्गास्नान से शुद्ध करके और रामनामाङ्कित वस्त्र पहना कर उनके साथ एक पंक्ति में बैठ कर भोजन कर लेते तो हम उनके नैतिक साहस की प्रशंसा करते और उस अवस्था में उनके सुललित व्याख्यानों का भी लोगों पर गहरा असर पड़ता। हज़ार उपदेश से एक उदाहरण अच्छा है। पण्डित मालवीय जी जब तक अछूतों के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन कार्यतः नहीं करेंगे तब तक उनके मन्त्रों की दीक्षा और निरर्थक व्याख्यानों से कोई वास्तविक कार्य सिद्ध न होगा।

वास्तव में पण्डित मालवीय जी के समान एक कट्टर व्यक्ति को अछूतोद्धार-समिति का सदस्य चुन कर कॉङ्ग्रेस की कार्य-समिति ने अछूतोद्धार के प्रति अपनी निन्दनीय उदासीनता का परिचय दिया है। भारतीय जागृति का आन्दोलन उस अवस्था को पार कर चुका है, जब राष्ट्र की सोई हुई शक्तियों को उत्तेजनापूर्ण व्याख्यानों के द्वारा जगाने की आवश्यकता होती है। इस समय सच्चे और स्वार्थ-त्यागी स्वयंसेवकों की आवश्यकता है, जो अछूतों की गन्दी झोंपड़ियों में जाकर उन्हें स्वास्थ्य और सफ़ाई की शिक्षा दे सकें, उनके खान-पान और रहन-सहन के नियमों को सुधारें और उनके हृदय में घुसे हुए आत्म-अव-मानना के भावों को दूर कर उनमें आत्माभिमान का सञ्चार कर दें। अछूत जब शिक्षित हो जायँगे और अपने मनुष्यत्व का अनुभव कर लेंगे तब वे अपने मनुष्योचित अधिकारों की रक्षा स्वयं कर लेंगे। आशा है अछूतोद्धार-समिति केवल व्याख्यानों से काम न लेकर शुद्ध सेवा-भाव से प्रेरित स्वयंसेवकों की एक सङ्गठित संस्था का निर्माण करेगी, जो स्थायी रूप से अछूतों के उद्धार का प्रयत्न कर सके।

* * *

एशिया का दुर्भाग्य

अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व अमीर अमानुल्लाह का पतन न केवल अफ़ग़ानिस्तान, वरन् समस्त एशिया के लिए घोर दुर्भाग्य की बात है। पूरब की जातियाँ एक ओर अपनी प्राचीन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और धार्मिक सङ्कीर्णताओं तथा दूसरी ओर पश्चिमी राष्ट्रों की कूटनीति और भयङ्कर आर्थिक लूट का शिकार होकर जर्जर और शक्तिहीन हो रही हैं। इस दोहरी विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए समस्त एशिया की अन्तरात्मा त्राहि-त्राहि पुकार रही है। इस करुण पुकार को सुन कर चीन में नीतिनिपुण सनयात सेन, टर्की में युद्ध-कुशल मुस्तफ़ा कमाल पाशा, भारत में महात्मा गाँधी और अफ़ग़ानिस्तान में देशभक्त अमानुल्लाह का उदय हुआ था। स्वर्गीय सनयात सेन चीन को स्वतन्त्र कर गए, मुस्तफ़ा कमाल पाशा ने टर्की से रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का नामो-निशान मिटा दिया, गाँधी ने एक बार भारत में अङ्गरेज़ी राज्य की जड़ों को हिला दिया था और शीघ्र ही भविष्य में दूसरी बार उसे पहले की अपेक्षा भी एक अधिक ज़बर्दस्त धक्का देने की तैयारी में लगे हुए हैं। अमानुल्लाह के ज़िम्मे यह काम बाक़ी था कि वे युद्ध-कुशल टर्की और जाग्रत ईरान, स्वतन्त्र चीन और युवक जापान तथा स्वराज्य-पिपासु भारत और संसार-हितैषी रूस को ऐक्य के सूत्र में बाँध कर एशिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न का अन्तिम निबटारा कर देते। पर एशिया के भाग्य में वह शुभ दिन देखना नहीं बदा था। मुल्लाओं की धार्मिक कट्टरता और क़बीलों की अदूरदर्शिता के सामने अमानुल्लाह की देशभक्ति और समाज-सुधार की

शुभेच्छाओं को पराजित होना पड़ा। अफ़ग़ानिस्तान ने अमानुल्लाह के समान सुयोग्य, नीतिनिपुण और प्रजा-वत्सल शासक को अपमानित करके अपने ही हाथों अपना भाग्य फोड़ लिया और उसके साथ ही एशिया के तिमिराच्छन्न भाग्याकाश में उगता हुआ नवीन सूर्य भी अकाल में ही अस्त होगया।

अमानुल्लाह संसार के उन श्रेष्ठ और कुशल शासकों में से थे, जिनके हाथ में शासन का सूत्र आते ही मुर्दे राष्ट्रों में भी नवजीवन का सञ्चार हो जाता है और पिछड़ी हुई जातियाँ भी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान् हो जाती हैं। अमानुल्लाह ने अफ़ग़ानिस्तान की बर्बर प्रजा को सभ्य और अफ़ग़ान-राष्ट्र को संसार की एक महान् शक्ति बनाने का जो विराट् प्रयत्न किया, उसमें उन्हें प्रशंसनीय सफलता मिली। उनके सिंहासनारूढ़ होते ही अफ़ग़ानिस्तान की अस्त-व्यस्त और बिखरी हुई शक्तियों में एक नवीन स्फूर्ति का सञ्चार हो गया और अफ़ग़ानों का जीवन एक नई ज्योति से प्रदीप्त हो उठा। अमानुल्लाह के पूर्वजों के शासन-काल में अफ़ग़ानिस्तान कहने के लिए तो स्वतन्त्र था, पर वास्तव में वह भारत की ब्रिटिश सरकार का ग़ुलाम था। एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को अपने क़ाबू में रखने के अभिप्राय से भारत-सरकार अमानुल्लाह के पिता अमीर हबीबुल्लाह को प्रति वर्ष १८ लाख रुपए वज़ीफ़े के तौर पर दिया करती थी। देशभक्त अमानुल्लाह के लिए परतन्त्रता की यह बेड़ी असह्य थी। उन्होंने फ़ौरन अफ़ग़ानिस्तान को स्वतन्त्र करने के उद्देश्य से सेना लेकर अङ्गरेज़ी भारत पर आक्रमण कर दिया। उस समय भारत की अङ्गरेज़ी सरकार महात्मा गाँधी के प्रचण्ड प्रताप के सामने थर-थर काँप रही थी। उसे अफ़ग़ानिस्तान से कलह मोल लेने का साहस न हुआ। भारत-सरकार ने फ़ौरन् अफ़ग़ानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलन से भारत को जो लाभ नहीं हुआ वह अमानुल्लाह ने अपनी बुद्धि के बल से अफ़ग़ानिस्तान के लिए प्राप्त कर लिया।

संसार के सभी देशों से अफ़ग़ानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता को स्वीकार कराने के बाद अमानुल्लाह ने राज्य की भीतरी कमज़ोरियों को दूर करने की ओर ध्यान दिया। उन्होंने नवीन ढङ्ग से सेना का सङ्गठन किया। उसके शीघ्र आने-जाने के लिए मार्गों की व्यवस्था की। अफ़ग़ानिस्तान के बहुत से विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर यूरोप की युनिवर्सिटियों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा। इन महत्वपूर्ण सुधारों के फल-स्वरूप थोड़े ही दिनों में अफ़ग़ानिस्तान की शक्ति और प्रतिष्ठा यहाँ तक बढ़ गई कि अमीर अमानुल्लाह जब पश्चिमी देशों का अनुभव प्राप्त करने के लिए यूरोप में भ्रमण कर रहे थे, उस समय संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों ने उनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए ठाट-बाट से उनका स्वागत करने में एक दूसरे से होड़ लगा लिया था। किसी ने अपनी संस्कृति की मधुरता दिखाकर उन्हें मुग्ध करने की चेष्टा की और किसी ने अपने सैनिक प्रभुत्व का प्रदर्शन कर उन्हें भयभीत करने की। पर अमानुल्लाह की देशभक्ति और नीति-निपुणता दोनों प्रशंसनीय थीं। उन्होंने न तो किसी के मधुर व्यवहार पर मुग्ध होकर उसे अपने देश में अनुचित रूप से टाँग फैलाने का अधिकार दिया और न वे किसी की शक्ति देखकर उससे भयभीत ही हुए।

यूरोप से लौट कर अमानुल्लाह ने प्रजा के सामने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सुधारों की योजना पेश की। उनका हृदय अपनी प्यारी जन्मभूमि अफ़ग़ानिस्तान को कुसंस्कारों से मुक्त और उन्नति के शिखर पर विराजमान देखने के लिए व्याकुल हो रहा था। सब से पहले उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के प्रतिनिधियों और मुल्लाओं की सभा करके सदियों से परदे के नरक में सड़ती हुई स्त्री-जाति को स्वतन्त्र करने का प्रस्ताव किया। उस विशाल परिषद् के सामने भूतपूर्व अमीर ने आँखों में आँसू भर कर कहा कि इस्लाम के पवित्र सिद्धान्तों की रक्षा और अफ़ग़ानिस्तान की उन्नति के लिए यदि आवश्यक हो तो मैं अपने प्राणों को भी निछावर करने को तैयार हूँ। पर अफ़ग़ानिस्तान के भाग्य में दासता और दुःखों के मार्ग से होकर गुज़रना बदा था। वह अपने प्रजावत्सल और देशहितैषी शासक की मङ्गलमयी भावनाओं का आदर नहीं कर सका। शोरबाज़ार के मुल्ला ने षड्यन्त्र रचकर और क़बीलों ने विश्वासघात करके अफ़ग़ानिस्तान के अनन्य भक्त अमीर अमानुल्लाह को सिंहासन-त्याग करने के लिए बाध्य किया।

अमानुल्लाह अपनी प्रजा को किस प्रकार प्राणों से भी बढ़कर प्यार करते थे, इसका स्पष्ट निदर्शन इस बात

से मिल जाता है कि विद्रोह के प्रारम्भ से ही उन्होंने रक्तपात को बचाने का प्रयत्न किया। वह चाहते तो शोरबाज़ार के पाजी मुल्ला को कड़ी से कड़ी सज़ा दे सकते थे। उसके षड्यन्त्रकारी साथियों को फाँसी पर लटका देना उनके लिए बाएँ हाथ का खेल था। पर इस प्रजावत्सल नरेश ने अपनी सन्तान के समान प्यारी प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए प्रसन्नतापूर्वक सिंहासन का परित्याग कर दिया और अन्त समय तक प्रजा के रक्त से अपने हाथों को कलङ्कित न होने देने के अभिप्राय से ही इस समय उसने ब्रिटिश भारत में शरण ली है। अमानुल्लाह का अपमान करके अफ़ग़ानिस्तान ने जो पाप किया है, इसका भयङ्कर परिणाम उसे शताब्दियों तक भोगना पड़ेगा। उसके दुर्दिन के लक्षण अभी से प्रगट होने लग गए। अमानुल्लाह के शासन-काल में जिस अफ़ग़ानिस्तान के साथ भारत की अङ्गरेज़ी सरकार मित्रता का व्यवहार करने में अपना सौभाग्य समझती थी उसी अफ़ग़ानिस्तान के वर्तमान शासक भिश्ती-पुत्र ग़ाज़ी हबीबुल्लाह और उनके प्रतिद्वन्द्वी नादिरख़ाँ ने उस दिन करबद्ध होकर ब्रिटिश सरकार से सहायता की प्रार्थना की थी। ऐसे अयोग्य और अदूरदर्शी शासक अफ़ग़ानिस्तान को कब तक स्वतन्त्र रख सकेंगे? अफ़ग़ानिस्तान के जिस सौभाग्य की बदौलत उसके साथ मैत्री स्थापित करने में एक दिन संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ अपने को चरम चरितार्थ समझती थीं, आज अफ़ग़ानिस्तान का वही भाग्य भिखारी-वेश में संसार के सामने शरण-भिक्षा माँगने के लिए जा रहा है!

भारत के धर्मान्ध मुसलमान जो शरियत की आड़ लेकर रूखी रोटी के टुकड़ों के प्रलोभन में भारत की स्वतन्त्रता को सदा के लिए अङ्गरेज़ी सरकार के हाथों बेंच देना चाहते हैं, अफ़ग़ानिस्तान की इस दुर्दशा का निरीक्षण करें और इस निरीक्षण से लाभ उठावें। भारत के मुसलमानों ने मज़हब का ढोंग रचकर भारतीय स्वतन्त्रता के मार्ग में जो रोड़े अटकाए हैं उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए भारत के सभी धर्मान्ध मुसलमान इकट्ठे होकर रोएँ और तब तक रोएँ जब तक उनके आँसुओं के प्रवाह में मुस्लिम जाति की झूठी धार्मिकता के सभी पाप न धुल जायँ।

अमानुल्लाह के प्रशंसनीय प्रयत्नों को राष्ट्रीय भारत ने सदा सहानुभूति की दृष्टि से देखा है और यथाशक्ति उन्हें नैतिक सहायता भी प्रदान की है। जिस दिन वे अमीर की हैसियत से भारत में पधारे थे, उस दिन भी भारत ने उनका सत्कार किया था और आज भी भारतीय देश-भक्त उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रहे हैं। हम जानते हैं कि देशभक्त अमानुल्लाह भारत से शीघ्र ही विदा हो जायँगे और संसार के किसी निर्जन कोने में बैठकर अफ़ग़ानिस्तान तथा मुस्लिम-जाति के पापों का प्रायश्चित्त करेंगे; पर हमारी आँखें अतृप्त आकांक्षा के साथ सदा उनकी ओर लगी रहेंगी।

* * *

सत्याग्रह की विजय

सत्याग्रह का सिद्धान्त भारतवर्ष के इतिहास में नया नहीं है। प्राचीन काल में प्रह्लाद ने शान्तिमय सत्याग्रह के द्वारा अपने अन्तष्करण की पवित्रता की रक्षा की थी। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे दीवार में चुन दिए गए, पर उन्होंने अपना धर्म न छोड़ा। गुरु अर्जुनदेव जीते जी खौलते तेल की कड़ाही में डाल कर भूने गए और गुरु तेग़बहादुर का शरीर हड्डियों की प्रत्येक जोड़ पर से काट कर धीरे-धीरे अलग किया गया; पर इन महात्माओं ने न तो अपने सिद्धान्त पर से टलने की बात सोची और न उन्होंने अपने हत्यारों से बदला लेने अथवा उन्हें हानि पहुँचाने का ही प्रयत्न किया। इतिहास में इस प्रकार के वैयक्तिक सत्याग्रह के उज्ज्वल उदाहरण तो अनेक मिलते हैं, पर सत्याग्रह को विस्तृत क्षेत्र में लाकर उसे सामूहिक युद्ध का साधन बनाने का श्रेय महात्मा गाँधी को ही प्राप्त है।

असहयोग-आन्दोलन की विफलता ने इस बात को निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया कि कोई भी सार्वजनिक कार्य अधिक विस्तृत पैमाने पर करने का समय भारतवर्ष में अभी तक उपस्थित नहीं हुआ है। भारतवासियों का चरित्र अभी तक इतना उन्नत नहीं हो सका है कि वे अपने को विशाल क्षेत्र में सङ्गठित करके कठोर अनुशासन (Strict discipline) का पालन करते हुए किसी भी महान् कार्य की साधना सफलतापूर्वक कर सकें। अभी कुछ दिनों तक हमें छोटे पैमाने

पर और छोटी-छोटी संस्थाओं में काम करके अपने को कठोर अनुशासन का पालन करने के योग्य बनाना चाहिए। छुआछूत और जात-पाँत की हानिकारक रूढ़ियों के कारण हमारे देशवासियों में एक साथ मिलकर रहने की शक्ति का इतना अधिक अभाव हो गया है कि हममें से कोई चार आदमी मिल कर अपना खाना तक एक साथ नहीं पका सकते। हमारे राष्ट्रीय स्वयं-सेवक ड्रिल करते समय जितने शिष्टाचार का पालन करते हैं, किसी क्रिश्चियन अनाथालय की लड़कियाँ पंक्ति बाँध कर रास्ता चलते हुए उससे अधिक शिष्टाचार का पालन करती हैं। इन छोटी-छोटी बातों से ही जातीय चरित्र का पता चल जाता है। बड़े-बड़े नेताओं की ओर दृष्टि उठा कर देखा जाय तो उनकी अवस्था और भी शोचनीय है। आज एक दल की स्थापना होती है और कल ही एक छोटी सी बात पर मतभेद होकर उसके तीन टुकड़े हो जाते हैं। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण चिल्ला-चिल्ला कर हमारे बहरे कानों को यह सुनाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि हमें अपने जातीय चरित्र में और अधिक दृढ़ता लाना चाहिए और अपने को किसी नियम के बन्धन में बाँध कर रख सकने के योग्य बनाना चाहिए। जब तक हममें इस गुण का उदय न होगा तब तक हम सङ्गठित नहीं हो सकेंगे और बिना सङ्गठन के स्वराज्य असम्भव है।

बारदोली-सत्याग्रह ने हमारे सामाजिक चरित्र को उन्नत बनाने में एक बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। सरदार वल्लभभाई पटेल ने बारदोली तथा चोरासी तालुक़े के किसानों को सङ्गठित कर और उनके सङ्गठन को सफलता के लक्ष्य तक पहुँचा कर भारतीय राष्ट्र को वास्तव में स्वराज्य के पथ पर बहुत दूर तक अग्रसर कर दिया है। सरकार के हठ और दुराग्रह का प्रतिकार करने में जनता को जिस दृढ़-निश्चयिता, आत्म-संयम, आत्म-विश्वास, सहिष्णुता और सङ्गठन की शिक्षा मिली है, वह अमूल्य है। प्रजा की इस सविनय प्रार्थना में सरकार को कर न देने के आन्दोलन (Non-payment of taxes), बोल्शेविज़्म और ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र की बू आई थी। इस आन्दोलन का दमन करने के लिए सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। पठानों का दल रख कर स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया गया। प्रजा के माल और मवेशी नीलाम करने के हज़ारों प्रयत्न किए गए। पर अन्त में पशुबल को आत्मबल के सामने झुक जाना पड़ा। इस आन्दोलन में बारदोली की प्रजा अपनी सामाजिक कमज़ोरियों पर विजय प्राप्त कर सकी थी और इसी कारण उसके सामने सरकार को सिर झुका देना पड़ा। सरकार का यह सिर झुकाना वास्तव में बारदोली की प्रजा के सामने नहीं था, वरन् उसके ऐक्य, उसकी सङ्गठन-शक्ति और मर्यादा-पालन में उसकी दृढ़ता के सामने था। जिस समय सम्पूर्ण भारत में बारदोली के किसानों की भाँति मिल कर काम करने और नियम पालन करने की योग्यता आ जायगी उस समय स्वराज्य मिलते विलम्ब न लगेगा। यदि दुर्भाग्य से उसके पहले ही स्वराज्य मिल गया तो वह निश्चय ही हमारे नाश का कारण होगा। उस स्वराज्य का बँटवारा करने के लिए हम कुत्तों की भाँति आपस में ही लड़ मरेंगे।

बारदोली के जैसे छोटे-छोटे अवसरों से लाभ उठा कर हमें नियम पालन करते हुए एक साथ मिलकर काम करना सीख लेना चाहिए। ग़ुलाम भारतवासियों के लिए सङ्गठित होने, छोटे-छोटे पैमानों पर सत्याग्रह करने और सिद्धान्त के लिए कष्ट सहन कर जातीय चरित्र को उन्नत बनाने के एक से एक बढ़ कर अच्छे क्षेत्र मौजूद हैं। अन्धविश्वासों के मूलोच्छेद, अछूतोद्धार, छुआछूत का निराकरण और ग्राम-सङ्गठन आदि के द्वारा राष्ट्र की जड़ों को सींचा जा सकता है। पर स्वराज्य-प्राप्ति के इन सच्चे साधनों की ओर किसका ध्यान है? भारत के नेता तो मज़दूरों की पार्लामेण्ट का मुँह ताकने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझे बैठे हैं। भारत के नवयुवको! तुम उठो और इस अत्यावश्यक कार्य को अपने हाथ में लो। सामाजिक दुर्बलताओं के विरुद्ध सत्याग्रह का संग्राम छेड़ दो। अटल निष्ठा और दृढ़ विश्वास के साथ कार्य करो। जय अनिवार्य है।
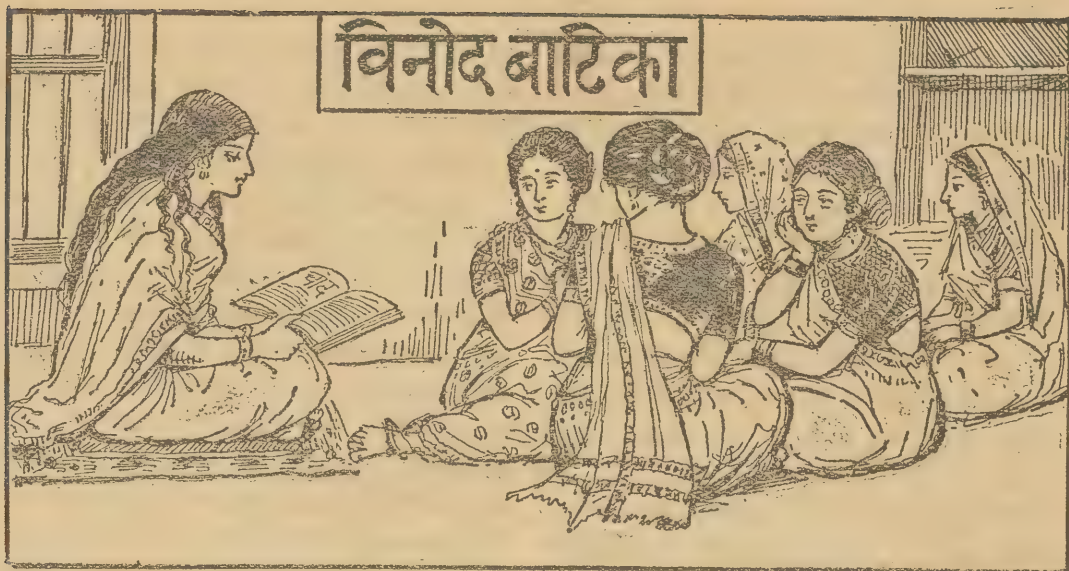
[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरी लाल

१४

इस अँडस-पिचक में मैं कुछ ऐसा घबड़ा गया कि मुझे ख़्याल ही न रहा कि मैं इस जगह औरत हूँ। इसलिए लपक कर मैंने सेठ जी की टाँगें पकड़ीं और उन्हें खींच कर चारपाई के बन्धन से अलग करने लगा। क्योंकि हमारे बाबा तो दरवाज़े के बाहर खड़े हुए मुँह बाए, आँखें फाड़े उल्लू की तरह दूर ही से ख़ाली तमाशा देख रहे थे। और मुझमें इतनी कठोरता न थी कि किसी को मुसीबत में फँसा देख कर चुप रहता। मगर ईश्वर जाने अलदायन का फन्दा ज़रूरत से ज़्यादा कस गया था या सेठ जी के पेंदे में सीसा भरा था या उनकी लोथ ही भैंसासुरी थी कि मैं हाँफ गया, मगर मेरे हुमासे वह ज़रा भी नहीं टसके। तब मैंने चिल्ला कर छैल से कहा—अबे वो छैल की दुम, सेठ जी के नीचे चुटकी काट चुटकी, ताकि यह अपने आप कुछ फुदकें तो।

सेठ जी घबड़ा कर बोले—अरे! नहीं-नहीं, ऐसा मत करना। मुझे बड़ी गुदगुदी लगती है। कसमसा कर मर ही जाऊँगा।

जब तक छैल भी काँख-कूँख कर चिल्लाया—अरे! जल्दी से चारपाई खड़ी करो, नहीं तो अब दम निकल जायगा।

बात मेरी समझ में आगई। इसलिए सेठ जी के लाख मना करने, गिड़गिड़ाने और दुहाई मचाने पर भी मैंने चारपाई किसी तरह खड़ी करके उनके पीछे कस के एक लात जमा दी। यह युक्ति काम कर गई। क्योंकि इस तरह उनका आसन कुछ खिसका—कुछ तो ठोकर की धमक से और कुछ उनके चौंकने से। जब तक पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति ने भी भरपूर मदद दे दी। फिर क्या था, हज़रत मुँह के बल लद् से ज़मीन पर टपक पड़े। हाँ, ज़रा ठुड्डी और घुटने फूट गए। मगर उन्हीं के बोझ से।

लेकिन कहाँ राम-राम और कहाँ टें-टें। क्योंकि कहाँ तो अभी सेठ जी मुँह के बल पड़े हुए अपने कर्मों को रो रहे थे और कहाँ वह अपने लाड़ले भतीजे को पहचानते ही एकाएक मेंढक की तरह उछल कर उस पर फट ही तो पड़े और लगे एक साँस में गाली और लेक्चर दोनों साथ ही झाड़ने। मानो वह ख़ुद तो बड़े धर्मात्मा थे। क्यों न हो, आदमी को कभी अपनी बुराइयाँ नहीं दिखाई पड़तीं। वह सब दूसरों ही को दूसना जानता है।

उनका ताव गर्म होते देख मुझसे नहीं रहा गया। मेरी बेबाकी पहले ही खुल चुकी थी। इसलिए मैं धड़ से बोल उठा—आप नाहक़ ही तो बिगड़ रहे हैं। आख़िर यह आप ही के तो भतीजे हैं। 'बापे-पूत परापत घोड़ा, कुछ नहीं तो थोड़म थोड़ा।'

सेठ जी मेरी बात अनसुनी किए उसी तरह गरजने लगे—हरामज़ादे, बदज़ात, सुअर का बच्चा। घर का रुपया तू इस तरह रण्डीबाज़ी में उड़ाता है? खाल खाल खींच लूँगा। बोल कम्बख़्त, जब घर में जोरू मौजूद है तब तुझे ऐसी जगह आने की क्या ज़रूरत थी।

मैंने सेठ जी को हिला कर पूछा—और आपकी क्या मर गई है?

छैल न जाने अब तक शर्म, डर या घबराहट के मारे हकबकाया सा था। मगर मेरी इस बात से उसके होश कुछ ठिकाने आए और उसने जवाब दिया—नहीं, वह तो मेरी बीबी से भी जवान है। अभी पार ही साल तो इन्होंने फिर शादी की है।

सेठ जी के मुँह से मारे ग़ुस्से के बोल नहीं फूटता था। बड़ी मुश्किलों से हाँफते-हाँफते टिकटिका कर इतना कहा—चल हरामज़ादे घर, तेरे बाप से कहता हूँ।

मैंने लपक कर छैल से कहा—अबे तू क्या खड़ा देखता है? तू जाकर इनकी बीबी से कह दे। आख़िर यह भी तो यहाँ बोहनी करने आए थे। तूने ख़ुद ही अपने कानों से सुना है।

एकाएक सेठ जी की गर्मी छूमन्तर होगई। सिट-पिटा कर बग़लें झाँकने लगे। इनकी यह रङ्गत ताड़ते ही छैल की जान में जान आई।

छैल—बस-बस, यही ठीक है। अभी जाकर कहता हूँ।

यह कह कर वह सचमुच कमरे से बाहर हो गया। हमारे बाबा के मानों काठ मार गया था। क्योंकि इस दफ़े उसे बाहर निकलते देख उसे रोकने के लिए उन्होंने न मुँह ही से कुछ कहा और न हाथ ही बढ़ाया। इधर सेठ जी की नानी मर गई। गरजना, बमकना, टर्राना सब भूल गए। ऐसा मालूम हुआ कि उन पर सैकड़ों जूते पड़ गए। लगे दुम हिला-हिला कर गिड़-गिड़ाने—हाय! हाय! कहीं ऐसा ग़ज़ब भी [illegible]ता। अरे! आजकल की औरतें योंही आफ़[illegible] हैं, उस पर यह सुन कर वह तो कच्चा ही मुझे चबा जायगी। ऐ भइया रामजियावन, सुनो तो। तुम्हारे बाप से कुछ भी न कहूँगा। ज़रा बात सुन लो। तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ। चलो तुम्हें मिठाई खिलाऊँ × × ×

सेठ जी इसी तरह उसे पुचकारते और अपनी पगड़ी और धोती सँभालते उसके पीछे तेज़ी से लपके। घबरा-हट में बेचारे एक पैर का जूता भी भूल गए। हमारे बाबा अब तक कठपुतली बने थे। मगर इन दोनों के बाहर निकलते ही न जाने उनमें कहाँ से इतनी फुर्ती आगई कि मैं खड़ा मुँह देखता ही रह गया और उन्होंने झड़ से दरवाज़ा बन्द करके बाहर से कुन्डी चढ़ा दी। धत् तेरी की! इस झगड़ में अगर मैं भी निकल गया होता तो मज़े में इस वक़्त इस नरक-कुण्ड से बाहर होता। बला से पोशाक ज़नानी थी तो क्या? इससे भी बढ़ कर भला किसी दूसरी मुसीबत में फँस सकता था? मगर क्या करूँ इस कम्बख़्त तक़दीर को। वक़्त ही पर दग़ा देती है।

१५

जिस तरह से कोई जङ्गली जानवर एकाएक अपने को कटहरे में बन्द पाकर छटपटाने लगता है या कोई प्यासा तालाब को निरा बालू का मैदान देखकर तड़प उठता है, उसी तरह उस वक़्त मेरे भागने की सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाने से मेरी हालत होगई। मैं घबड़ा कर कमरे में कभी इधर दौड़ता था और कभी उधर। कभी दरवाज़ा पकड़ कर खींचता था, कभी दीवाल से सर फोड़ता था। मगर इससे क्या होता? "औसर चूकि पछताने का" वाला मज़मून था। इसी बौखलाहट में ग़ुसलख़ाने की दरारों के पास भी पहुँचा। मगर नीचे अन्धकार-कूप था। कुछ दिखाई न पड़ा। हाँ, आदमियों की झाँय-झाँय अलबत्ता सुनाई पड़ी।

बड़ी देर तक कान लगाने पर पता मिला कि ऐंठू-मल हमारे बाबा को फटकार रहे हैं। मगर हमारे बाबा भी इस वक़्त ऐंठ कर ऐंठूमल हो रहे थे। बड़े ताव से कह रहे थे कि—सारा दोष तुम्हारा है! अगर तुम सेठ जी को यहीं रोक लेते तो काहे को इस वक़्त पछताना पड़ता?

इस पर ऐंठूमल किटकिटा कर बोले—जब कोई [illegible] पास आता तब तो रोकता। चिराग़ की बत्ती बिना

उसकाए तू तो चल दिया। वह तेल में डूब कर बुझ गई। फिर कोई आने वाला कैसे इधर रुख़ करता? वह ख़ामख़ाह ही एकदम ऊपर जाया चाहे। तुझे ख़ुद ऐसे वक्त हिकमत से काम लेना चाहिए था। अगर तुझमें कुछ भी अक़्ल होती तो यह दोनों शिकार इतनी सफ़ाई से निकल जाते? और हमारा किया-धरा तेरी बेवक़ूफ़ी से इस तरह चौपट होता? मगर × × ×

कहते-कहते न जाने क्यों ऐंठूमल रुक गए। और हमारे बाबा ने भी चुप्पी साध ली। मैंने समझा कि शायद बाबा वहाँ से हट गए। मगर हट कर जायँगे कहाँ? ऊपर ही आएँगे। और अकेले होंगे। क्योंकि ऐंठूमल उठ नहीं सकते। ऐसे वक्त अगर मैं अपने बाबा को द्वार खोलते ही दबोच दूँ, तो मज़े से निकल भाग सकता हूँ। इस वक्त उन्हें दबोचना भी आसान है। क्योंकि एक तो बेचारे बुड्ढे, उस पर काफ़ी चोट भी खाए हुए हैं। एक ही ठसके में अररर धड़ाम हो जायँगे। यही मनसूबा गाँठ कर मैं ज़ीने के दरवाज़े के पास गया और वहाँ दुबक कर खड़ा हो गया। मगर हाय! आध घण्टा हो गया और हज़रत ने आकर कुण्डी भी न हिलाई।

मैं उकता कर फिर ग़ुसलख़ाने की दरारों के पास पहुँचा। इस दफ़े नीचे के कमरे में चिराग़ की धुँधली रोशनी दिखाई दी। ऐंठूमल चारपाई पर पट्टियाँ बाँधे पहले ही की तरह पड़े थे। मगर मिज़ाज में उनके इस वक्त कुछ भी ऐंठ न थी। हमारे बाबा चटाई पर बैठे थे। बैजनाथ उनकी ठुड्डी पकड़-पकड़ कर मानों उन्हें मना रहा था। मगर वह बन्दर वाले मल्लू की तरह सर हिला रहे थे। इस मनाने में ऐंठूमल और एक नया दढ़ियल पगड़बाज़ भी बैजनाथ का साथ दे रहे थे। क्योंकि ये लोग बात-बात में बाबा की तरफ़ हाथ जोड़ते थे। मगर वह पिघलते हुए नज़र नहीं आते थे।

पहले बातचीत बहुत गुप-चुप हो रही थी, मगर धीरे-धीरे लोगों की आवाज़ कुछ मामूली हालत पर आई, तब उनके एकाध जुमले मेरे कान में पड़े।

हमारे बाबा एक दफ़े सर हिला कर ज़रा ज़ोर से बोले—नहीं साहब! मैं उसको अपनी नज़रों से दूर नहीं कर सकता। इसलिए मैंने उसकी अब तक शादी नहीं की। जब से उसकी माँ मरी है तब से उसे अपने कलेजे से लगा कर पाला-पोसा है।

इस पर बैजनाथ ने झुँझला कर जवाब दिया। झुँझलाहट में इसकी भी आवाज़ ऊँची हो गई—आख़िर उसे आप कब तक योंही बिठाले रहेंगे। औरतों का गुज़र बिना मर्द के कहीं चल सकता है? इसीलिए माँ-बाप का धर्म है कि लड़कियाँ जब जवान हों तो उन्हें तुरन्त ऐसी जगह ब्याह दें जहाँ बेचारी मौज से रहें। ख़ुशक़िस्मती से यह सरदार साहब आपको उसकी परवस्ती उठाने के लिए मिल गए। इनसे बढ़ कर उसे कौन सुख दे सकता है? यहीं तक नहीं, बल्कि यह बेचारे आपके सङ्कट को भी दूर करने के लिए तैयार हैं। डेढ़ सौ रुपए का जो आप पर क़र्ज़ा लदा है, वह यह अभी आपको देने को कहते हैं।

दढ़ियल महाशय चौंक कर बोल उठे—अब्बी नहीं। जब उसको साथ लेकर गड्डी में बिठूँगा तब।

ऐंठूमल ने वहीं से पड़े-पड़े हाँ में हाँ मिलाया—बात वही हुई सरदार साहब। हाँ, सरकार अब आप भी मान लीजिए। धन्य भाग जो यह आपको सरदार साहब मिले। बिटिया इनके साथ सुख से तो रहेगी। बस यही चाहिए। मगर भाई बैजनाथ, तुम इनका हाल उतना नहीं जानते जितना मैं। क्योंकि इनके साथ तभी से हूँ जब से इन्होंने पन्सारी की दूकान खोली और मुझे दूकानदारी करने के लिए नौकर रक्खा। इसलिए मुझे ख़ूब मालूम है कि ये बेचारे आजकल पाई-पाई के लिए मुहताज हैं। मेरे बीमार पड़ जाने से दूकान से इन दिनों कुछ प्राप्ति नहीं हो सकती। डेढ़ सौ रुपए अगर यह महाजन को दे देंगे तो यह खायँगे क्या? यह भी तो सोचो।

बैजनाथ ने सर हिला कर कहा—ठीक है। ठीक है। तो सरदार साहब दस-बीस रुपए के लिए पिछड़ने वाले नहीं हैं। क्योंकि गृहस्थी सँभालने के लिए एक औरत की इन्हें सचमुच ज़रूरत है।

दढ़ियल फिर चौंके—हाँ जी, मेरे को जोरू का तो बौत जरूरत है। मगर बाई अब दस रूपी से ज्यादे नहीं बढ़ा सकता। मेरे को पिञाब तक का दो टिकट बी तो खड़ीदणा है। यह देखो मेरे पास तो बस येही हैं।

यह कह कर उसने जेब में हाथ डाला। मगर बैजनाथ ने उन्हें रोक कर जवाब दिया—अरे साहब! इन्हें आपकी बातों का एतबार है। अच्छा, मैं इनकी

[शेष मैटर पृष्ठ ३७३ में देखिए]

[सम्पादक तथा स्वर-लिपि-कार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

बरसाती ३ ताल

[शब्दकार—श्री० हरीचन्द्र]

स्थायी—पिय बिन बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि-चमकि डेरपावत
मोहिं अकेली जानी ॥

अन्तरा—कोयल कूक सुनत जिय फाटत
यह बरषा दुख दानी ।
हरीचन्द्र पिय श्याम सुन्दर बिनु
बिरहिनि भई है दिवानी ॥

स्थायी

३				०				१				×			
नि	सं	ध	नि (क)	प	ध	म	प	म	ग	स	रे	म	ग	रे	—
पि	य	बि	न	ब	र	स	त	आ	आ	यो	ओ	पा	आ	नी	—
रे	ग	रे	—	रे	प	म	—	ग	रे	ग	—	रे	नि	स	रे
च	प	ला	—	च	म	कि	—	च	म	कि	—	डे	र (०)	पा	आ
नि (०)	स	—	—	स	—	स	स	रें	म	प	ध	नि (क)	ध	प	—
व	त	—	—	मो	—	हिं	अ	के	ए	ली	ई	जा	आ	नी	—

डॉक्टर प्रेमप्यारी बाई बर्मी, एल० एम० पी०

[आपका विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए]

अन्तरा

म	—	म	म	प	—	प	नि	नि	नि	सं	सं	नि	सं	रें	रें
को	—	य	ल	कू	—	क	सु	न	त	जि	य	फा	आ	ट	त
सं	रें	सं	नि	ध	प	ग	म	पध	निसं	निध	नि	प	—	—	—
य	ह	ब	र	षा	आ	दु	ख	दाआ	आआ	आआ	आ	नी	—	—	—
म	ग	रे	रे	—	रे	प	म	ग	रे	ग	रे	नि̥	नि̥	स	स
ह	री	ई	चं	—	द्र	पि	य	श्य	आ	म	सुं	द	र	बि	नु
—	—	रे	रे	म	म	म	म	—	म	प	नि	ध	प	—	—
—	—	वि	र	हि	नि	भ	ई	—	है	दि	वा	आ	नी	—	—

(३५७ पृष्ठ का शेषांश)

तरफ़ से सब बातें मञ्जूर किए लेता हूँ। यह अपनी भलाई-बुराई क्या समझें? इनकी तो अक़्ल बेटी की ममता में भरी हुई है। लाइए इनके हाथ पर शगून कीजिए, सम्बन्ध तो किसी तरह पक्का हो।

ऐंठूमल—हाँ सरकार, आप भी ईश्वर का नाम ले के जै गणेश कीजिए।

दढ़ियल ने ज़ेब से कुछ निकाल कर कहा—अच्छा बाई, तो अभी पाँच रूपी ले, बाक़ी पिच्छू देगा—जब अपना इतमिनाण कर लेगा तब।

बाबा ने बन्दर की तरह झपट कर उसके हाथ से रुपए लेकर टेंट में रक्खा। फिर रुँधे कण्ठ में बोले—मगर यह मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जायगी। नहीं, वह नहीं जा सकती। हाय! वह अपने बाबा के बिना कैसे रहेगी?

दढ़ियल—अजी इसका फ़िकर मत करो। बस, तुम राज़ी हो जाय, उसको तो राज़ी कर ही लेगा। हम मर्द-बच्चा है। वह कैसे नहीं जायगी। हम तो ले जायगा।

बाबा हिचकियाँ लेते हुए बोले—हाय! मेरा तो कलेजा फटा जाता है। कैसे उससे जाने के लिए कहूँ। हाय! मेरी आँखों की पुतली! मेरी लाड़ली बेटी!

ऐंठूमल ने दिलासा देते हुए कहा—सरकार! लड़कियाँ एक न एक दिन सभी को रुलाती हैं। मगर किया क्या जाय? आप अब उसके पास न जाइए, नहीं और मुहब्बत भड़केगी। हाँ सरदार साहब, उसको अपने साथ ले जाने के लिए राज़ी करने का आपका काम है। राज़ी हो जाय, ले जाइए। हम इनकी तरफ़ से हामी भरे लेते हैं। भैया बैजनाथ, अब सरदार साहब से इनकी रिश्तेदारी हो ही गई, अब इनको ऊपर ले जाओ, कुछ देर आराम करें। हाँ, दोनों अपना-अपना इतमीनान कर लें। सरदार साहब, इनकी बेटी बड़ी लाड़ली है। देखिए उसे किसी बात की तकलीफ़ न दीजिएगा। और हमारे सरकार के सङ्कट दूर करने का ख़्याल रखिएगा।

दढ़ियल—हाँ जी, ख़ूब ख़्याल है। हम बेमाण नहीं हैं।

मेरे सर पर मानों आसमान फट पड़ा। इतनी देर के बाद मेरी समझ में आया कि यह सारी पाखण्ड-लीला मेरे ही लिए है।

(क्रमशः)

[ले० श्री० राधाकृष्ण जी गुप्त, बी० एस्-सी०]

रोग फैलाने वाले जीव

बहुत सी बीमारियाँ, जो मनुष्यों में पाई जाती हैं, जीवों द्वारा फैलती हैं। वर्तमान समय के वैज्ञानिकों ने बहुत से रोगों के फैलने के कारणों पर भले प्रकार खोज किया है और उन जीवों का पता लगा लिया है जो रोगों को फैलाते हैं।

बहुत से एकसेलयुक्त जीव * और बैक्टीरिया (Bacteria) अन्य बड़े जीवों के शरीर में रह कर अपना खाद्य पदार्थ उनके शरीर से प्राप्त करते हैं। ऐसे जीवों को पैराज़ाइट (Parasite) कहते हैं। जिस प्रकार से अम्बर बेल वृक्षों में पैराज़ाइट होती है। यह पैराज़ाइट जब मनुष्य अथवा अन्य पशुओं के शरीर में पहुँच कर अपना खाद्य पदार्थ उनके शरीर से चूसने लगते हैं तब यह उनके रोग की अवस्था कहलाती है।

इस प्रकार की बहुत सी बीमारियाँ तो अब अच्छी की जा सकती हैं, किन्तु बहुत सी ऐसी हैं जो बहुत ही ख़तरनाक होती हैं और दूर नहीं की जा सकतीं। यदि मनुष्य अपने शरीर को उन रोगों से बचाना चाहता है तो उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि रोगों के कीटाणु एक स्थान से दूसरे स्थान में किस प्रकार फैलते हैं। इन पैराज़ाइट में से कुछ तो पशुओं के बाहरी शरीर में और कुछ शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं। उन कीटाणुओं की, जो शरीर के भीतर प्रवेश कर जाते हैं, पैदाइश और विकास का वृत्तान्त बड़ा विचित्र है। उनके जीवन का कुछ भाग मनुष्य-शरीर में बीतता है और कुछ अन्य पशुओं में। केवल यह एकसेलयुक्त पैराज़ाइट ही नहीं, वरन् कुछ बहुसेलयुक्त जीव भी ऐसे होते हैं, जो कुछ काल तक पालतू पशुओं के शरीर में रहते हैं और कुछ काल तक मनुष्य-शरीर में।

जब यह पैराज़ाइट मनुष्य-शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तब उसको हानि पहुँचाते हैं और उसको रोग का अनुभव होता है।

रोग के कीटाणुओं को फैलाने वाले कुछ जीव ये हैं :—

मक्खी—इसको सभी मनुष्य जानते हैं। यह वही मक्खी है जिनकी हमारे चारों ओर घर में प्रति समय बड़ी संख्या उड़ती रहती है। यह इतनी साधारण है और मनुष्यों से इसका इतना नज़दीक सम्बन्ध है कि इसके हानिकारक होने का सन्देह भी नहीं करते। किन्तु वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि यह मनुष्य के लिए बड़ी ही हानिकारक और दुखदायी होती है। यह मक्खी, जिसकी ओर से हम सचेत नहीं रहते, बहुत सी प्राणघातक बीमारियों के फैलाने का कारण है। यह होते हुए भी भारतवर्ष में बहुत कम लोगों को इस बात का ज्ञान है। यही मक्खी मनुष्यों की बड़ी ही शत्रु प्रमाणित हुई है। बहुत से मनुष्य इसी के द्वारा फैलाए हुए रोगों के कारण काल के ग्रास हो जाते हैं।

* समस्त जीव-जगत की रचना कोष्ठों (Cells) द्वारा ऐसी हुई है जिस प्रकार ईंटों से मकान बनता है। बहुत से जीव ऐसे होते हैं जो एक ही कोष्ठ के होते हैं। ऐसे जीव बहुत ही सूक्ष्म और बिना अणुवीक्षणयन्त्र (Microscope) के नहीं देखे जा सकते।

किन्तु भारतवर्ष के अधिकांश मनुष्य और स्त्रियाँ, जिनमें छुआछूत इस प्रकार समा गई है कि सारे धर्म की दीवाल ही इस चौके-चूल्हे और छुआछूत के ऊपर खड़ी है और ज़रा सा हिलने मात्र से वह धर्म की दीवार अररर धम्म हो जाती है, इस भयानक गन्दगी को दूर करने का ध्यान तक नहीं देते। यही मक्खियाँ जब सड़ी वस्तुएँ, परनाले और पाख़ाने में बैठ कर अपनी टाँगों को उनके कणों से लादे हुए, जिसमें रोगों के असंख्य कीटाणु होते हैं, आकर कपड़ों और खाद्य पदार्थ पर बैठ जाती हैं और मैले के कणों के बोझ को उसमें रख देती हैं तब उनको उसकी कोई परवा नहीं होती और उसको बड़े शौक़ से खाकर अपनी पवित्रता और स्वच्छता का गौरव करते हैं और जब उसी खाद्य पदार्थ को कोई अन्य मनुष्य नाम का जीवधारी स्वच्छ हाथों से छू लेता है तब वह अपवित्र होकर खाने के अयोग्य हो जाता है! बलिहारी है ऐसी बुद्धि की। अस्तु—

इस मक्खी को टाइफ़ाइड मक्खी भी कहा जाता है, क्योंकि यह उन कीटाणुओं को फैलाती है जिनसे टाइफ़ाइड फ़ीवर (मियादी बुख़ार) फैलता है। जब यह मक्खी अपना खाना ढूँढ़ने के लिए और अण्डा रखने के लिए इधर-उधर जाती है, तब उसका सड़ी वस्तु और कूड़ा से संसर्ग होता है। यहाँ पर उसके शरीर में विशेषतया पैरों में इस बुख़ार के कीटाणु लग जाते हैं। जब वह घर में जाती है और मनुष्यों के खाद्य पदार्थ या बर्तनों पर बैठती है तब इन्हीं कीटाणुओं को उसमें लगा देती है। जब मनुष्य इनको खाता है तब यह उसके शरीर में चले जाते हैं।

यदि हम मक्खी को एक अणुवीक्षण यन्त्र के द्वारा देखें तो यह पता लगेगा कि उसका शरीर कीटाणुओं को ले जाने के लिए बड़ा ही उपयुक्त है। उसके पैर और टाँगों में बाल होते हैं और उसका सर और प्रोबा-सिस (सूँड़ के समान एक अङ्ग) भी खुरदरे होते हैं इसके दो आँखें होती हैं, जिनको कम्पाउण्ड आँखें कहते हैं। इसी के कारण यह हर तरफ़ देख सकती है और अपने शत्रुओं से आसानी से बच जाती है।

मक्खी को भली प्रकार से नष्ट करने के लिए उसकी उत्पत्ति-क्रिया जानना आवश्यक है। वह अपने अण्डे गन्दे स्थानों में सड़ती हुई चीज़ों व गोबर इत्यादि गन्दी वस्तुओं में इकट्ठा करती है। एक-दो दिन के पश्चात् बच्चे अण्डे से बाहर निकलते हैं और इनको लारवा (Larva) कहते हैं। यह लारवा जिस चीज़ में पैदा होता है उसी को खाता है। इसके पैर नहीं होते, किन्तु शरीर को तोड़-मरोड़ कर चल सकता है। यह सफ़ेद रङ्ग का होता है और पाँच-सात दिन में बढ़ कर आध इन्च का हो जाता है। इसके पश्चात् इसके शरीर को एक भूरे रङ्ग की वस्तु ढक लेती है। इस अवस्था को प्यूपा (Pupa) कहते हैं। इस अवस्था में यह कुछ नहीं खाता है, किन्तु इस समय छः पैर, पङ्ख, सर और आँखें बनने लगती हैं और पाँच-सात दिन के बाद पूरी मक्खी बन जाती है। फिर यही मक्खियाँ दो-तीन दिन बाद अण्डे देती हैं। इसी क्रम से गरमी के मौसम में एक मक्खी की दस पीढ़ी तक पैदायश हो जाती है। टाइफ़ा-इड बुख़ार (Typhoid fever), बच्चों की गरमी की पेचिश, राजयक्ष्मा (Tuberculosis), हैज़ा, आँखों में सूजन (Op-ltialmia), चेचक, कोढ़ (Leprosy), पेचिश, आतशक और ओरियण्टल सोर (Oriental sore) आदि बीमारियाँ मक्खियों ही से फैलती हैं।

मक्खी को नष्ट करने या उनकी बाढ़ रोकने के लिए यह उपाय है कि उन चीज़ों को, जिनमें यह अण्डे रखती है या तो ढक कर रक्खा जाय या हटा दिया जाय। और भी कई प्रकार के ज़हर मिल सकते हैं, जिनसे मक्खी दूर की जा सकती हैं। घर को स्वच्छ रखने से मक्खी कम रहती हैं। खाने के पात्र, खाद्य पदार्थ और कपड़ों को मक्खियों से बचाना अत्यन्त आवश्यक है।

मच्छड़—यह जूड़ी-बुख़ार (Malaria) को फैलाने वाले जीव हैं। पानी के गड्ढों में यह अण्डे देता है, जो क़रीब १२ घण्टे में एक कीड़े की शक्ल में बदल जाता है। फिर क़रीब एक सप्ताह में यह कीड़ा अपने चारों तरफ़ एक प्रकार का खोल चढ़ा लेता है और सोता रहता है। तीन दिन के पश्चात् यह खोल फट जाता है और उसमें से मच्छड़ निकल आता है। बाहर आने पर यह मच्छड़ आदमियों को और अन्य पशुओं को काट कर उनके ख़ून को चूसता फिरता है और यही उसका खाद्य पदार्थ है। इस प्रकार काटते रहने से मच्छड़ एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में बीमारी फैलाता है।

मच्छड़ दो प्रकार के होते हैं। एक को क्यूलेक्स (Culex) और दूसरे को एनाफलीज़ (Anopheles) कहते हैं। क्यूलेक्स से कोई बीमारी नहीं फैलती, किन्तु जब एनाफलीज़ मच्छड़ किसी ऐसे मनुष्य को काटता है, जो मलेरिया से पीड़ित है, तब उस ख़ून के साथ मच्छड़ के पेट में रोग के कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं और वहाँ से वह उसके ख़ून और थूक में चले जाते हैं। जब यही मच्छड़ किसी अन्य नीरोग पुरुष को काटता है तो इनमें से कुछ कीटाणु उसके शरीर में चले जाते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उस नीरोग मनुष्य को भी मलेरिया हो जाता है।

पीला बुख़ार (Yellow fever) का मच्छड़ भी, जिसको स्टेगोमाइया (Stegomyia) कहते हैं, इसी प्रकार पीला बुख़ार फैलाता है।

यदि हम इस तरह रहें कि हमें ये मच्छड़ न काटने पावें तो मलेरिया नहीं हो सकता। मसहरी लगाकर सोना अच्छा है, क्योंकि इससे मच्छड़ नहीं काट सकते। यदि मसहरी न हो तो कड़वा तेल लगाकर सोना चाहिए; क्योंकि इस तेल की वजह से भी मच्छड़ नहीं काटते। पर मलेरिया से बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम इन मच्छड़ों को पैदा ही न होने दें। हम यह बता चुके हैं कि मच्छड़ पानी के गड्ढों में अण्डे देते हैं। यदि हमारे आस-पास कहीं खुला पानी न हो तो ये अण्डे नहीं दे सकते। इसलिए बस्ती के निकट इन गड्ढों को न रहने देना चाहिए। यदि यह करना सम्भव न हो तो उसकी सतह पर मिट्टी का तेल छोड़ देना चाहिए। इस तेल के कारण अण्डों से जो कीड़े निकलेंगे वे साँस न ले सकेंगे और इसलिए मर जायँगे और जो मच्छड़ अण्डे देने आवेंगे वह भी फँस कर मर जायँगे। बड़े तालाब में मछलियाँ पाल लेना चाहिए, क्योंकि वे मच्छड़ के अण्डों-बच्चों को खा जाती हैं। घर में एक चुल्लू पानी भी न खुला रहने देना चाहिए, क्योंकि उसमें वे अण्डे दे सकते हैं। यदि किसी को मलेरिया हो ही जाय तो उसको कुनीन खाना चाहिए, क्योंकि यह मलेरिया के बीजों को, जो रक्त में होते हैं नष्ट, कर देती है। मलेरिया के दिनों में सप्ताह में तीन बार पाँच-पाँच ग्रेन कुनीन यदि युवा पुरुष खाय तो उसके रक्त में इस रोग के बीजों का प्रवेश न होगा। दस वर्ष के बच्चों को इससे आधी के लगभग मात्रा में देना चाहिए।

चूहे और पिस्सू—चूहा असल में चीन में पहले पाया जाता था, किन्तु बाद में वह तमाम एशिया और यूरोप आदि महाद्वीपों में फैल गया। सन् १९०७ में यह निश्चय रूप से पता लगा कि चूहा एक बड़ी भयानक और संहारक बीमारी फैलाता है। गत शताब्दियों में इस बीमारी ने यूरोप के तमाम नगरों को वीरान कर दिया। उस समय इसका कारण नहीं ज्ञात था। बहुत से अन्धविश्वासी मनुष्यों का यह विचार था कि यह एक प्रकार का कष्ट है, जो ईश्वर मनुष्यों के पापों के दण्ड-स्वरूप देता है। इस रोग को ब्यूबॉनिक प्लेग (Bubonic plague) कहते हैं और इससे बीमार हुए मनुष्य ९५ फ़ीसदी मर जाते हैं। सन् १९०७ ई० को सेनफ़्रान्सिसको (अमेरिका) में एक लाख ५० हज़ार चूहों को काट कर परीक्षा करने से यह सिद्ध हुआ कि पिस्सू जब चूहे को काटते हैं तो चूहे के शरीर से उसके शरीर में रोग के कीटाणु चले जाते हैं और जब यही पिस्सू मनुष्य को काटता है तो उसमें चले जाते हैं। सेनफ़्रान्सिसको शहर को इस प्लेग से और चूहों से छुटकारा दिलवाने के लिए लाखों रुपए ख़र्च किए गए। दस लाख ज़हर के टुकड़े बिछाए गए और यह अनुमान किया जाता है कि दो लाख से अधिक चूहे मारे गए और सेनफ़्रान्सिसको की खाड़ी (San Francisco Bay) में बहा दिए गए। इस भयानक बीमारी ने सन् १९१४ में हवाना (Havana) में तमाम शहर को मनुष्यों से शून्य कर दिया। यह तो हुआ यूरोपीय देशों का वृत्तान्त! भारतवर्ष में भी इस बीमारी ने कम संहार नहीं किया। यहाँ के भी कुछ अन्धविश्वासी लोगों का पहले ख़याल था कि प्लेग के पैदा करने वाले यही फिरङ्गी (अङ्गरेज़) हैं।

यदि मनुष्य-जाति इस बीमारी के भीषण प्रकोप से सुरक्षित रहना चाहती है तो उसको चूहे से घोर संग्राम करके उसको इस संसार से पूर्णतया नष्ट करना होगा।

सुअर—यह भी दो प्रकार के कीटाणु फैलाता है जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं। टेपवर्म (Tape worm) और ट्रैकीना (Trichina)। सुअर टेपवर्म के अण्डे खाता है। इन अण्डों से उसके पेट के अन्दर कीड़े निकलते हैं और यह कीड़े उसके पेट से निकल कर मांस

में चले जाते हैं। यह कीड़े सूक्ष्म होते हैं। जब मनुष्य इस सुअर का मांस खाता है, जो ठीक से पका नहीं होता, तब वह उसके अन्दर चला जाता है और उसके पाचक अङ्ग की (Digestive organs) दीवार में चिपक रहता है। वहाँ पर वह बढ़ता रहता है और कभी-कभी चालीस फ़ीट लम्बा हो जाता है। टेपवर्म गाय और भेड़ के मांस के साथ भी पहुँच जाता है।

हुकवर्म—(Hook worm) प्रथमावस्था में यह अति ही सूक्ष्म होता है और जूता न होने पर मनुष्य के पैर द्वारा प्रवेश करता है। इसी कारण यह उन मनुष्यों में अधिक पाया जाता है जो गरमी के मौसम में नङ्गे पैर चलते हैं। रक्त-नालियों के द्वारा पैर से यह हृदय में और हृदय से फेफड़े में पहुँच जाता है। फेफड़े में पहुँचने के बाद यह वायु-नाली में आ जाता है और फिर गले के भीतर प्रवेश करता है। इसका मुँह हुक यानी कटिया की तरह होता है, जिसके सहारे यह आँतों की भीतरी दीवार में चिपका रहता है। वहीं चिपके-चिपके यह रक्त चूसता रहता है और मनुष्य को कमज़ोर कर देता है।

यदि कोई मनुष्य दुबला हो गया हो, शरीर पीला पड़ गया हो, आँखों से उदासी टपकती हो, पेट निकल आया हो, तो समझना चाहिए कि उसके शरीर में यह कीड़ा पहुँच गया है। जब इन कीड़ों की संख्या बढ़ जाती है तब मनुष्य बहुत कमज़ोर हो जाता है और रक्त इतना कम हो जाता है कि बचना कठिन होता है।

इस शत्रु से बचने का उपाय यह है कि हमारे पेट से जो मल बाहर निकलता है उसीमें इसके अण्डे होते हैं। काफ़ी वायु न मिलने से यह मर जाते हैं। इसलिए यदि घर के पाख़ाने अच्छी तरह से बन्द रहें तो ये अण्डे आप से आप मर जायँगे।

'उस पार'....!

[रचयिता—श्री० सूर्यनाथ जी तकरू]

"उठतीं लहरें प्रबल, चलो, नाविक,
हम अब उस पार चलें!
कोलाहल से पूर्ण जगत को छोड़—
वहाँ 'उस पार' चलें!!"
"नाश हँस रहा है इस पथ पर,
खेल रहे यम के अनुचर!
तूफ़ानों के सबल हाथ भी,
ले जाते हैं हमें उधर!!
इस झञ्झा में भीषण बल है,
कौन लगा सकता है पार?"
"नाविक प्यारे! बात मान ले,
मुझको पहुँचा दे उस पार!"

"अरी अधीर! कहाँ? उस बन में?
उसमें तो दावा जलती!
चिनगारी उड़ती हैं देखो—
अग्नि-शिखा नभ में बलती!!"
"तू क्या जाने अभी राख का—
मूल्य ध्येय है जल जाना!
स्नेह ज़रा सा पड़ने पर,
दीपक की भाँति सुलग जाना!!
आँधी, पानी, आग, नाश के—
आगे है वह मतवाला!
खे ले चल उस पार नाचता—
वहाँ प्रबल बंसी वाला!!"

खण्डौरियाँ

खोए में गरी, किशमिश, बादाम, ख़रबूज़े की गिरी और खाँड मिला ली जाय। फिर आटे के दो पेड़े बेल लिए जायँ। एक रोटी पर इन चीज़ों की तह लगा कर दूसरी रोटी ऊपर रख कर समोसे की तरह किनारे बना कर फिर घी में तल ली जाय। यह पूरी की तरह फूल जायगी। जब लाल हो जाय तब निकाल कर खाय, यह बड़ी स्वादिष्ट चीज़ होती है।

* * *

श्रीखण्ड

यह पदार्थ महाराष्ट्र लोग नित्य खाते हैं। खाने में तो स्वादिष्ट होता ही है, पर लाभकारी भी बहुत है। दही को कपड़े में बाँध कर लटका दिया जाय। जब पानी अच्छी तरह नितर जाय और दही पनीर की तरह सख़्त हो जाय तब सेर भर दही में दो रत्ती केसर, तीन रत्ती जावित्री और तीन रत्ती जायफल पीस कर मिला लिया जाय। फिर चम्मच से खाँड डाल कर रगड़ी जाय। मीठा अन्दाज़ से डालना चाहिए। इन सब चीज़ों को ख़ूब रगड़ना चाहिए। जब दही और यह चीज़ें इकसार हो जायँ तब इलायची, बादाम की गिरी और पिस्ता छिड़क कर खाय। बहुत ही स्वादिष्ट होगा।

—*गोपालदेवी 'हिन्दी-प्रभाकर'*

* * *

पेठे का मुरब्बा

ख़ूब पका पेठा लेकर छीले, फिर कड़ा गूदा अलग और नर्म अलग कर ले। नर्म गूदे को निचोड़ कर पानी निकाल कर गूदा फेंक दे। फिर कड़े हिस्से को काँटों से गोद कर उसी पानी में उबाल ले, किन्तु बिलकुल न गलने पाए। फिर दो सेर चीनी की इकतारा चाशनी तैयार कर उसमें पेठे के टुकड़े डाल कर पकाए, फिर किसी अमृतबान में चाशनी सहित रक्खे।

* * *

आँवले का हलुवा

पाव भर कच्चा आँवला पीस कर दूध में मिला दे और दूध छान ले, फिर उस दूध को धीमी-धीमी आँच पर औटाते-औटाते खोवा बना डाले, फिर चीनी की चाशनी बनावे और सोंठ २ तोला, दोनों ज़ीरा एक-एक छटाँक, धनिया २ तोला, बंसलोचन ४ तोला, दारचीनी २ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, गुजराती इलायची ४ तोला—सबको पीस कर खोवा सहित चाशनी में मिला कर गाढ़ा कर थाली में जमा कर चाँदी का वर्क़ चिपका दे, फिर सूख जाने पर चाक़ू से बड़ी-बड़ी बरफ़ी जैसा काट ले। या चाहे तो बरफ़ी न बना कर हलुवा की भाँति गीला रक्खे। यह मस्तक एवं नेत्रों को उपकारी है।

* * *

आँवले का मुरब्बा

फागुन-चैत के पके आँवले लेवे, किन्तु चुटीले न हों। उन्हें तीन-चार दिन तक पानी में डुबा रक्खे। फिर काँटों से गोदकर चूने के पानी में तीन दिन तक डुबो रक्खे। फिर साफ़ पानी से धोकर पानी में आँवलों को उबाल ले। फिर सेर पीछे ढाई सेर चीनी की इकतारा चाशनी में डाल कर ख़ूब पकावे। जब आँवला गल जाय तब रस-सहित अमृतबान में भर दे। यह गर्मी के दिनों में ठण्ढा और नेत्रों को हितकारी है।

* * *

पेठे का हलुवा

पेठे को बिलइया में कस कर उबाल डाले। फिर घी में भून कर आँवले के हलुवे की भाँति बना ले। यह उसी के समान गुणकारी होता है।

—*कुमारी बिजली बाला बसु*

* * *

केले के फूल की तरकारी

केले का फूल लेकर उसके पत्ते छुड़ाकर अन्दर से फलियाँ निकाल ले। इन फलियों के अन्दर एक पतला सफ़ेद पत्ता होता है और उसके साथ ही एक लम्बा ज़ीरा। इन्हें निकाल दे, और जब इसी विधि से तमाम फलियाँ ठीक हो जायँ तब उन्हें बारीक-बारीक कतर कर उबाल ले। जब अच्छी तरह उबल जायँ, तब ख़ूब दबा कर उनका पानी निकाल दे। फिर आलू काट कर घी अथवा तेल में तल ले। जब वह पक जायँ, तब चमचे से आलू हटा कर, हींग-ज़ीरे का छोंक लगा दे, और फूल डाल कर अन्दाज़ से नमक, मिर्च, धनिया डाल कर भूने। जब भुन जाय तब गरम मसाला डाल कर, चला कर उतार ले। केले के फूल की यह तरकारी अत्यन्त स्वादिष्ट बनती है।

* * *

कटहल की तरकारी

कच्चे कटहल को छील कर टुकड़े कर ले। अगर उसके अन्दर बीज हों तो भी काट और छील कर डाल दे। पीछे उसे उबाले और जब ख़ूब अच्छी तरह उबल जाय, तब उतार ले। एक पतीली में आलू काट कर हींग-ज़ीरे से छोंक दे। नमक, मिर्च, हल्दी, धनिया अन्दाज़ से डाल कर आलू की रसदार तरकारी के अन्दाज़ से पानी डाल दे। अब उस उबले हुए कटहल का पानी ख़ूब अच्छी तरह दबा कर निकाल दे और उसे ख़ूब मसले। मसल कर आटे के समान कर ले। फिर उसमें नमक, मिर्च, धनिया कटहल के अन्दाज़ से डाले, और थोड़ा सा बेसन डाल कर गोली बना ले, और उन्हें घी या तेल में भूने। जब अच्छी तरह भुन जायँ तब आलू की तरकारी में डाल दे। जब गोलियाँ तरकारी में ख़ूब फूल जायँ तब ख़ूब चला कर गरम मसाला और खटाई डाल कर उतार ले। यह तरकारी हलुए के समान गाढ़ी होनी चाहिए। चलाते समय इसकी गोलियाँ भी फोड़ देनी चाहिए। इस तरकारी में यदि पकी इमली की खटाई दी जाय तो अति उत्तम बनती है।

कटहल जितना कच्चा हो उतना ही अच्छा होता है। इसकी तरकारी बनाने की इससे अच्छी विधि और कोई नहीं है।

—*विद्यावती*

* * *

आलू के गरमागरम पापड़

बड़े-बड़े पहाड़ी आलू लेकर उनके ऊपर का छिलका छील डाले। एक तेज़ चाक़ू से बिलकुल महीन गोल-गोल टुकड़े काट कर उनको सिरके में भिगो दे। इसके पश्चात् अन्दाज़ से सैंधा नमक, कालीमिर्च और पट्टा लेकर उनकी बुकनी बना डाले। अब आलू के टुकड़ों को निकाल कर इस बुकनी को उनके ऊपर छिड़क दे और घी में तल ले। यह अत्यन्त स्वादिष्ट होते हैं। यह चीज़ गरम ही खाने में अच्छी होती है।

—*सुशीला*
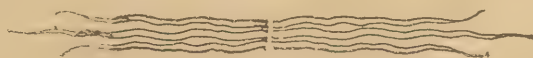
दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

[लेखक—'पागल']

तृतीय खण्ड

४

इस बात का इतमीनान हो जाने पर भी कि तारा ने मेरी मूर्खता न जानी होगी, मुझे उसके सामने जाने में सङ्कोच मालूम होता था। उस पर यह ख़्याल कि मेरे घर में कोई स्त्री भी नहीं है, न जाने क्यों अब एकाएक पैदा होकर मुझे परेशान करने लगा। तारा को अपने यहाँ लाते वक़्त मुझे यह बात क्यों नहीं सूझी और अब यह विचार कैसे सहसा उत्पन्न हो गया, कुछ समझ में नहीं आया। मैंने उसके लिए बोर्डिङ्ग में ही ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि वह छुट्टियों में भी अपने घर पर जाने के बदले वहीं रहा करे, फिर भी अक्सर वह दो-चार घण्टों के लिए यहाँ आ जाती थी। मगर इस बात को तब मैंने कभी सोचा ही न था। ख़ैर, जभी दिल में अड़चन पड़ जाय तभी उसे सुलझाना चाहिए। लेकिन अपने घर में स्त्री लाता तो कहाँ से लाता ? उसकी माँ को यहाँ आकर रहने के लिए कहना बेकार था। क्योंकि अव्वल तो वह ख़ुद यहाँ रहना पसन्द नहीं कर सकती थी दूसरे इस बात को पहले ही मैं कई दफ़े ताड़ चुका था कि वह इसकी बीमारी की हालत में हमेशा इससे दूर ही रहना चाहती है। इसी उलझन में पड़ा मैं बाहर बरामदे में आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ हुक़ा पी रहा था कि इतने में देखा कि अलिन्द मेरे सामने खड़ा है।

अलिन्द को इस वक़्त पाकर मुझे ऐसी ख़ुशी हुई मानों जिस चीज़ को मैं ढूँढ़ रहा था वही पा गया; क्योंकि उसके यहाँ बूढ़ी स्त्रियाँ थीं। फ़ौरन ख़्याल दौड़ा कि अगर वह मेरे घर सपरिवार आकर रहे तो सब काम बन जायगा। स्त्रियों का अभाव भी पूरा होगा और हर वक़्त तारा से इसे मिलने-जुलने और उसकी तीमारदारी करने का भी अवसर मिलेगा। इस मेल-जोल में इन दोनों के लिए अवश्य ही अच्छा गुल खिलेगा। यही सोच कर उससे इस प्रस्ताव के कहने का ढङ्ग सोच रहा था कि इतने में उसने मेरे हाथ में गोल रूल की तरह दफ़्ती का एक पारसल देकर कहा—भई, इसे आप तारा के पास भिजवा दीजिएगा।

मैं—क्यों ? क्या है ?

वह—वही चित्र, जो उसने खिंचवाया था।

मैं—आख़िर इसकी जल्दी क्या थी ?

वह—जल्दी ? हूँ !...क्या ?

मैं—अरे कुछ घबड़ाए हुए हो क्या ?

वह—नहीं तो। हाँ। कुछ नहीं। अरे! क्या कह रहा था ? ठीक है। इसे ज़रूर भिजवा दीजिएगा।

उसकी उखड़ी-उखड़ी बातों से मुझे शक पैदा हुआ, मैंने उसे ग़ौर से देखा। उसके चेहरे पर एक अजीब परेशानी और पागलपन के लक्षण प्रतीत हुए। उसी वक़्त एकाएक मेरी नज़र उसकी हथेलियों पर पड़ी। उसकी खाल की ऊपरी सतह फफोले के चमड़ों की तरह उभरी हुई देखकर मैं घबड़ा उठा। झट उसका मुँह खुलवा कर उसकी ज़बान देखी। उसे बिलकुल सूखी हुई जिसमें नर्मी का नाम-निशान तक न था, पाकर मुझे और हैरानी हुई। क्योंकि ऐसे चिन्ह मैंने बहुधा उन रोगियों में देखे थे जो अपनी मानसिक वेदना से व्याकुल होकर पागल हो गए थे। मैं समझ गया कि ज़रूर इसके दिल पर कोई और भी भारी सदमा पहुँचा है, जिससे इसकी हालत ऐसी हो रही है। इसका दिमाग़ किसी तरह पर भी ठिकाने पर नहीं होना चाहिए। यह या तो इस वक़्त पागल हो रहा है या पागल होने के क़रीब ही है।

उसने बौखला कर पूछा—क्यों ? क्यों ? क्या देखा ?

मैंने बातें बनाते हुए कहना चाहा—देख रहा था कि तुम होश में हो या × × ×

वह—नशे में? तभी आप जाँच कर रहे थे कि मैं शराब पीकर तो नहीं आया हूँ। ऐसे वक्त मुझे शराब की सूझेगी? अरे! डॉक्टर तुम भी......उफ़! दुनिया ऐसी बेगानी हो गई, अपना कहने के लिए हाय! कोई भी नहीं।

मैं—यह तुम वाही-तवाही क्या बकने लगे? मैंने तो समझा था कि तुम होश में हो?

वह—होश! सच पूछो तो डॉक्टर आज से बढ़ कर कभी होश मुझे हुआ ही न था। ज़िन्दगी भर बेहोश था, सिर्फ़ आज होश में आया हूँ। उस पर तुम कहते हो कि मैं होश में नहीं हूँ।

अब मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि इस पर कोई बेढब चोट ज़रूर पहुँची है जिससे यह तिलमिला उठा है। इसका दिमाग़ लाख क़ाबू में रखने पर भी बहक रहा है। अगर जल्दी ही इसके दिल से यह काँटा निकाला न जायगा तो इसकी भी नौबत वही होगी जो अन्य रोगियों की ऐसी दशा में हो चुकी है। यही बड़ी ग़नीमत हुई कि दिमाग़ पूरी तरह से बिगड़ने के पहले यह मेरे पास पहुँच गया। मगर बिना असलियत जाने इसे किस तरह राह पर लाने का उद्योग करता?

मैं—माफ़ करना भाई, मुझे ज़रा धोखा हो गया था। ख़ैर! बड़ी बात कि तुम किसी तरह होश में तो आए।

वह—हाँ आया। मगर उफ़! कब? जब सब खो चुका, सारी ज़िन्दगी ग़ारत कर दी तब। मैं तो पहले ही मर चुका था, मगर डॉक्टर, तुमने मेरी आशाओं को सींच कर नाहक़ ही इतने दिनों और तड़पाया।

मैं—क्या हुआ क्या?

वह—जो होना था, सब हो चुका। अब क्या होने को बाक़ी है? हाय! जीवन अब व्यर्थ है। एक पल भी दुनिया में अब मुझसे नहीं रहा जा सकता।

मैं—न रहोगे तो काम कैसे चलेगा? जिनके पेट पालने का बोझ तुम्हारे सर पर है, उनसे किस तरह छुट्टी मिल सकती है?

वह—ईश्वर की कृपा से आज उसका भी इन्तज़ाम हो गया, तभी तो कहता हूँ कि ज़िन्दगी में आज पहले-पहल होश आया है!

मैं अचरज में उसका मुँह निहारने लगा—अरे! कहो तो किस तरह?

वह—ईश्वर ने मेरे उद्धार के लिए संयोग से एक ऐसा व्यापारी भेज दिया जो मेरी तस्वीरों को छपा कर तिजारत करेगा। इस तरह इसके मुनाफ़े से उसका रोज़गार और मेरे घर वालों का गुज़र-बसर हो जाने का उसने इतमीनान दिला दिया है।

मैं—और तुमने उसे मञ्ज़ूर कर लिया?

वह—जब मेरे किए-धरे कुछ नहीं हो सकता—जब मेरा अब कोई ठिकाना नहीं है, तो अपने घर वालों के निबाह के लिए क्यों नहीं ऐसा करता?

यही मैं इसके लिए ख़ुद ही करने को सोचे हुए था। मगर अफ़सोस, इसने दूसरे के हाथ में अपनी पूँजी सौंप कर सब चौपट कर दिया। रुपए की जगह इसे अब कौड़ी भी मिलना मुश्किल होगा।

मैं—मगर भई, यह सब करने की तुम्हें क्या ज़रूरत थी? ईश्वर की दया से अभी तो तुम्हारे कमाने-खाने की उम्र थी।

उसने एक आह भर के कहा—ठीक है। मगर कमाना-खाना उत्साह पर निर्भर होता है। लेकिन मेरे पास उत्साह कहाँ है? मैं तो केवल थोड़ी सी लगी-लिपटी आशा की धुँधली रोशनी के सहारे अपने दिन किसी तरह काट रहा था; क्योंकि—

इहि आशा अटक्यो रह्यो, अलि गुलाब के मूल।
अइहैं पुनः बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल॥

मगर हाय! वह लगी-लिपटी आशा भी अब मिट गई। उसकी धुँधली रोशनी तक भी ग़ायब होगई। तब अब इस अन्धकार-कूप में किस तरह रहूँ।

मैं—रहना ही पड़ेगा, जिस तरह से भी मुमकिन हो। यह जान तो ईश्वर की अमानत है, इसे अपने आप खोना भी तो पाप है।

वह—भाड़ में गए पाप और पुण्य। जब दिल में चैन ही नहीं, तो धर्म-कर्म को लेकर क्या करूँ? नहीं रहा जाता डॉक्टर! उफ़! अब यहाँ नहीं रहा जाता!

मैं—तब कहाँ जाओगे?

वह—समझ में नहीं आता। जिधर सनक सवार हो जाय। मगर हाय! इस नीरस जीवन और इस उपद्रवी दिमाग़ को लेकर कहाँ जाऊँ! हाँ, वहीं-वहीं, जहाँ से फिर कभी लौट न सकूँ।

मैं—रह-रह कर तुम्हें क्या हो जाता है? यह मैं मानता हूँ कि प्रेम में सीधे-उल्टे विचार हर वक़् अपनी छटा दिखाते रहते हैं, मगर इतना नहीं। कल तक तो तुम ऐसे निराश न थे। एक ही दिन में तुम्हारी ये हालत कैसे हो गई?

वह—कैसे होगई? मेरी लगी-छिपटी आशा मेरे रहे-सहे मनसूबे, मेरे बचे-खुचे अरमान, मेरी रौंदी-कुचली लालसा, मेरी जीवन भर की पूजा, मुद्दतों की भक्ति, बरसों की तपस्या—सब एक ही दिन में ग़ारत हो जायँ तो मेरी क्या हालत हो सकती है, तुम्हीं सोचो। यही ताज्जुब है डॉक्टर कि मैं पागल होकर अब तक कहीं डूब नहीं मरा।

मैं—आखिर क्या हुआ? कुछ कहो तो!

वह—क्या कहूँ, किस तरह कहूँ, ज़बान टुकड़े-टुकड़े हुई जा रही है। कलेजा फटा जा रहा है। हाय!

तड़प जाते हैं जिसको हाल दिल अपना सुनाते हैं।
मगर वह ग़ैर के पहलू में बैठे मुस्कराते हैं॥

कहते-कहते उसका गला भर आया और आँखों में आँसू झलक आए। बहुत-कुछ मैंने तसल्लियाँ दीं। हर तरह से उसकी आशा जमाने की कोशिश की, मगर इस दफ़े न जाने क्यों मेरी एक भी युक्ति ने काम नहीं दिया। जितना ही मैं उसे दिलासा देता था उतना ही उसकी दीवानगी भड़कती थी। उस वक़् वह एक अजीब पेचो-ताब में पड़कर भीतर ही भीतर दिल मसोस कर रह जाता था। अन्त में उससे न रहा गया। बौखला कर अपनी व्यथा यों उगलने लगा—जिस मुँह से सदा अमृत की बूँदें टपकती थीं उससे विष की छींटें निकलते किस तरह सहूँ। जिन आँखों से हमेशा प्रेम की धारा बहती थी उनसे बेगानगी की बौछार पड़ते कैसे बरदाश्त करूँ? जिस हृदय पर कभी मैं राज्य करता था उस पर ग़ैरों का अधिकार हाय! किस तरह देखूँ? उफ़! नहीं सहा जाता। नहीं सहा जाता।

मैं—इस तरह अपने दिल को मत कुढ़ाओ। मुमकिन है, तुम्हारी भूल हो, तुम्हारी समझ ने तुम्हें धोखा दे रक्खा हो।

वह—नहीं डॉक्टर, उसने ख़ुद अपनी ज़बान से कहा है। उसके एक-एक शब्द मेरे कलेजे पर अङ्गारे की तरह लोट रहे हैं। उसकी आवाज़ सुनते ही मैं उसके पास दौड़ा था। मगर वह मुझे देखते ही मुँह फेर के पलट पड़ी। मैंने गिड़गिड़ा कर कहा—अरी सरो, ज़रा ठहर जा। अपनी की हुई बरबादी पर एक उल्टी नज़र डालती जा × × ×

मैं—यह कब की बात कह रहे हो?

वह—ठहरो डॉक्टर—वह दरवाज़े पर खड़ी हो गई। घूम कर तीखी चितवन से देखा। उसके चेहरे पर कठोरता थी। भावों में सख़्ती थी। आँखों में हाय! ज़ालिम की मुरव्वत भी न थी। मुझे मार डालने के लिए इतने ही क्या कम थे? मगर इस पर भी वह एक अजीब रुखाई से बोली—"क्यों बनते हो?" बस सुनते ही मुझे मानों काठ मार गया और मैं कलेजा थाम कर रह गया।

मैं—क्यों? यह तो नाज़ माशूक़ाना था।

वह—नहीं, नहीं, मेरी इतने दिनों की तपस्या को उसने झूठा जाना। मेरे तड़पने को बनावट समझा।

मैं—ख़ैर! तब?

वह—"वह दृश्य लोप होगया और उससे भी दर्दनाक नज़ारा सामने आया। मैं तख़्त पर बैठा हुआ था और वह कुर्सी पर हाथ रक्खे खड़ी थी। उसने वैसी ही रुखाई से कहा—'आप मेरे बरतावों की क्यों शिकायत करते हैं? मुझसे घृणा क्यों नहीं करते?' मैं बौखला कर उसका मुँह ताकने लगा और बहुत ही पीड़ित हृदय के साथ कहा—'इतने दिनों बाद आज तुम घृणा करने को कहती हो? जिसको जीवन भर पूजता आया उसे अब किस कलेजे से घृणा कर सकता हूँ, तुम्हीं सोचो? किस तरह तुम्हारे मुँह से ऐसी बात निकली? हाय! जितना ही तुम्हें समझने की कोशिश करता हूँ, उतना ही तुम्हें नहीं समझ पाता सरो।' इस पर उसने लापरवाही से जवाब दिया—'ख़ैर! कोशिश किए जाइए। जिस दिन समझ जाइएगा उस दिन आप ही मुझसे घृणा हो जायगी।' इसके प्रत्येक शब्द लोहे की जलती हुई सलाख़ों की तरह मेरे हृदय में बेध गए।"

मैं—क्यों ? क्या उसे उसी वक्त समझ गए।

वह—हाँ, मगर हाय ! फिर भी मैं उसे घृणा न कर सका।

मैं—क्या समझे ?

वह—उसके हृदय में मेरे प्रेम को अपनाने के लिए कुछ भी प्रेम अब नहीं रह गया है। उसके दिल पर किसी का ऐसा बेढब अधिकार हो गया है जिसने मेरे लिए लेश-मात्र भी जगह नहीं रहने दी है। इसी से वह मेरे प्रेम से अब ऊब रही है। वरना वह दुनिया की घृणा सह सकती थी, मेरी घृणा की परछाहीं तक वह बरदाश्त करने की ताब नहीं रख सकती थी।

मैं—हाँ, यह तो मैं मानता हूँ कि प्रेमिका या प्रेमी अपने इष्टजन की घृणा कभी स्वप्न में भी गवारा नहीं कर सकता। अच्छा आगे कहो।

वह—इसके आगे हाय ! वह हृदय-विदारक दृश्य आया कि उसको देखने के पहले मेरे लिए मर जाना हज़ार गुना अच्छा था। मैं मारे कमज़ोरी के चारपाई पर लेटा था और वह सामने खड़ी थी। उसके चेहरे पर गम्भीरता और आँखों में चिन्ता थी। मैंने उसे अपने पास ज़रा बैठ जाने के लिए कहा। उसके ख़्याल कहीं और थे। मैंने हाथ पकड़ के बैठाना चाहा। उसने चौंक कर मुझे नफ़रत की नज़र से देखा और मुँह फेर लिया। लाख मिन्नतें कीं, मगर वह ज्यों की त्यों पत्थर बनी रही। एक दफ़ा झल्ला कर उसने कहा कि 'अगर तुम्हारे ही पास बैठना होता तो मैं ग़ैर की क्यों होती ?'—अरे ! डॉक्टर इतनी ज़हरीली बात तो वह दुश्मन से भी कहना नहीं जानती थी। उफ़ ! यहीं तक नहीं, बल्कि जब मैं इसकी चोट सह न सका और तिलमिला कर पूछा—'हाय ! सरो, तब तूने इतने दिनों मुझे क्यों तड़पाया ?' तब वह झुँझला कर बोली—'मैं आपसे कहने गई थी ?' मेरा कलेजा सुन्न हो गया। मेरे प्राण ऊबने-डूबने लगे। मैंने अपना सर पट्टी पर पटक दिया और अपना मुँह दोनों हाथों से छिपा कर कहा—'उफ़ ! तब तुम जाओ, हाय ! जाओ, अब और न सताओ !'—क्योंकि अब किस कलेजे से, किस साहस और आशा से और किस मुँह से उससे और कुछ कह सकता था ? मेरे हृदय में उस घड़ी असंख्य कोड़ों की मार पड़ रही थी। मैं इस दर्द से मछली की तरह तड़प रहा था, कलेजा मसोस रहा था, सर धुन रहा था। मेरी इस हालत पर उस वक्त मेरे जानी दुश्मन का भी जी भर आता। मगर हाय ! वह नहीं पसीजी, और नहीं पसीजी। बल्कि उस वक्त मुझे कुछ सन्तोष और दिलासा देने के बदले उस ज़ालिम ने यह कह कर कि 'बस हो चुका। मैं भी आज सारा झगड़ा पाक किए देती हूँ। तुम्हारा ख़्याल हमेशा के लिए छोड़ती हूँ। अब कभी भी तुमसे नहीं मिल सकती।' मुझे और भी बेमौत मार डाला। मेरे दिल को एकदम चकनाचूर कर दिया। दम नहीं निकला डॉक्टर, मगर हाय ! कुत्ते की मौत की भी तकलीफ़ उस वक्त की मेरी पीड़ा के आगे कुछ भी न थी। उफ़ ! अरी सरो ! हाय ! तू ऐसी होगई ? अमृत से एकाएक हलाहल विष।

वह परेशान होकर सर धुनने और फूट-फूट कर रोने लगा।

मेरा दिल भर आया। मैंने उसे बहुत-कुछ ढाढ़स देकर बड़ी नर्मी से पूछा—अच्छा भाई, इसके बाद क्या हुआ ?

वह—बिलकुल अन्धकार ! ऐसा अन्धकार कि मेरा दम घुटने लगा। मगर ख़ैरियत हुई कि जल्दी ही आँख खुल गई।

मैं बौखला कर बोल उठा—अरे ! तो क्या ये दृश्य तुमने स्वप्न में देखे हैं। जिनकी असलियत कुछ भी नहीं और उन पर तुम्हारी यह हालत ? वाह भाई ! इस पागलपन की हद भी है ? उस पर कहते हो कि मैं होश में हूँ। धत् तुम्हारे की ! अजब ख़ब्ती है।

वह—अरे ! डॉक्टर तुम मेरे स्वप्न का हाल क्या जानो ? यह वह स्वप्न है जो असलियत से बढ़ कर है। ज़रूर उसके दिल में यही ख़्यालात पैदा हुए हैं। वरना और तो कभी मैंने ऐसा ज़हरीला स्वप्न नहीं देखा था। पहले भी जो-जो बातें मैं स्वप्न में देखता था बाद को हूबहू उनको सचा पाता था। इसलिए आँखों की देखी बात चाहे झूठी निकल जाए, मगर मेरा स्वप्न कभी झूठा नहीं हो सकता।

मैंने बहुत तरह से उसे समझाया, मगर उसकी सनक दूर नहीं हुई। वह बार-बार यही कहता था कि मेरे लिए यह नई, अनोखी या अविश्वास करने योग्य बात

नहीं है। क्योंकि मेरे सम्बन्ध में जैसे उसके विचार होते हैं उसकी आत्मा मुझे स्वप्न में बिलकुल वही बता जाती है। मैं इसको अच्छी तरह से आज़मा चुका हूँ। इसका रहस्य तुम नहीं समझ सकते। योगाभ्यास में अगर इतनी शक्ति है कि वह दूर का हाल और दूसरों के दिल का भेद जान लेता है तो मेरे प्रेम में भी उससे कुछ कम शक्ति नहीं है। पहले प्रेम की इतनी गहराई तक कोई पैठे तो सही, इतनी मुद्दत तक इतनी सच्चाई और अटल रूप से इसकी उपासना तो करके देखे तब इस मर्म को झूठ या सच कहने का दावा करे। तभी तो यह बातें मेरे कलेजे पर अङ्गारे की तरह धधक रही हैं। उफ़! तारो, तू क्या से क्या होगई?

ऐसे दीवाने को, जो हवा से लड़ता हो, अपने ही ख़्यालात के पीछे बरबाद हो रहा हो, उसे कोई किस तरह सँभाले, समझ में नहीं आया। इतने में हम लोगों के पीछे से एक सुरीली आवाज़ आई—'ठीक है भाई अलिन्द, फिर भी उसकी बातों में तुम ज़रूर कुछ भूले हो। नारी-हृदय इतना पैशाचिक नहीं हो सकता।'

यह सुनते ही अलिन्द अपनी उसी निराशा की धुन में बोल उठा—"हाँ, शायद मुमकिन है।" इसके बाद वह एकाएक चौंक पड़ा और कहने लगा—अरे! यह जुमला मेरे कानों में क्यों गूँज उठा? अपनी ही बात मुझे उसकी सी क्यों मालूम हो रही है? आह! याद आया। यह तो उसी के शब्द हैं जो मेरी ज़बान से इस वक़्त निकल गए। हाँ-हाँ, ठीक है—यह उसी के शब्द हैं। हाय! इसे तो मैं बिलकुल भूल ही गया था। जब न जाने किस बात पर मैंने उससे रो-रोकर पूछा था कि क्या ज़िन्दगी में तुम मुझे कभी मिलोगी भी, तब उसी ने वह दृश्य लोप होते-होते अन्त में ज़रा मुस्करा कर कहा था—हाँ, शायद मुमकिन है।

अलिन्द के खौलते हुए दिमाग़ में एक बूँद शीतलता की टपक पड़ी और उसकी शून्य-दृष्टि में थोड़ी सी चमक आ गई।

मैंने पीछे मुड़ कर देखा कि तारा एक कुर्सी पकड़े दीवार के सहारे चुपचाप खड़ी है।

(क्रमशः)

(Copyright)

अरुण

ता० १ जून सन् १९२९ ई०

मई मास का अङ्क हमारे सामने है। सफ़ाई-छपाई में तथा स्त्रियोपयोगी लेखों में 'चाँद' अपना सानी नहीं रखता। लेखकों के विषय में तो कहना ही क्या है। स्त्री-समाज को उन्नति-मार्ग में अग्रसर करने वाला, उनमें जीवन की ज्योति उत्पन्न करने वाला तथा सामाजिक कुरीतियों में क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है। कदाचित् ही कोई शिक्षित परिवार होगा जहाँ 'चाँद' अपने निर्मल चाँदनी के प्रकाश को न छिटकाता हो। उधर विपत्ति-काल में 'चाँद' ने घाटा सह कर भी स्त्री-समाज की सेवा की है जिसके लिए वह निरन्तर बधाई का पात्र है। अभी हाल में चाँद को "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" नामक पुस्तक के प्रकाशन बन्द होने तथा उक्त पुस्तक के ज़ब्त हो जाने से प्रायः २५ हज़ार रु० की भारी हानि सहनी पड़ी है। इन कारणों को देखते हुए तथा 'चाँद' के अधिक परिश्रम से तथा हानि सहते हुए भी सेवा-मार्ग में छाती बढ़ाए देख कर इसकी असीम साहस की सराहना ही करना पड़ता है।

पुस्तक की लोक-प्रियता देख कर हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे 'चाँद' को ऐसे समय में अवश्य अपनावें और ग्राहक बढ़ा कर उसकी सहायता करें। सं०
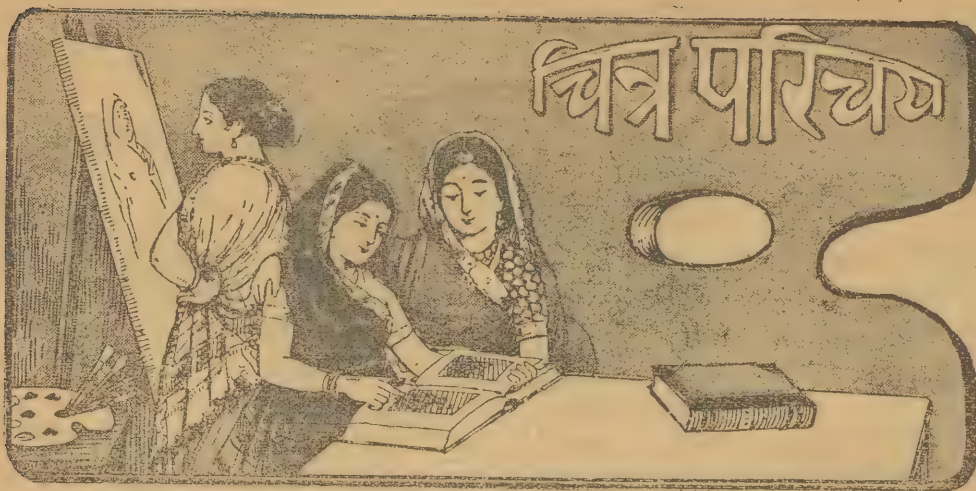
डॉक्टर प्रेमप्यारी बाई बर्नी, एल० एम० पी०

आपका जन्म आगरे के प्रसिद्ध माथुर कायस्थ-वंश में हुआ। आपके पिता आगरे के जजेज़ कोर्ट में सरिश्तेदार थे। आपको १३ वर्ष की अवस्था तक घर पर मामूली हिन्दी और उर्दू की शिक्षा दी गई। १४ वर्ष की अवस्था में एक सुशिक्षित एवं सुयोग्य नवयुवक के साथ आपका विवाह हुआ। पर दुर्भाग्यवश तीन साल के बाद ही आपको वैधव्य का कष्ट सहन करना पड़ा। १८ वर्ष की अवस्था में आपने अङ्गरेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। आपकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चार ही वर्षों में आपने मैट्रिकुलेशन की पढ़ाई समाप्त कर ली और इसके बाद डॉक्टरी पढ़ने लगीं। सन् १९२१ ई० में आपने बड़ी योग्यतापूर्वक डॉक्टरी की परीक्षा भी पास की। बरेली के सरकारी अस्पताल और गया में कुछ दिनों तक चिकित्सा-कार्य करने के बाद आप जयपुर के मेयो हॉस्पिटल में चली आईं। तब से वहीं पर हेड लेडी-डॉक्टर का कार्य सम्पादन करती आ रही हैं।

आपका हृदय स्त्री-जाति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और अनन्त सेवा-भाव से ओत-प्रोत है। आप राजस्थान की अपढ़ और गँवार स्त्रियों से इतने प्रेम से मिलती हैं कि लोक-प्रचलित अनियमित खान-पान और रहन-सहन के सुधारने के सम्बन्ध में आपके सरल और मधुर उपदेश राजस्थान की देहाती स्त्रियों पर जादू की तरह काम कर जाते हैं। स्त्री-जाति की निःस्वार्थ सेवा करने में आप अपनी विद्या और बुद्धि का जो सदुपयोग कर रही हैं, उससे हमारी अन्य शिक्षित बहिनों को कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहिए।

* * *

डॉक्टर सुशीलाबाई जागीरदार

आप राजस्थान की ४८ लाख स्त्रियों में सर्व-प्रथम महिला-डॉक्टर हैं। सन् १९२९ ई० में बम्बई के कॉलेज ऑफ़ फ़िजिशियन्स एण्ड सरजन्स से आपने एल० सी० पी० और एस० की उपाधि-परीक्षा पास की। उसके बाद दो साल तक अजमेर में चिकित्सा-कार्य करने के अनन्तर आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए यूरोप चली गईं। फ़्रान्स, इटली, स्विज़रलैण्ड आदि देशों में भ्रमण करके आपने वहाँ के बड़े-बड़े स्त्री-चिकित्सालयों का अनुभव प्राप्त किया। हाल ही में डबलिन (आयर्लैंण्ड) के संसार-प्रसिद्ध स्त्री-चिकित्सालय से आपने बड़ी योग्यतापूर्वक एल० एम० की परीक्षा पास की है। इस समय इङ्गलैण्ड के एक विख्यात अस्पताल में आप बालकों के रोगों का विशेष अध्ययन कर रही हैं।

* * *

पण्डित रामचन्द्र जी सारण तथा आपकी नवविवाहिता धर्मपत्नी श्रीमती रामप्यारी बाई

पण्डित रामचन्द्र जी सारण इन्दौर नॉर्मल-स्कूल के अध्यापक हैं। आपने विगत २२ एप्रिल को श्रीमती राम-

(शेष मैटर पृष्ठ ३८८ के दूसरे कॉलम में देखिए)

आगरा में लड़कियों का नया स्कूल

आगरे के प्रसिद्ध रईस मुन्शी रामनारायण ने स्त्री-शिक्षा के लिए १० हज़ार रुपयों का दान देकर देश की उन्नति के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। मुन्शी रामनारायण ने आगरे में लड़कियों का एक नया स्कूल खोलने के लिए आगरे के कलक्टर के पास १० हज़ार रु० के सरकारी बौण्ड जमा कर दिए हैं। स्कूल का प्रबन्ध करने के लिए प्रबन्धकों की एक समिति भी बन गई है। म्युनिसिपल बोर्ड ने लड़कियों का अपना एक स्कूल, जिसमें १२०) रु० मासिक सहायता मिलती है, प्रबन्ध-समिति के सिपुर्द कर दिया है। स्कूल का नाम दानी सज्जन महोदय के मृतभाई के नाम पर 'इन्दरभान गर्ल्स स्कूल' रक्खा जायगा। आशा की जाती है कि इस प्रशंसनीय कार्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए सरकार प्रबन्ध-समिति को आर्थिक सहायता देने में उदारता से काम लेगी। आगरे जैसे विशाल नगर में लड़कियों की शिक्षा के लिए एक बड़े स्कूल का न होना वास्तव में लज्जा और दुःख का विषय था, किन्तु दानवीर मुन्शी रामनारायण ने आगरा-निवासियों के सिर से यह कलङ्क दूर कर दिया। अब आगरे के सर्वसाधारण का यह कर्तव्य है कि वे अपनी शक्ति भर सहायता देकर इस कार्य को सफल बनावें।

* * *

मुङ्गेर के नवयुवक ध्यान दें !

मुङ्गेर में ५५ वर्ष का एक दन्तहीन मारवाड़ी ब्राह्मण अपना ब्याह आठ-नौ वर्ष की एक अबोध बालिका से करना चाहता है। रुपए के लिए अपनी अन्तरात्मा को बेचने वाले दलाल लड़की को लाकर इस नराधम के घर पर रक्खे हुए हैं। यह मूर्ख ब्राह्मण अपनी पौत्री के समान उस अबोध बालिका के अस्फुट जीवन को मसल देने की तैयारियाँ कर रहा है। सुना गया है कि पिछले विवाह के समय इस ब्राह्मण की अवस्था ५० वर्ष के लगभग थी और ब्याह हो जाने के बाद इस नराधम ने अपनी युवती स्त्री से वेश्यावृत्ति कराने में भी सङ्कोच न किया। इस पाप-कर्म से इसने काफ़ी धन कमाया है। अब धर्म का ढोंग रचने वाली हिन्दू-जाति की एक दूसरी निरपराधिनी कन्या का इस पाप की वेदी पर बलिदान होने वाला है। बालिका की मूर्खा माता नक़द-नारायण के मोह में फँस चुकी है। यदि मुङ्गेर के युवक-समाज ने इस अनर्थ को सङ्घटित होने से न रोका तो उसके लिए यह घोर लज्जा तथा कलङ्क की बात होगी। मारवाड़ी ब्राह्मण-महासभा के मन्त्री तथा सदस्यों को इस पाप का निवारण करने में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। इस विवाह में कन्या के रक्त से सिञ्चित लड्डू खाने वाले धर्मात्माओं की नामावली प्रकाशित करने योग्य होगी !

* * *

समाज का अग्निकुण्ड

गत २३ मई को कलकत्ते के चीफ़ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट मि० रॉक्सबर्ग के इजलास में उस मामले की सुनवाई हुई थी, जिसमें १६ वर्षीया बालिका जमुनाबाला की मृत्यु के सम्बन्ध में उसके पति तुलसीचरण दत्त, उसकी सास रानीबाला दासी और उसकी ननद सन्तोबाला दासी पर मुक़दमा चल रहा था।

सरकारी वकील के कथन से मालूम होता है कि मृत जमुनाबाला दासी की अवस्था केवल १४ वर्ष १० मास थी। लगभग दो वर्ष पहले तुलसी के साथ उसकी शादी हुई थी। तभी से उसके घर वाले उसके माता-पिता से अधिक धन लेने के लिए उस पर भाँति-भाँति के अत्याचार कर रहे थे। लड़की के बाबा ने विवाह के समय २,००० रु० दिए थे। पर इतने से तुलसी की अर्थ-लोलुपता सन्तुष्ट न हुई। वह लड़की के माता-पिता से १०,००० रु० और माँगता था जिसे वे लोग देने में असमर्थ थे। इस कारण तुलसीचरण और उसके घर वाले जमुनाबाला दासी को कुरूप बता कर उसके साथ असह्य दुर्व्यवहार करते थे।

चारु मोहन दत्त नाम के एक गवाह ने कहा था कि मैं कलकत्ता म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन की लेबोरेटरी में काम करता हूँ और नित्य तुलसीचरण के मकान के पास एक व्यायामशाला में कसरत करने के लिए जाया करता हूँ। मैं तुलसीचरण को जानता हूँ। उसकी माँ और बहिन उसके साथ रहती हैं। मैं जमुनाबाला दासी को, जब वह खिड़की के सामने आती थी, देखा करता था। उसके घर से बराबर गालियों की आवाज़ आया करती थी—"फाँसी लगा ले", "डूब मरो", "जल मरो"। मैं पिछले छः महीने से उस घर में इस प्रकार की गालियों की आवाज़ें सुन रहा था। जमुनाबाला दासी की मृत्यु के दिन मैंने सदा की भाँति एक स्त्री को कहते हुए सुना, "जल मरो" "फाँसी लगा लो" "डूब मरो"। एक दूसरी स्त्री ने कहा, "किरोसिन तेल का बोतल और दियासलाई की डिब्बी यहाँ रक्खी हुई है। हम लोग गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं। वहाँ से लौटने पर हम लोग तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहते।"

इस पर सरकारी वकील ने पूछा—तुलसी ने कुछ कहा?

गवाह—तुलसी ने कहा कि ज़हर खाकर मर जा।

इसके आगे गवाह ने कहा कि आध घण्टे बाद घर के दरवाज़े और खिड़कियों से धुआँ निकलता हुआ दिखाई पड़ा। किसी के चिल्लाहट की आवाज़ भी आई। मैं दौड़कर घर के अन्दर गया और वहाँ देखा कि तुलसीचरण शरीर पर गमछा रक्खे सीढ़ी पर खड़ा है और उसके सामने वाली कोठरी में उसकी स्त्री जलती हुई चिल्ला रही है। हम लोग आग बुझाने की चेष्टा करने लगे।

सरकारी वकील ने फिर पूछा—क्या तुलसी ने आग बुझाने की कोई चेष्टा की?

गवाह—कुछ भी नहीं।

किसी तरह लड़की के वस्त्रों की आग बुझाई गई और अस्पताल पहुँचने के कुछ ही देर बाद वह मर गई।

इस मर्मभेदी कहानी के भीतर न जाने कितनी असहाय नारियों के बलिदान का रहस्य तथा समस्त भारत के महिला-समाज की मूक वेदना छिपी हुई है। इस प्रकार के अमानुषिक नाटक भारत के घर-घर में खेले जा रहे हैं। जो समाज रुपए के लोभ में पड़कर अपनी बहिनों की इज़्ज़त, अपनी देवियों की प्रतिष्ठा और अपनी माताओं के सम्मान को इस प्रकार ठुकरा रहा है, वह संसार में कितने दिनों तक जीवित रह सकेगा, इसका उत्तर देने का सामर्थ्य हमारी लेखनी में नहीं है।

* * *

महाराजा अलवर का पतन

भारतीय राजाओं की विलासिता, अदूरदर्शिता और पारस्परिक कलह के कारण ही भारत को पराधीन होना पड़ा था। ये राजे अपना पद, गौरव, प्रतिष्ठा और मान तो बहुत पहले ही खो चुके, इनमें भारतीय स्वतन्त्रता की जो रही-सही झलक वर्त्तमान थी, उसे भी ये मटियामेट कर रहे हैं। दिल्ली के सहयोगी 'रियासत' को विश्वस्त-सूत्र से पता चला है कि अलवर-नरेश ने विलायत के लिए रवाना होने के पहले भारत-सरकार से प्रार्थना की है कि चूँकि उनके कोई सन्तान नहीं है, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद रियासत अलवर ब्रिटिश-भारत में मिला ली जाय। यदि यह सम्भव न हो तो चूँकि अलवर और जयपुर की दोनों रियासतें एक ही वंश से हैं, इस-

लिए अलवर को जयपुर में मिला दिया जाय। पर किसी भी दशा में रियासत महाराज के उन सम्बन्धियों को न दी जाय जो अपने आपको गद्दी का उत्तराधिकारी सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। इन नपुंसक राजाओं को अपनी विलासिता, द्वेष और झूठे अहङ्कार के पीछे देश, जाति और धर्म का कुछ भी ख़याल नहीं है।

* * *

सनातन-धर्म या गुण्डेशाही ?

गत १८ जून को कराँची में सिन्ध के स्वनामधन्य नेता डॉक्टर चोइथराम के सभापतित्व में जनता को विधवा-विवाह की आवश्यकता समझाने के लिए एक विराट् सभा हुई थी। इस सभा की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि सेठ जमनालाल बजाज़ ने बड़े ही ज़ोरदार शब्दों में विधवा-विवाह की आवश्यकता बतलाते हुए यह प्रतिज्ञा की कि मैं स्वयं बहुत शीघ्र कार्य-रूप में इस आन्दोलन की सहायता करना शुरू करूँगा। सेठ जी की यह प्रशंसनीय तेजस्विता तथा अन्य नेताओं के प्रभावशाली भाषण बहुत से सनातनी हिन्दुओं, विशेषतः मारवाड़ियों को अखर गए। मुश्किल से तीन-चार वक्ताओं के व्याख्यान हो पाए थे कि गुण्डों के एक दल ने, जिसमें मारवाड़ियों की संख्या अधिक थी, लाठी लिए हुए सभा पर आक्रमण किया। कई निर्दोष व्यक्तियों के सिर टूटे और बहुतों को गहरी चोट लगी। क्या सनातन-धर्म इस प्रकार की गुण्डेशाही के द्वारा अपनी रक्षा कर सकता है ?

* * *

शास्त्रों के बन्धन तोड़ो !

महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् और धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपके ही सभापतित्व में बङ्गीय हिन्दू-समाज-सम्मिलन का महत्वपूर्ण अधिवेशन हाल ही में बड़े आनन्द और उत्साह-पूर्वक समाप्त हुआ था। आप विगत ६ जून को बोगरा पहुँचे। वहाँ एक विराट् सभा में हिन्दुत्व और वर्तमान समस्या विषय पर आपका एक बड़ा ही सारगर्भित और प्रभावशाली भाषण हुआ। सभास्थल मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ था। आपने वैदिक धर्म के विकास और प्रसार का इतिहास बताते हुए कहा कि महात्मा बुद्ध और भगवान् शङ्कराचार्य के समय में यह धर्म अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उस समय इस धर्म के अनुयायी परिस्थिति के अनुसार अपनी व्यवस्था कर लेते थे और इसी कारण वे इतने दिनों तक जीवित रह सके तथा अपने धर्म का विस्तार कर सके। आज भी हमारे सामने समाज को जीवित रखने तथा धर्म की वृद्धि करने का प्रश्न उपस्थित है। जीवन-मरण की इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या को हल करने में यदि शास्त्रों की आज्ञा को तोड़ना पड़े तो बुद्धिपूर्वक विवेचना करने के बाद निस्सङ्कोच होकर उन्हें तोड़ डालना चाहिए। क्या शास्त्रों की चिता में धधकता हुआ हिन्दू-समाज इस वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध और अनुभव-वृद्ध विद्वान् की सम्मति से कुछ लाभ उठावेगा ?

* * *

(३८५ पृष्ठ का शेषांश)

प्यारी का पाणिग्रहण किया है। पति-पत्नी दोनों ही गौड़ ब्राह्मण हैं। श्रीमती रामप्यारी बाई पिछले छः वर्षों से वैधव्य का दुःख भोग रही थीं। बाई जी का प्रथम विवाह १० वर्ष की अवस्था में हुआ था। पति के स्वर्गवास के बाद हिन्दू-समाज की पाखण्ड-पूजा के कारण बाई जी को इतना अधिक कष्ट उठाना पड़ा कि उनके विधर्मी होने तक की नौबत आ गई। ऐसी नाज़ुक स्थिति में वर्धा की विधवा-विवाह-प्रचारक समिति ने पण्डित रामचन्द्र जी के साथ उनका विवाह करा के वास्तव में बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है। पण्डित रामचन्द्र ने भी अपने सत्साहस के द्वारा ब्राह्मण-जाति के सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है।